हम पर्वतवासी

हम पर्वतवासी

उन्नीस
आर्मेनियायी
कहानियाँ

प्रगति प्रकाशन, ताशक़न्द १९८१

अनुवादक: राय गणेश चन्द्र
डिज़ाइन: ओ॰ वोज़नियाक
संग्रहकर्ता: आ॰ ग्रिगोरियान

МЫ И НАШИ ГОРЫ

Современная армянская новелла

На языке хинди

© प्रगति प्रकाशन, ताशक़न्द–१९८१

М $\frac{70500 — 398}{014(01) — 81}$ 671 — 81 4702080200

विषय-सूची

प्राक्कथन ७
अक्सेल बाकुन्त्स
आल्प्स का पाटल-कुसुम १३
देरेनिक देमिर्चियान
एक पुस्तक की कहानी २४
अवेतिक इसाकियान
साम्रादी का अन्तिम वसन्त ४२
राफ़ेल अरामियान
मटकी ले, पनिया भरन को गयी ५७
होवान्नेस तुमानियान
मेरा दोस्त नेसो ७२
स्तेफ़ान ज़ोरियान
पुस्तकालयवाली लड़की ७७
सुरेन ऐवाज़ियन
अन्धेरे-उजाले १२७
मोवसेस अराज़ी
कायापलट १३८
राचिया कोचर
प्यास १५१
विगेन खेचुमियाँ
सेतु १५८

मकरतिच सरकिसियान
लड़कियो, तुम कितना बदल गयी हो! १८१
मकरतिच आर्मेन
मुझे ढूँढ़नेवाली लड़की १६४
खज़हाक गियुलनज़ारियन
छठा उपदेश १६८
सेरो खानज़ादियान
सफ़ेद मेमना २०५
गेगम सेवान
अबाबील २१२
वार्दकेस पेत्रोस्यान
शुभ प्रभात, जैक २२८
ग्रान्त मातेवोस्यान
एक साथी की तलाश २४६
एबिग अवाक्यान
अन्तिम रेखा २७७
नोरेयर अदालियन
ऊँट गुज़र जाते हैं, पहाड़ अपनी जगह बने रहते हैं २६३
इस संग्रह के लेखक ३००

प्राक्कथन

इस संग्रह में उन्नीस आर्मीनियाई लेखकों की कहानियाँ संकलित हैं। सब के सब विभिन्न पीढ़ियों, दृष्टिकोणों व लेखन-शैलियों के लोग हैं। कुछेक निश्चित घटनाओं को अपना कथ्य बनाते हैं तो दूसरे जीवन के दार्शनिक मूल्यांकन का प्रयास करते हैं।

यह एक संकलन है, कोई गद्यावली नहीं। आर्मीनियाई साहित्य में आर्मीनियाई कहानियों की शैली का इतिहास कई सौ साल का है और इसके लेखक विश्व संस्कृति के इतिवृत्त में अमर हैं। इसलिए आर्मीनियाई कहानियों की गद्यावली तैयार करने के लिए कई खण्डोंवाले संस्करण की आवश्यकता होगी।

बहरहाल, इस संकलन को प्रस्तुत करते समय कई ऐसे लेखकों को उद्धृत किया जा सकता है जो अपने समय में आर्मीनियाई कथा-लेखन के इतिहास में युगान्तरकारी माने जाते थे लेकिन इस संकलन में शामिल नहीं किये गये हैं। उनमें सबसे पहला नाम खाचातुर अबोवियान का है। १८३० से १८४० के दशक में लिखी उनकी कहानियाँ रोमाण्टिक, उपदेशात्मक और इसके साथ ही पूर्व की वास्तविक परम्परा के अनुरूप ही आलंकारिक थीं। निकट भविष्य में ही आर्मीनियाई साहित्य में एक अग्रणी बन जानेवाली साहित्यिक शैली के रूप में कहानियों की विधा को सँवारने का काम उन्होंने किया। १९ वीं सदी के अन्त में तथा २० वीं सदी के आरम्भ में लेखकों की एक उज्ज्वल नक्षत्रमाला ने कहानियों के इस पल्ल-

वल में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इनमें प्रमुख नाम हैं: रफ़्फ़ी, गाब्रियल सुन्दुकियान, अकोप पैरोनियान, राफ़ेल पात्कानियान, ग्रिगोर ज़ोग्राब, येर्वान्द ओतियान और पेर्च प्रोशियान...

यह उल्लेखनीय है कि आरम्भ से ही आर्मीनियाई कथा-लेखन में कोई एक प्रवृत्ति नहीं रही। आंशिक रूप से इसका कारण यह है कि इस विधा ने विभिन्न सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोणोंवाले लेखकों को आकृष्ट किया। इसके अलावा, यह लेखक आर्मीनियाई साहित्य में पूर्वी एवं पश्चिमी के नाम से ज्ञात दो भिन्न शाखाओं के थे। रूसी क्षेत्र में रहनेवाले पूर्वी शाखा का प्रतिनिधित्व करते थे। वे विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण भिन्न धारा का अनुसरण करनेवाले पश्चिमी आर्मीनियाई लेखकों की तुलना में सामाजिक रूप से अधिक जागरूक थे।

नार-दोस ने अपनी आत्मकथा में लिखा है: "मेरी पताका पर अंकित शब्द थे 'यथातथ्य वास्तविक जीवन और मानव का आन्तरिक जगत'।" पूर्वी आर्मीनिया के नार-दोस के बहुत से समकालीन इस आदर्शोक्ति से सहमत होते। यह एक साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में यथार्थवाद के बीजवपन का द्योतक है। आर्मीनियाई साहित्य में इसकी जड़ें दृढ़ता से जम गयीं और इसकी अभिव्यक्ति न केवल यथार्थवादी कथावस्तुओं में बल्कि अपने जन-जीवन के बौद्धिक जगत के बारे में लेखकों के तीव्र भाव-बोध में, सामाजिक विरोधाभासों के उनके उद्घाटन में और नैतिक एवं नीतिशास्त्रीय समस्याओं में उनकी अभिरुचि में भी हुई। इस प्रकार, नार-दोस ने शासक वर्ग के नैतिक दिवालियेपन और बौद्धिक अधःपतन की प्रक्रियाओं को प्रस्तुत किया और ऊर्जस्वी, अध्यवसायपूर्ण तथा अपनी ही शक्ति पर आस्था रखनेवाले श्रमजीवी की जीविष्णुता की पुष्टि की।

बीसवीं सदी के आरम्भ में समाज में निरन्तर गहराते विरोधाभासों की परिस्थितियों के अन्तर्गत पात्रों के आन्तरिक जीवन को प्रतिबिम्बित करनेवाली मनोवैज्ञानिक कहानियों ने आर्मीनियाई साहित्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। "सामान्य व्यक्ति" की कथावस्तु को लोकप्रियता मिली और लोगों के ध्यान में एक ऐसा जीवन आया जो वस्तुत: नाटकीय था तथा जिसकी नियति अपनी निरीहता के कारण त्रासदीपूर्ण थी। रूस में "चेख़व कथानक" के नाम से ज्ञात इस कथावस्तु को आर्मीनियाई साहि-

त्य में सर्वप्रथम स्तेफ़ान ज़ोरियान की रचनाओं में विशेष बल मिला ("दुखी लोग", "सफ़ेद घर के वासी", आदि)।

२० वीं सदी की आर्मीनियाई कहानियों का इतिहास अधूरा रह जायेगा अगर आर्मीनियाई साहित्य के दो उज्ज्वलतम सितारों – होवान्नेस तुमानियान व अवेतिक इसाकियान का उल्लेख नहीं किया जाये। उनका महान रिक्थ विश्व साहित्य एवं अपनी जातीय कला की सर्वोत्तम परम्पराओं का एक सुन्दर सामंजस्य है। शैली की सरलता, मानवीयता, अपनी जनता के रीति-रिवाजों, जीवन, मनोविज्ञान की गहरी समझ और उनकी जनवादिता ने होवान्नेस तुमानियान एवं अवेतिक इसाकियान को विश्व के असाधारण लेखकों में स्थान दिला दिया है। वालेरी ब्रिउसोव ने तुमानियान की रचनाओं को क्रान्ति-पूर्व आर्मीनियाई जीवन का एक विश्वकोश बताया है।

इस संकलन में तुमानियान की एक कहानी "मेरा दोस्त नेसो" शामिल की गयी है। यह कहानी उन्होंने अपने बचपन को याद करते हुए लिखी थी। प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व को पंगु बना देनेवाले सामाजिक अन्याय के विरुद्ध लेखक के प्रबल विरोध को यह कहानी परिलक्षित करती है।

अवेतिक इसाकियान एक दार्शनिक लेखक थे और जीवन व प्रेम से सम्बन्धित कथावस्तुओं को उन्होंने विशेष वरीयता दी। उन्होंने जीवन एवं प्रेम की सार्थकता को इसकी महानतम अभिव्यक्तियों में से एक के रूप में उद्घाटित करने की कोशिश की। "साआदी का अन्तिम वसन्त" शीर्षक कहानी जीवन का एक गौरवशाली गीत है जो अप्रतिहत रूप से सुन्दर एवं अद्भुत है...

इस प्रकार, सदी के आरम्भ में आर्मीनियाई कथा-लेखन के इन दो असाधारण प्रतिनिधियों ने आलोचनात्मक रूप से अतीत का परित्याग करते हुए आनेवाले कल का, आर्मीनियाई जनता के उज्ज्वल भविष्य का स्वागत किया।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति तथा आर्मीनिया में सोवियत सत्ता की स्थापना से आर्मीनियाई साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। अब नये-नये पात्रों के स्वर सुनाई देने लगे और नयी-नयी कथावस्तुएँ सामने आयीं। इस नयी धारा को क्रान्ति से पहले स्थापित हो चुके लेखकों –

देरेनिक देमिरचियान, स्तेफ़ान ज़ोरियान, अक्सेल बाकुन्त्स तथा मोवसेस अराज़ी ने गति प्रदान की।

सोवियत आर्मीनियाई साहित्य के एक सर्वमान्य उत्कृष्ट लेखक स्तेफ़ान ज़ोरियान ने अपनी मातृभूमि और अपनी जनता की नियति के बारे में लिखा। समकालीनता की उत्कट समझ से समाहित इतिहास की उनकी गहरी पैठ ने ज़ोरियान को आधुनिक व्यक्ति, नयी जीवन-पद्धत्ति के निर्माता के लाक्षणिक गुणों को चित्रित करने में सहायता दी। जनता की उत्कृष्टता उभारनेवाली क्रान्ति की जीवनदायी शक्ति "पुस्तकालयवाली लड़की" में चित्रित हुई है।

नये नायकों ने मोवसेस अराज़ी की रचनाओं में भी स्थान पाया। अपने समय में युगान्तरकारी कहानी "कायापलट" क्रान्तिकारी परिवर्तन के युग में व्यक्ति की जागरूकता का वर्णन करती है।

इसी काल के एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक देरेनिक देमिरचियान की रचना आर्मीनियाई जनता के जीवन व इतिहास में एक वास्तविक इतिवृत्त है। देमिरचियान एक कवि, गद्य लेखक, नाटककार एवं पत्रकार थे। चाहे कोई मनोवैज्ञानिक शब्दचित्र हो या कोई ऐतिहासिक उपन्यास, वह सदैव जीवन को सजीवता से चित्रित करने में समर्थ रहे। इस संग्रह में शामिल उनकी रचना "एक पुस्तक की कहानी" जनता की सांस्कृतिक सम्पदाओं की अमरता प्रकट करती है।

अक्सेल बाकुन्त्स एक विशिष्ट सोवियत आर्मीनियाई कहानी-लेखक हैं। उनकी रचनाओं में आर्मीनिया का काव्यात्मक प्रतिबिम्ब, इसका अद्भुत सौन्दर्य, इसकी गरिमा और सरल जनता है। "पाटल कुसुम" आर्मीनियाई साहित्य के रत्नों में एक है। यह कहानी आर्मीनिया के पहाड़ी प्रदेशों, इनके वासियों के रीति-रिवाजों की एक तस्वीर पेश करती है।

क्रान्ति के प्रादुर्भाव से आरम्भ होकर, गृहयुद्ध की अग्नि से गुज़रकर १९३० के दशक में समाजवाद के शान्तिपूर्ण निर्माण तक पहुँचने में आधुनिक आर्मीनियाई कहानी ने एक कठिन रास्ता तय किया है। १९४१ से १९४५ तक यह रास्ता फ़ासिज़्म के विरुद्ध महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध की लड़ाइयों से गुज़रता है। युद्धोतर पुनर्वासन के वर्षों का स्थान अगले दशकों के शान्तिपूर्ण, रचनात्मक श्रम ने ले लिया है।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के बारे में सोवियत आर्मीनिया के लेखकों की रचनाएँ सच्ची देशभक्ति, मानवीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयतावाद से ओतप्रोत हैं। इस संकलन में शामिल राचिया कोचर की कहानी "प्यास" भी इसी श्रेणी की है।

युद्ध समाप्त हुआ। बेहतर भविष्य का निर्माण करनेवाले लोगों के श्रम, उन के जीवन में हो रहे परिवर्तनों को कहानियों में स्थान मिला। अब युद्धकालीन नायक घर लौटकर शान्तिपूर्ण श्रम में लग रहे थे जैसा कि विगेन खेचुमियान की "सेतु" कहानी में आर्मेनाक ने किया। युद्ध से आर्मेनाक ने सीख ली है कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास ले जानेवाला मार्ग ही धरती का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मार्ग है। युद्धोत्तर आर्मीनियाई कहानियों की विषयवस्तु व्यक्ति के आचारिक एवं नैतिक जीवन से सम्बन्ध रखती है। इस प्रकार पुरानी पीढ़ी के लेखकों की राहें युवा पीढ़ी की राहों से यानी उन लोगों की राहों से आ मिलती हैं जिन्होंने युद्ध में हिस्सा लिया था और जिनकी रचनाएँ युद्धोतरकालीन वर्षों में छपनी शुरू हुई थीं। ऐसे लेखक हैं: गुर्गेन माग्रारी, सेरो खानज़ादियान, विगेन खेचुमियाँ, राफ़ेल अरामियान, एबिग अवाक्यान, ग्रान्त मातेवोस्यान, वार्दकेस पेत्रोस्यान, कमारी तोनोइयान, पेर्च ज़ेइतुनियान्त्स तथा गेवोर्क अर्शाकियान। यह सूची और भी लम्बी हो सकती है क्योंकि आज आर्मीनिया अपने प्रतिभाशाली गद्यकारों की सम्पदा पर अभूतपूर्व रूप से गर्व कर सकता है।

युद्धोतर वर्षों में जन्मे और लालित-पालित लोगों के युद्ध की तंगियों व पीड़ाओं से अनजान पीढ़ी के लोगों का व्यक्तित्व तथा सामाजिक आचरण एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में आज के आर्मीनियाई कहानीकारों का ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। शायद आज के साहित्य व कला में यह एक अन्तर्राष्ट्रीय विषयवस्तु है। अन्य सोवियत जनतन्त्रों के लेखकों के साथ आर्मीनियाई लेखक युवा पीढ़ी को बौद्धिक एवं सैद्धान्तिक रूप से चौकस रहने, जीवन के प्रति एक सचेत तथा उत्तरदायित्वपूर्ण रुख़ अख़्तियार करने की सीख देते हैं। युवा पाठक के साथ इस आचारिक संलाप में हास्यास्पद मोड़ आते हैं जैसे खज़हाक गियुलनज़ारियन की कहानी "छठे उपदेश" में; अन्य स्थलों पर यह व्यंग्य का रूप धारण कर लेता है जैसे वार्दकेस पेत्रोस्यान की कहानी "शुभ प्रभात, जैक" में।

स्वभावतः, युवा पीढ़ी को प्रशिक्षित करने का कार्य आज की आर्मीनियाई कहानियों के सम्मुख उपस्थित बहुत से भिन्न-भिन्न दायित्वों में एक है। कहानी-लेखन की ओर अधिकाधिक नये-नये आर्मीनियाई लेखक आकृष्ट हो रहे हैं। जिस तरह आर्मीनियाई साहित्य प्रतिभा सम्पन्न है, उसी तरह इस साहित्य का निर्माण करनेवाले लोग भी प्रतिभाशाली हैं। जब तक आर्मीनियाई लोगों ने अपने सुन्दर देश का भविष्य अपने हाथों में नहीं ले लिया, इनका दो हज़ार साल पुराना इतिहास कई परीक्षाओं से गुज़रता रहा है।

आन्त मारतीरोसियान

अक्सेल बाकुन्त्स

आल्प्स का पाटल-कुसुम

कागावाबेर्दा पर्वत का उत्तुंग शृंग साल भर बादलों से आच्छादित रहता है। क़िले की नुकीली उभारदार दीवारें शुभ्र बादलों में छुप जाती हैं जब कि उसकी ऊँची-ऊँची काली मीनारें यहाँ-वहाँ दिखाई देती रहती हैं।

दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो परकोटों पर सन्तरी गश्त लगा रहे हैं, क़िले के विशाल लौह फाटकों में ताले जड़े हैं और किसी भी क्षण कोई पहरेदार पर्वत पर चढ़ते अजनबी को आवाज़ देने लगेगा।

लेकिन जब हवा बादलों को बिखेर देती है और श्वेत आवरण लुप्त हो जाता है, सबसे पहले मीनार का झुका शीर्ष और फिर ज़मीन में आधी धसी घास-पात, बेल-पौधों से लदी दीवारें दिखाई देती हैं। मगर लौह फाटक एवं पहरेदारों का नामोनिशान तक नहीं।

कागावाबेर्दा के भग्नावशेषों पर निस्तब्धता छायी रहती है। एकमात्र ध्वनि कोलाहलपूर्ण बासुत की सुनाई देती है जो प्रपातखड्ड में तल-पाट की चट्टानों के नीले बिल्लौर को चमकाती प्रवहमान होती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो लोहे की ज़ंजीरों को चबा डालने की कोशिश करते हज़ारों हज़ार अल्सेशियन कुत्ते घूर्णावृत जल के नीचे चीख-चिल्ला रहे हों।

दीवारों में एक चील और एक गीध ने अपनी रिहायश बना ली है। पदचाप सुनाई देते ही वे वहशियाना शोर मचाते आसमान में उड़ जाते हैं और भग्नावशेषों के ऊपर चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं। एक पहाड़ी उक़ाब भी उनके साथ आ मिलता है। उसकी चोंच खंगवत है, पंजे नुकीले भाले हैं और पंख ज़िरह-बख्तर।

कागावाबेर्दा की इस ऊँचाई पर खिलनेवाला एकमात्र फूल पाटल-कुसुम

है। इसका रंग ख़ून-सा लाल होता है, इसका तना तीतर के पैरों की तरह लाल है। इसके फूल भग्नावशेषों के बीच खिलते रहते हैं। जब बादल क़िले की धुँधली दीवारों पर नीचे की ओर छा जाते हैं, तना नीचे की ओर झुक पड़ता है जिससे फूल किसी धूप से भरी चट्टान पर सिर टिका लें। पराग में निमग्न एक चमकीला भौंरा फूल को हिंडोला और दुनिया को लोहित मुकुल के रूप में देखता है।

काफ़ी नीचे की ओर, बासुत के दूसरे किनारेवाले खड्ड प्रपात में कुछेक झोंपड़े हैं। छतों की गोल-गोल चिमनियों से सुबह में धुआँ उठने लगता है। नीले फीते का रूप धारण कर वह बादलों में खो जाता है। बीच दोपहरिया में कोई मुर्ग़ा बोल उठता है; कोई बूढ़ा किसान अपने घर के सायबान में स्मृतियों में खोया जम्भाई लेता बैठा है और अपनी छड़ी से बालू पर आकृतियाँ बना रहा है।

गाँव में और ऊपर क़िले में समय बहुत धीमी गति से खिसकता रहता है। वर्ष एक ही वृक्ष के परिवर्त्तनशील पत्तों की तरह हैं। स्मृतियाँ दग़ा करने लगती हैं। हमेशा की तरह अभी भी नदी बह रही है; ऊपर में वही चट्टानें हैं और वही पहाड़ी उक़ाब है।

बासुत के तट पर न जाने कितनी पीढ़ियाँ जीवन बिता चुकी हैं। यहाँ कितने लोगों ने अपने ख़स्ताहाल नमदे बिछाये हैं और सरकण्डों से छतें बनायी हैं? वसन्त में जब कागावाबेर्दा की ढलानों पर पाटल-कुसुम खिल उठते हैं, कितने लोग अपने बकरों व भेड़ों को ऊपर पहाड़ी चरागाहों में ले गये हैं, फिर न जाने कितने लोगों ने खुरजियों में पनीर भरा है और जाड़े में बाजरे की रोटी के साथ मिलाकर खाया है?

* * *

तपती दोपहरिया में तीन घुड़सवार कागावाबेर्दा की चट्टानी ढलान से ऊपर जा रहे थे। अपने कपड़ों व घोड़े पर बैठने के ढंग से उनमें से दो नगरवासी लग रहे थे—ऐसे लोग जिन्होंने इस क़िले व चोटियों के दर्शन कभी नहीं किये थे।

तीसरा आदमी उनका मार्ग-दर्शक था। पहले दो व्यक्ति घोड़ों पर अयाल से चिपके, दोहरा हुए बैठे थे जबकि तीसरा व्यक्ति ज़ीन पर हिचकोले

लेते कोई गीत गुनगुना रहा था—गीत निर्जन प्रपात-खड्ड, धुँधली चोटी व दूरवर्ती गाँव जितना ही उदासीन व मायूस था।

क़िले को छुपाये बादल किसी पर्दे की तरह कभी-कभी हट जाते और कभी दीवारें, कभी ऊपरी हिस्से दिखाई देने लगते। पहला घुड़सवार दीवारों पर से अपनी निगाहें हटा ही नहीं पा रहा था। मन ही मन में वह क़िले के बारे में प्रचलित दन्तकथाओं, चर्मपत्रों में सुरक्षित उन कथाओं को याद कर रहा था जब राजकुमार यहाँ शासन करते थे। जब ज़िरह बख़्तर से लैस घोड़े लौह-फाटक के बाहर रास्ते पर चलते-फिरते रहते थे और भाले चमकाते सूरमा हमलों से लौटते थे। चश्मे के अन्दर से झाँकती उसकी आँखें किसी विद्वान की आँखें थीं। दरअसल वह उन सूरमाओं को देख सकता था, व उनकी प्रशंसा के गीत गानेवाले इतिहासकारों को चर्मपत्र पर नुकीले सरकण्डों से शब्द अंकित करते देख सकता था और उन प्राचीन बीजाश्वों की टापें सुन सकता था। उस चोटी की चढ़ाई तय करना उसके लिए कितना कठिन था जिसे यहाँ क़िले में रहनेवाले पूर्ववर्त्ती लोग पहाड़ी बकरों की तरह आसानी से तय कर लेते थे।

आख़िरकार वे गाँव में जा पहुँचे। पहला घुड़सवार आगे बढ़ता रहा। वह प्राचीनकालीन मार्ग की तलाश कर रहा था और उसे अपनी निमग्नता में शिविराग्नि की राख के पास खेलते बच्चे, न ही चौकन्नी दृष्टि से देखते बकरे ही दिखाई दिये थे।

नमदे का टोप पहने दूसरा घुड़सवार कागावाबेर्दा की चोटी पर अतीत की तलाश में नहीं था। उसके हाथों में एक मोटी-सी रेखांकन पुस्तिका व नुकीली-सी पेंसिल थी। जैसे ही किसी का चेहरा या शैवाल-युक्त चट्टान का कोई आकर्षक कोना उसे भा जाता, वह रेखांकन शुरू कर देता।

एक घुड़सवार पुरातत्ववेत्ता था, दूसरा चित्रकार।

जब वे झोंपड़ों के पास पहुँचे, बहुत से कुत्ते बाहर निकल-निकलकर उनकी ओर दौड़ पड़े।

कुत्तों का भौंकना सुनकर कुछ लोग दरवाज़ों पर आकर उन्हें देखने लगे।

खेलते बच्चे घोड़ों के पीछे दौड़ते-भौंकते कुत्तों को देखते रहे। अपना चाबुक दिखाकर उनके मार्ग-दर्शक घुड़सवार ने उनको डराकर भगा देने की निष्फल कोशिश की। कुत्ते उनके पीछे-पीछे क़िले की दीवारों तक भौंकते आये फिर दौड़ते हुए लौट गये।

क़िले के पत्थरों में जैसे जान पड़ गयी थी: वे पुरातत्ववेत्ता से बात-चीत करने लगे थे। वह एक-एक पत्थर के पास जाता, झुककर कुछ तलाशता, उसे नापता और अपनी पुस्तिका में लिखता जाता। जूते की नोक से गर्द को कुरेदता वह फिर किसी दूसरे नमूने के पत्थर की खोज करता। इस तरह आखिर में वह दीवार के ऊपर जा चढ़ा। वहाँ उसने मीनार में बने एक छेद से सिर घुसाकर अन्दर की ओर झाँककर देखा। दीवार में अंकित किसी लेख पर दृष्टि पड़ते ही उसके मुँह से आश्चर्यपूर्ण तीव्र ध्वनि निकल गयी।

लगाम नीचे छोड़कर दीवार के पास बैठकर धूम्रपान करता मार्ग-दर्शक उस तीव्र ध्वनि से चौंककर पैरों पर उठ खड़ा हुआ। उसे लगा, चश्मे-वाले आदमी को शायद साँप ने काट खाया था।

चित्रकार दीवारों के भग्नावशेषों तथा नुकीली मीनारों को रेखांकित करने में लगा था। जब वह किले के प्रवेश-द्वार को रेखांकित कर चुका था, अचानक ही उस की पेंसिल बीच हवा में लटकती रुक गयी क्योंकि पदचापों से चौंककर गीध घोंसले से तेज़ी से उड़ता बाहर निकल आया था। अब वह मीनार के चक्कर लगा रहा था। पंखों की ज़बर्दस्त फड़फड़ाहट के साथ दूसरे पक्षी भी उसके पीछे-पीछे चले आये थे।

भयभीत घोड़े एक-दूसरे से चिपक-से गये थे। जब पुरातत्ववेत्ता ने चिल्लाकर राजकुमार बाकुर के मक़बरे को ढूँढ़ लेने की बात बतायी तो चित्रकार की समझ में कुछ भी नहीं आया। वह गीधों की उड़ान, उनके डैनों की शक्तिशाली फड़फड़ाहट देखने में लगा था, वह उनकी वक्र, ख़ून-सी लाल चोंचों पर मन्त्रमुग्ध था। उनकी वृत्ताकार उड़ान में एक डरावनी भव्यता थी।

उसे इसका भी पता नहीं चला कि कब उसका टोप सिर से फिसलकर चट्टान के सिरे पर जा गिरा था।

बेल्ट से हँसिया बाँधे, सिर पर गन्दा-सा रूमाल लपेटे और डण्डे पर झुका एक किसान चट्टानी ढलान तय करके मार्ग-दर्शक के पास आ पहुँचा।

उसे चश्मेवाला आदमी एक चट्टान को खिसकाते दिखाई दिया थी। जब उसने मार्ग-दर्शक से इन अजनबियों का परिचय और भग्नावशेषों में उनकी तलाश के बारे में पूछा तो उससे कोई जवाब देते न बना। तब उसने कह दिया कि किसी किताब में लिखा है, कागावाबेर्दा की चोटी पर सोने के सिक्कों से भरा कोई घड़ा गड़ा है।

किसान सोच में डूब गया। फिर अपने कन्धे झटककर वह प्रपात खड्ड की ओर खेत में बाजरा की फ़सल काटने लौट गया। लौटते-लौटते वह अपने आप से बातें करता जा रहा था। कितनी खुशक़िस्मती होती अगर वह गुप्त ख़ज़ाना उसे मिल गया होता। चश्मेवाला आदमी जिस चट्टान को हिला-डुला रहा था, उस पर तो वह अक्सर बैठा करता था। काश, उसे ख़ज़ाने की जानकारी होती तो आज उसकी जेबों में सोने के सिक्के खनकते होते। आह, कितनी गायें उसने ख़रीद ली होतीं... इस तरह के विचारों में डूबा, वह अपने खेत में लौट आया। लम्बी जाकिट उतारकर उसने एक ओर फेंक दी और उसके साथ ही बेकार के ख़्यालों को दिमाग़ से झटककर बाजरे के पौधे को मुट्ठी में थाम, वह कटाई करने लगा।

भग्नावशेषों के बीच एक पाटल-कुसुम खिला था। लेकिन पुरातत्ववेत्ता को न तो वह चटक लाल फूल दिखाई दिया, न घास दिखाई दी। सब को वह जूतों तले मसले डाल रहा था।

दुनिया उसके लिए एक बहुत बड़ा संग्रहालय थी जहाँ जीवित वस्तुओं का कोई अस्तित्व न था। चट्टानों पर फैली सदाबहार सिरपेंच की लता उसने उखाड़ फेंकी, अपनी छड़ी की नोक से दरार में खिले पाटल-कुसुम को तोड़कर, शिलालेख में फंसी मिट्टी को कुरेदकर निकालते हुए प्यार से वह पत्थरों पर हाथ फेरने लगा। पुरातत्ववेत्ता की दिलचस्पी की सभी चीज़ों को रेखांकित करने के बाद चित्रकार भग्नावशेषों, नुकीली उभारदार चट्टानों के बीच उक़ाब के घोंसले तथा दीवार के निम्नवर्ती हिस्से में खिलते पाटल-कुसुम को अंकित करने में लग गया।

* * *

तीसरे पहर वे क़िले से रवाना हुए। नीचे उतरने से पहले पुरातत्ववेत्ता ने पुस्तिका में टिप्पणियाँ अंकित करते हुए, भग्नावशेषों का एक और चक्कर लगाया। फिर तेज़ी से चलकर वह दोनों से आ मिला।

इस बार उनका मार्ग-दर्शक आगे-आगे चल रहा था। अगर पुरातत्ववेत्ता राजकुमार बाकुर तथा चर्म-पत्र के ढेरों के बारे में सोच रहा था और बासुत के फेनिल जल के कलरव को सुनते हुए अगर चित्रकार पाटल-कुसुम की याद कर रहा था तो मार्ग-दर्शक सिर्फ़ ताज़ा नान, पनीर व दही के बारे में सपना देख रहा था।

पहली रिहायश के सामने ही उसने घोड़ों से ज़ीन उतार डाले और उनके पैरों में छदान डाल वह सँकरे से दरवाज़े से अन्दर जा पहुँचा। भूखे घोड़े ताज़ा घास पर ललक से टूट पड़े।

अन्दर प्रवेश-द्वार के पास अँगीठी के नज़दीक एक छोटा-सा लड़का बैठा था। वह गर्म राख पर कुकुरमुत्ते भुन रहा था और अजनबियों को देखकर चौंक उठा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, कुकुरमुत्तों को जलते छोड़ वह भाग जाये या उन्हें बाहर निकाल ले। माँ के पदचाप सुनकर उसमें साहस आ गया। भुने कुकुरमुत्ते को बाहर निकालकर उसने ठण्डा होने के लिए अँगीठी के पत्थर पर रख दिया।

उसकी माँ अन्दर आयी, आँखों तक रूमाल को नीचे खींचकर वह कोने में गयी। बिस्तरों के ढेर से उसने दो तकिये निकाले और आगन्तुकों की ओर बढ़ा दिये।

मार्गदर्शक ने पुरातत्ववेत्ता के बुग़चे से टिनबन्द मांस निकाल लिया।

"बहन, हमें भूख लगी है," वह बोला। "अगर तुम्हारे पास हो तो थोड़ा-सा दही दे सकती हो और चाय उबाल सकती हो। चीनी हमारे पास है।"

अँगीठी के पास जाकर औरत कुकुरमुत्तों को परे खिसका कर झुकते हुए चिनगारियों में फूँक मारने लगी। रूमाल उसके सिर पर से हट गया और चित्रकार को उसका सफ़ेद ललाट, चमकते काले बाल व काली-काली आँखें दिखाई देने लगीं। वह धुआँती अँगीठी और चिनगारियों पर झुकी औरत की ओर से अपनी दृष्टि हटा ही नहीं पा रहा था। यह चेहरा उसने पहले कहाँ देखा था? यह वही सफ़ेद ललाट, वही गहरे रंगवाले पाटल कुसुम-सी आंखें थीं। अँगीठी पर तिपाई रखने के लिए औरत जब उठ खड़ी हुई और उसने धुआँ से काली पड़ गयी केतली उठा ली, उसकी आँखें और उसकी भौंहों पर उड़कर पड़ी राख की सफ़ेद धूल उसे एकदम क़रीब से दिखाई दीं।

गोकि बहुत साल बीत चुके थे! लेकिन क्या दो चेहरे इतने मिलते जुलते हो सकते हैं? उनकी मुखाकृति भी एक-सी थी।

इस औरत का चेहरा धूप से सँवला गया था लेकिन इसकी आँखें उसी औरत-सी थीं, दोनों की कमर पतली थी और बदन कोमल।

तेज़ी से बिना कुछ बोले औरत ने चाय उबाली। जब कभी वह झुक-

ती, खड़ी होती या तिनके की चटाइयों पर चलती, उसकी बाँहों के कड़े छोटी छोटी घण्टियों की तरह बजने लगते, लम्बी-सी पोशाक धीमे से सरसरा उठती।

उस दूसरी ग्रौरत की पोशाकें भी सरसराहट पैदा करती थीं लेकिन इस के ग्रलावा वह भूरा कोट ग्रौर काले मखमल की नारंगी पिनदार टोपी भी पहनती थी।

ग्रब वह ग्रौरत बहुत दूर जा चुकी थी। शायद बासुत किसी ग्रन्य नदी से मिलकर ग्रन्त में सागर में जा मिलती थी–उस सागर में जिसके बालुकामय तट पर उस ग्रौरत की बग़ल में वह कभी बैठा करता था।

मार्गदर्शक ने भोजन का दूसरा डिब्बा खोला। पुरातत्ववेत्ता की दृष्टि मेज़पोश ग्रौर उस पर रखे तांबे के बर्तनों पर टिकी थी। लड़का कुकुरमुत्ता खा चुका था। तभी उसकी हैरान नज़र चमकते डिब्बे पर पड़ी–वह डिब्बों के ख़ाली होने की प्रतीक्षा करने लगा। मार्गदर्शक ने उसकी दृष्टि भाँप कर डिब्बा उसे दे दिया। लड़का उसे हिलाने लगा। बाहर में लेटा एक कुत्ता गोश्त के बचे टुकड़ों को निगल गया। फिर लड़का ग्रपने दोस्तों को दिखाने के लिए डिब्बा हाथ में लिये बाहर दौड़ पड़ा। ऐसे डिब्बे इन इलाक़ों में ग्रजूबे ही थे।

ग्रँगीठी के पास बैठी ग्रौरत बार-बार केतली के ढक्कन को उठाकर देख लेती कि चाय का पानी उबला या नहीं। वह ग्राग को तेज़ी से जलाये रखने में लीन थी–बादलों की तरह उठकर, सरकण्डों की दीवारों की झिरियों से निकलते धुएँ से ग्राँखों को बचाती वह लकड़ियों को बार-बार एक-दूसरे के क़रीब ला रखती।

लम्बी पोशाक के ग्रन्दर से ग्रँगीठी के पास बैठी उस ग्रौरत के घुटनों की बनावट की बाह्य रूपरेखा साफ़ दिखाई दे रही थी–ग्रँगीठी के पास बैठी वह ग्रौरत चित्रकार को तरंगायित धुएँ से भविष्यवाणी करनेवाली जादूगरनी-सी लग रही थी।

दूसरी ग्रौरत कभी नंगे पाँव नहीं चली थी, न ही कभी वह धुग्राँती ग्रँगीठी के पास बैठी थी।

उषाकाल में तट की चट्टानों का पद-प्रक्षालन करती कांस्य लावा-सी उर्मियाँ समुद्र से उठा करती थीं।

वह काले मखमल की टोपीवाली ग्रौरत तट पर बैठी ग्रपनी छतरी से बालू पर रेखाएँ खींचती व मिटाती रहती थी। वह ग्रपने हाथों में सूखी

टहनी लिये तोड़ रहा था। उनके पैरों पर झाग उछालती लहरें टहनी के उन टुकड़ों को बहाकर दुबारा समुद्र में ले जातीं। जब दोनों सागर-तट पर बैठे थे, उस औरत ने उससे विवाह का वायदा किया था और दुनिया अचानक एक असीम सागर बन गयी थी और उसका हृदय उस सागर का एक हिस्सा बन गया था।

फिर दिन बदल गये। अत्यन्त अप्रत्याशित रूप से जीवन ने उन्हें बिछुड़ा दिया था। बस उसके हृदय में उस औरत की पाटल-कुसुम-सी आँखों की, उसके भूरे कोट की और किस प्रकार बालू पर अपना वायदा अंकित करके उसने मिटा डाला था, इसी की याद भर रह गयी थी।

केतली का ढक्कन खनका। एक टोकरी से कुछ तश्तरियां लेकर औरत ने रंगीन गिलास मेज़पोश पर रख दिये। जब वह नीचे की ओर झुकी, उसकी लम्बी-लम्बी वेणियाँ कन्धों पर फिसल पड़ीं। सागर तटवाली औरत के बाल छोटे-छोटे थे, उसकी गर्दन गोरी व त्वचा स्वच्छ थी।

ख़ाली डिब्बा हाथ में लिये लड़का दौड़ता अन्दर आ पहुँचा।

सीधे अजनबियों को घूरता बच्चों का एक झुण्ड दरवाज़े के पास अब आ खड़ा हुआ था। जब लड़के को दूसरा डिब्बा दे दिया गया, उसकी ख़ुशी की कोई सीमा न रही। इस बार डिब्बा लेकर वह बाहर की ओर नहीं दौड़ा था बल्कि वहीं चटाई पर जा बैठा था। माँ ने उसे गिलास में थोड़ी-सी चाय दे दी थी और चित्रकार ने चीनी का एक बड़ा-सा टुकड़ा उसके गिलास में डाल दिया। चीनी से उठते बुलबुलों को लड़का मन्त्र मुग्ध दृष्टि से देखे जा रहा था। चीनी के टुकड़े को बाहर निकाल लेने के लिए लड़के ने अँगुली गिलास में घुसेड़ दी। गर्म चाय से अँगुली तो जल गयी लेकिन मुँह से उफ़ तक न निकली–चीनी का गलता टुकड़ा स्वादिष्ट जो था! मानवजाति के इतिहास के किसी परिदृश्य को याद करके पुरातत्ववेत्ता हँस पड़ा था। पानी भरकर औरत ने केतली दुबारा चढ़ा दी थी और इसके साथ ही वह अपने शरारती बेटे की ओर देखकर मुस्करायी भी थी।

उसकी मुस्कान चित्रकार की दृष्टि से छुपी नहीं रह सकी। यह मुस्कान कितनी जानी-पहचानी थी... एक-से लोगों की मुस्कानें भी एक-सी होती हैं। पहले, औरत का ऊपरी होंठ काँपा था, फिर होंठ अलग हुए थे और मुस्कान उसकी आँखों में चमक उठी थी।

झपटकर चित्रकार ने जेब से अपनी रेखांकन पुस्तिका निकाल ली।

चट्टानों व निम्न उद्भूतों के रेखांकनों से भरे पन्नों को पलटते हुए वह अत्यन्त दक्षतापूर्वक अँगीठी के पास बैठी औरत की रेखाकृति बनाने लगा।

उसकी आकृति की रूपरेखा परिचित थी; कल्पनालोक में वह वर्षों उसे रेखांकित करता रहा था।

उसकी पुस्तिका के रेखांकन को लड़के के अलावा कोई नहीं देख पाया। लड़के को काग़ज़ के उन सफ़ेद पन्नों पर हर चीज़ सोते के निर्मल जल की भाँति प्रतिबिम्बित लगी।

थोड़ी ही देर बाद मार्गदर्शक घोड़े ले आया। उसने लगाम बाँधी, उदर-दाम कसे, खुरज़ियाँ कसीं और औरत को अलविदा कहने जा पहुँचा। तेज़ी से उठ खड़ी हो, उसने रूमाल ललाट पर डाल लिया। उसके फैले हाथ को उसकी अँगुलियों के सिरे छू गये। बाक़ी दोनों आदमियों ने भी अपने हाथ बढ़ा दिये लेकिन औरत ने उन्हें एक हाथ सीने पर रखकर, सिर झुकाते हुए विदा दी।

चित्रकार ने लड़के को चाँदी के कुछेक सिक्के दे, उसका सिर सहलाया।

तीनों घोड़ों ने कागावाबेर्दा की चट्टानी ढलानों से होकर नीचे बासुत घाटी की ओर बढ़ना शुरू कर दिया। पहाड़ी से नीचे उतरते तीनों व्यक्ति अपने-अपने ख़्यालों में खोये थे।

सड़क के किनारे-किनारे पाटल-कुसुम खिले थे। चित्रकार ने ज़ीन से नीचे की ओर झुक कर एक फूल तोड़ पुस्तिका के उस पन्ने में दबा दिया जिस पर अँगीठी के पास बैठी सुडौल औरत की छवि अंकित थी।

घोड़ों के खुरों तले पत्थर खड़कते और दर्रे में लुढ़क पड़ते।

चित्रकार के मस्तिष्क में एक सागर हिलोरें ले रहा था। इसकी लहरें पहले काले मख़मल की टोपी व छोटे बालोंवाली औरत को फिर पीठ पर लम्बी लटकती वेणियों व लम्बे चोग़ेवाली औरत को उछाल फेंकतीं, फिर किले के भग्नावशेषों तथा दीवारों के निम्नवर्ती हिस्से में खिले चटक लाल फूलों को सामने उपस्थित कर देतीं ।

* * *

झुटपुटा घिर आया था।

उसी मार्ग से एक व्यक्ति ऊपर की ओर चला आ रहा था। एक हँसिया उसकी बेल्ट से बँधा था। आदमी थका था। दिन भर वह बाजरे

के छोटे-छोटे डण्ठलों को काटता रहा था और अब उसकी पीठ दुख रही थी। उसके डग भी छोटे-छोटे थे, वह अपने डण्डे के सहारे पूरी तरह झुका, साँसों पर क़ाबू पाने के लिए बार-बार रुकता चल रहा था। जब कभी वह रुकता, उसके घुटने काँप उठते। यह वही आदमी था जिसे मार्ग-दर्शक ने किले में गड़े ख़ज़ाने के बारे में बताया था। उसने अपने खेत से ही नीचे की ओर जाते घुड़सवारों को देख लिया था। उसे प्रतीत हुआ था जैसे सोना उनकी खुरजियों में भरा था– वही सोना जो सदियों से उसी पत्थर के नीचे दबा पड़ा रहा था, जिस पर वह तब बैठा करता था जब भग्नावशेषों में भेड़ों व बकरियों को चराता रहता था। इन विचारों के कारण या बेहद थकान के कारण उसके मन को कोई चैन नहीं मिल रहा था, वह शिकार पर निकले भूखे भालू-सा कुपित हो रहा था।

जब वह पहले रिहायश के पास पहुँच गया, स्वागत के लिए आगे आये कुत्ते को उसने पैर की ठोकर से एक ओर भगा दिया, बेल्ट में बँधा हँसिया निकालकर एक कोने में फेंक दिया। फिर अँगीठी के पास अपने डण्डे को टिकाकर वह चटाई पर बैठ गया।

आग धुआँ रही थी। केतली उबल रही थी। एक तकिये पर चीनी के दो टुकड़े पड़े थे।

रेशेदार छाल की अपनी चप्पलों को उतारकर उनमें फँसे भूसे को अभी वह निकाल भी नहीं पाया था कि औरत अन्दर आ पहुँची। उसकी बाँहों के कड़े क्वणित हो उठे और लम्बी पोशाक की शिकनों में सरसराहट हुई। ख़ाली डिब्बों को हाथ में थामे, उसके स्कर्ट से बेटा लटका था।

अपने ख़ज़ाने दिखाने लड़का बाप के पास दौड़ता आ पहुँचा। अचानक उस व्यक्ति को महसूस हुआ कि जिस चटाई पर वह इस समय बैठा था, उस पर अजनबी बैठ चुके थे। फिर लड़के ने दयालु अजनबी के दिये चाँदी के सिक्के उसे दिखाये।

बेटे को बाप ने गुस्से में आकर धकेल दिया, डिब्बे फेंक दिये। वे ढुलमुलाये और लड़का भी। लेकिन उछलकर पैरों पर खड़ा होते हुए लड़के ने उन डिब्बों को फिर उठा लिया। फिर माँ के स्कर्ट में सिर छुपाकर वह सुबकने लगा। बाप को खेद हो आया। उसने आवाज़ देकर उसे सिक्का

दिखाने के लिए बुलाया। आँसुओं के बीच मुस्कान बिखेरते लड़का क़रीब आ गया, सिक्के उसकी मुट्ठी में बन्द थे। फिर उसने बाप को बताया कि अजनबी की जेब में सफ़ेद-सफ़ेद पन्नोंवाली कोई चमकदार-सी चीज़ थी। जिस आदमी ने उसे सिक्के दिये थे, वह उन पन्नों में से एक पर माँ की तस्वीर भी बनाकर ले गया था।

गुस्से से उबलते किसान पर ईर्ष्या ने वज्रपात-सा किया। उसके नेत्र चौड़े हो गये। चेहरा पीला पड़ गया। बेटे की ओर देखकर औरत लजा गयी; शौहर ने उसके गालों पर उभरते रंगों को देख लिया। अगले ही क्षण वह तैश में आये भालू की तरह उछल पड़ा। उसके बालदार हाथों में भारी डण्डा ऊपर को उठा और शोर के साथ औरत की पीठ पर जा गिरा।

उसके बटन ठुनक उठे, वेणियाँ इधर-उधर हो गयीं। केतली का ढक्कन उलट गया। डण्डे का टूटा सिरा उड़कर एक कोने में जा गिरा। औरत रोयी नहीं, बस पीड़ा से ऐंठ कर रह गयी। हाथ से पीठ थामे, रोने के लिए वह बाहर चली गयी।

डिब्बों को हाथों में लिये-लिये लड़का भी उसके पीछे-पीछे चला गया। उसने अपना सिर उसके स्कर्ट में छुपा लिया था।

उधर उसका बड़बड़ाता शौहर बाजरे की थोड़ी-सी रोटी खा सिर के नीचे भेड़ की ख़ाल का टोप रख चटाई पर हाथ-पाँव फैलाकर लेट गया।

कागावाबेर्दा पर्वत पर पुनः निस्तब्धता छा गयी। जैसे-जैसे रात की कालिमा उतरती गयी, अँगीठी की आग भी बुझ गयी। हिंस्र पशुओं के भय से काँपते गाँव के कुत्ते रिहायशों के बाहर सिमट आये थे। भेड़ें घास पर लेट गयी थीं। नमदे का एक टुकड़ा लड़के को ओढ़ाकर औरत भी चटाई पर जा लेटी।

किसी अति विशाल घोंघे की तरह बादल झोंपड़ों की ओर पहाड़ से नीचे रेंगने लगे।

जब निद्रामग्न भेड़ों की ऊन पर रात की नमी आ जमी, शैवाल व चट्टानों को भी नमी घेर लिया।

पाटल-कुसुम की पँखुड़ियों पर ओसकण गिर रहे थे। इसकी सुगन्धि से अभिभूत एक नन्हा भौंरा फूल के पुष्पकोष में सो गया था। और भौंरे को यह दुनिया एक सुवासित फुलवारी, पाटल-कुसुम प्रतीत हो रही थी।

देरेनिक देमिर्चियान

एक पुस्तक की कहानी

है हाथ लेखक का नश्वर,
किन्तु पुस्तक सदियों तक अमर।

फूल आलोक थे, फल अनमोल पत्थर। वह विश्व की कल्पना इसी रूप में करता था, जहाँ उसके पशु-पक्षियों के पात्र दादी अम्मा की सुनाई राजा, राजकुमारों व आम लोगों की परीकथाओं से आकर जीवित हो उठते थे। उसके विचार से तभी तो शृंगवर इतने अनिष्टकारी दिखाई देते थे और पहाड़ वान झील की लहरों की तरह ऊपर को उठे थे।

"देखो," वह चिल्ला पड़ता, "लड़का शेर पर सवार है!"

"कहाँ?" उसके पास एकत्र होते दूसरे लड़के पूछते।

ज्वार्त खेत में पत्थरों के किसी ढेर की ओर अँगुली से दिखाकर हँसता हुआ भाग खड़ा होता।

मूर्ख बनाने के लिए लड़के उसकी पिटाई करने उसके पीछे दौड़ पड़ते। जब वह किसी फूल की सुरभि ले रहा होता, टेकरी पर लड़के उसे आ पकड़ते। लेकिन वे सब उस पर टूट पड़ें, इससे पहले ही वही फूल तोड़-कर वह हँसते हुए बोल उठता,

"देखो, देखो, ऐबट गिरजाघर चला जा रहा है..."

और फूल को हाथ में हिलाते हुए वह एक ऐसी अदाकारी पेश करता कि लड़के असली बात भूलकर ठहाका लगाते हँस पड़ते।

"वाह, क्या बात है!" वे आश्चर्यचकित होकर कह उठते।

वे प्राय: ज्वार्त को घेरकर चट्टान पर बैठा करते थे।

"मैं महाखड्ड के नीचे-नीचे चला जा रहा था," वह कहना शुरू करता, "कि अचानक एक जलपरी नदी में तैरती हुई मेरे पास आ पहुँची और बोली: 'यहाँ आओ, ज्वार्त। मेरे पास आओ।' मैं उसके पास चला गया। फिर वह मुझे नदी के अन्दर पेटे में ले गयी। ओह, क्या कहूँ, वहाँ न जाने कितने महल हैं! सब के सब क़ीमती पत्थरों, हीरे जवाहरातों से बने हुए..."

"तुम झूठ बोल रहे हो!" एक लड़का यह कहकर उसे लात मार देता। ख़तरा महसूस कर ज्वार्त वहाँ से भाग खड़ा होता, लड़के चीखते चिल्लाते उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ते।

घर पर वह अपने माँ-बाप को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता कि महाखड्ड में उसे सोने के ऊँटों का एक पूरा जत्था जाता दिखाई दिया था। एक ऊँट की पीठ पर बन्दर बैठा था और बन्दर के हाथों में मरकत का पालतू मुर्ग़ा था जब कि ऊँटवान ने सोने का केसाक पहन रखा था। ऊँट पर एक चन्द्रमुखी लड़की भी बैठी थी, लड़की के बालों में गुलाब की कलियों की माला था।

उसकी कहानियाँ सुनकर बड़े-बुज़ुर्ग एक-दूसरे की ओर देखने लगते।

"भगवान तेरा भला करे, मुन्ने," गहरी साँस छोड़कर उनमें से एक बोल उठता।

शाम ने अपना रंग गाँव, फलोद्यानों व चोटियों पर जमा दिया।

ज्वार्त गहरी नीन्द सोया था जब बूढ़ी पड़ोसन सान्दुख़्त ने दुखी स्वर में उसकी माँ से कहा,

"तेरे बेटे को कुछ हो गया है, मेरी प्यारी।"

मज़हबी, क़ायदे-अदबवाले एक दूसरे बूढ़े पड़ोसी गादिशो से भी चुप नहीं रह गया। उसने मसीही अन्दाज़ में कहा:

"उसे होली क्रॉस मोनैस्ट्री में भेज दो।"

ज्वार्त की माँ का हृदय विदीर्ण हो गया, बाप का चेहरा धूमिल।

और इस तरह, आज से हज़ारों साल पहले उस शान्त सन्ध्या में जब दीवार के विवर में झींगुर चैन से गा रहे थे, ज्वार्त के माँ-बाप ने उसे होली क्रॉस मोनैस्ट्री में भेज देने का फ़ैसला कर लिया।

* * *

छकड़े में बैठते हुए ज्वार्त ने जब रविवार के अच्छे कपड़ों में किसानों की ओर देखा तो उनमें से एक उसे आदमियों के कपड़े पहने एक बाघ प्रतीत हुआ। ज्वार्त ठहाके के साथ हँसते हुए बोल उठा, "बाघ गिरजाघर जा रहा है।" किसान ने सिर झटकते हुए मलामत भरी नजरों से उसके पिता की ओर देखा। ज्वार्त की माँ ने चुपके से आँसू पोंछ लिये।

ज्वार्त वहाँ से खिसककर छकड़े के अगले हिस्से में, अपने चाचा मानुक के पास चला आया। चाचा ने उसे बाँहों में भरकर कमची थमा दी। ज्वार्त बैलों को हाँकने लगा। अचानक एक जोड़े की ओर इशारा करते हुए वह बोल उठा,

"देखिये, चाचा जी! बैल की आँखों में रात उतर आयी है।"

चाचा मानुक हँस पड़े।

जब छकड़ा एक छोटे-से खड्ड में पहुँचा, चाचा मानुक एक गीत गुनगुनाने लगे।

सागर-मीन से तारे के नैन लड़ गये।
तभी उनके सुख के दिन भी लद गये:
तारे से मिलन हेतु मीन के पंख नहीं,
तो जल में गिरकर तारे की मौत वहीं।

ज्वार्त बड़े ध्यान से गीत सुन रहा था, उसकी आँखों में जिज्ञासा की दमक थी।

"क्या तारे को मछली से बहुत प्यार है?"

"हाँ-हाँ," एक दीर्घ निश्वास के साथ चाचा मानुक बोले।

"लेकिन क्या तारा मछली के पास नहीं आ सकता?"

"नहीं, मेरे लाड़ले।"

"क्या आकाश बहुत दूर है?"

"अरे, हाँ..."

ज्वार्त सोचने लगा, मछली आकाश तक क्यों नहीं पहुँच सकती। तभी उसकी भटकती दृष्टि गरज के साथ बहती नदी पर जा टिकी। नदी खड्ड से होकर बहती थी, उसकी छोटी-छोटी लहरें असंख्य रूप धारण कर रही

थीं। स्वच्छ सोतों का पानी भी दोनों ओर की चट्टानों पर बून्द-बून्द गिर रहा था।

खड्ड दो पर्वत श्रेणियों के बीच था। पहाड़ी प्रायद्वीप पर एक काले रंग की मोनैस्ट्री विराजमान थी, वह वहाँ से दुनिया की ओर रुक्षता व भव्यता से देखती रहती थी। इसके गुम्बद आकाश से लगे थे।

प्रवेशद्वार के पास तीर्थयात्रियों का एक दल भीड़ लगाये था। ज्वार्त ने मोनैस्ट्री की दीवार की ओर देखा फिर उस ओर इशारा करते हुए कहा,

"देखिये पिताजी। वहाँ पेड़ तले हाथ में अनार लिये कौन खड़ा है?"

"कहाँ?"

"वह, वहाँ।"

उसके पिता व तीर्थ यात्रियों ने दरारदार दीवार पर चकित निगाहें दौड़ायीं। ज्वार्त को अपनी कल्पना में वे दरारें इनसानी रूप धारण किये दिखाई दे रही थीं। वह उल्लासपूर्वक हँस पड़ा।

"देख रहे हैं? वहाँ एक तीरन्दाज़ है..."

लोग भयभीत हो उठे। दूसरे लोग भी उनके पास चले आये और सबको ज्वार्त के प्रति दया की अनुभूति हो आयी। वह हाथ हिलाकर समझाये जा रहा था,

"देखते हैं? वह हिरण को अनार दे रहा है..."

संत्रासपूर्वक तीर्थयात्रियों ने सीने पर क्रॉस बनाया। ज्वार्त की माँ रो उठी और पिता ने ज्वार्त को शान्त करने के लिए उसका हाथ पकड़ लिया। ऐबट उनकी ओर देखकर मुस्कराया।

एक किसान ने ऐबट से फुसफुसाकर कहा,

"उसे हमेशा ऐसी चीज़ें दिखाई देती रहती हैं, फ़ादर। ऐसा लगता है, जैसे सपना देखते-देखते बोल रहा हो।"

"हमें भगवान से दया की दुआ करनी चाहिए," ऐबट मन्द स्वर में बोला।

सबको लड़के के लिए अफ़सोस हुआ। ज्वार्त को मोनैस्ट्री में ही रहना था। उसे भगवान की सेवा में छोड़ा जा रहा था। अब वह कभी दुबारा घर नहीं जा पायेगा।

सार्वजनिक उपासना शुरू हुई। गिरजाघर से ऊँट की गर्दन की घण्टियों की तरह टुनटुनाहट सुनाई देने लगी।

बच्चों सहित पुरुष तीर्थयात्री गिरजाघर के अन्दर आ पहुँचे।

अन्धेरी, धूलभरी मेहराबदार छत काले उक़ाबों के फैले डैनों-सी थी। कोने अन्धेरे में छुपे थे। पूजा की वेदी की गहराइयों में प्रतिमा-दीप की छोटी-सी लौ कुहरे में एकाकी तारे की तरह लग रही थी। काले कपड़ों में मोनैस्ट्रीवासी साधु अजीब-सी आवाज़ में दुआ पढ़ रहे थे। गिरजाघर के अन्धेरे कोने मृतक की बन्द आँखों की तरह दयनीय प्रतीत होते थे।

ज्वार्त उदास हो उठा। आँखें ऊपर उठाने में असमर्थ, वह फ़र्श की ओर देखता खड़ा था।

उपासना समाप्त हुई। ज्वार्त को वेदी के पास ले जाया गया। सामने फ़्रेम में जड़ी किसी मृत व्यक्ति के भयानक चेहरे की तस्वीर थी। उस आदमी की रूखी-सूखी दाढ़ी व अँगुलियाँ सुखट्टी थीं। मोमबत्ती से उसके एक गाल व एक आँख में झुलसन आ गयी थी। वह ज्वार्त की ओर घुड़काते हुए देख रहा था।

"चूमो! चूमो!" कोई फुसफुसाकर बोला।

...झकोलों की सरसराहट, कँपकँपाहट की आवाज़ सुनाई दी। ज्वार्त को एक अश्रुसिक्त स्वर सुनाई दिया, "ओह, मेरे लाड़ले, मेरे हत-भाग्य ज्वार्त!"

ज्वार्त ने आँखें खोलीं। कहाँ था वह ? हुआ क्या था? माँ-बाप बग़ल में बैठे थे। माँ घुटनों को पीटती रो रही थी। तीर्थयात्री उनके इर्द-गिर्द भीड़ लगाये थे। ज्वार्त के पैरों के पास सफ़ेद दाढ़ियोंवाला एक बूढ़ा था। बूढ़ा शान्तिपूर्वक उसकी ओर देख रहा था। बूढ़े को देखकर ज्वार्त को बाद-लों पर उड़े जा रहे सफ़ेद चोग़ेवाले उस बूढ़े की याद हो आयी जिसे उसने गिरजाघर की छत पर देखा था।

जब शाम होने को आयी, ज्वार्त के माँ-बाप और तीर्थयात्री मोनैस्ट्री से विदा हुए। अब अकेला ज्वार्त सितारों की सर्द रोशनी में गिरजाघर के अंधेरे प्रांगण में रह गया था। प्रांगण की ख़ामोशी को कोई भी आवाज़ भंग नहीं कर रही थी, वह किसी समाधि-प्रस्तर की तरह ख़ामोश था—जिसके तले एक छोटी-सी तितली, नन्हे से ज्वार्त को दफ़न कर दिया गया था।

उसके माँ-बाप और ग्रामवासी सहयात्री घर की ओर लौट चुके थे और

धीरे-धीरे घाटी में फैले फ़ीरोज़ी कुहरे में ग़ायब हो गये थे। उस ओर उदास दृष्टि से देखते हुए इसने दीर्घ साँस छोड़ी। एक नवदीक्षित उसे ऐबट के कक्ष में ले जाकर बोला कि ज्वार्त को फ़र्श पर भेड़ की खाल बिछाकर सोना है। ऐबट दीप के पास बैठकर काले चमड़े की जिल्दवाली एक किताब बोल-बोलकर पढ़ रहा था। फ़र्श पर भेड़ की खाल पर लेटे लेटे, वहीं से ज्वार्त पलक झपकाये बिना उसकी ओर देख रहा था। ऐबट ने पन्ना उलटा तो ज्वार्त को किरणों का एक स्वर्णिम पूला व फूलों की मालाएँ दिखाई दे गयीं।

फूल देखकर ज्वार्त के हृदय में हूक-सी उठने लगी। अपने गाँव के खेतों व खड्डों के फूलों की याद करके उसकी आँखों में आँसू भर आये। वे लोग उसे यहाँ, इस परायी व अन्धेरी मोनैस्ट्री में क्यों ले आये थे? वे उसे वापस घर ले जाने के लिए कब आयेंगे? क्या ऐसा भी हो सकता है कि वह अपने माँ-बाप या दोस्तों को फिर कभी नहीं देख पायेगा? क्या सबने उसका परित्याग कर दिया था? ज्वार्त ज़ोरों से सुबक उठा।

उसी रात उसे ठण्ड लगकर बुख़ार चढ़ आया। कानों में घण्टियाँ बजती रही थीं और आँखों के सामने से फूलों की लहर पर लहर गुज़र गयी थी। लाख बार पानी पीने पर भी प्यास बुझने को नहीं आती थी। जितना पानी पीता, प्यास उतनी ही बढ़ जाती। ज्वार्त कई दिनों तक बेसुध पड़ा रहा। ऐबट ने धैर्य व करुणा के साथ उसकी देखभाल की।

आख़िर वह होश में आया। आँखें खोल ज्वार्त ने काँपते हाथ से भौंहों पर छलछलाये सर्द पसीने को पोंछा। नवदीक्षित उसके लिए थोड़ी दलिया व सोते का पानी ले आया।

ज्वार्त ठीक तो हो गया लेकिन एक ज़बर्दस्त ग़म उसे खाये डाल रहा था।

वसन्त में जब मोनैस्ट्री का प्रांगण चारों ओर से फूलों से भर उठा, उनकी ख़ुशबू ज्वार्त को अपने गाँव, अपने दोस्तों के पास लौट जाने का आह्वान करने लगी। उसके दूरवर्ती गाँव की ओर पर्वतों की एक गहरी नीली श्रेणी फैली थी। अबाबीलें उधर ही उड़ी जा रही थीं। शुभ्र परियों को बैठाये हँसरूपी बादल भी उसी ओर जा रहे थे।

खड़ी चट्टान के सामने मोनैस्ट्री की दीवार के पास बैठकर ज्वार्त घण्टों ललक भरी दृष्टि से उस ओर देखते रह सकता था।

कोमल झुटपुटा उतरकर उसे सुला देता। नवदीक्षित गुनकियानोस उसे प्राय: खड़ी चट्टान के कगार पर सोया पाता। लड़के को जगाकर वह उसे अपने कक्ष में ले जाता।

शरद में जब गहरी खाई के इर्द-गिर्द बर्फ़ के गाले कपोतवत मँडराने लगते, ज्वार्त उनकी इस क्रीड़ा को निहारते-निहारते ख़ुद भी उनके साथ अपनी कल्पना में शरीक हो जाता। फिर अपने कक्ष में लौटकर भेड़ की खाल पर सिमटकर सो जाता।

गुनकियानोस एक सहृदय नौजवान था। ज्वार्त के प्रति तीव्र करुणा महसूस कर वह जल्दी ही उससे स्नेह करने लगा।

जब गिरजाघर के साधुओं की तीक्ष्ण दृष्टि उसके हृदय को सर्द बनाने लगती, संवेदना पाने के लिए वह गुनकियानोस की ओर देखने लगता। नवदीक्षित उसे प्रोत्साहन व दिलासा देनेवाला एकमात्र व्यक्ति था।

शाम के समय भेड़ की खाल पर लेटे-लेटे ज्वार्त ऐबट की ओर निहारता रहता। ऐबट रात-रात भर चर्मपत्रों को पढ़ने और लगातर, घण्टों लिखने में जुटा रहता। वह लिखता क्या था? बूढ़ा किन चिन्तनों में लगा रहता था?

ऐबट सचमुच विचित्र व्यक्ति था। उसकी चुप्पी और एकाग्रता ने ज्वार्त में जिज्ञासा पैदा कर दी। वह कैसा आदमी था? ज्वार्त उसके बारे में उतना ही जानता था जितना गुनकियानोस ने बताया था। दुनिया से वैराग्य लेने से पहले ऐबट वास्तुकार एवं दार्शनिक था। उसने मोनैस्ट्रियों, स्कूलों व गढ़ियों का निर्माण किया था। फिर शरीर से दुर्बल हो जाने के बाद वह साधु बन गया और अपना समय दर्शनशास्त्र में लगाने लगा था। दूसरे साधु उसे पसन्द नहीं करते थे। आत्मा की शान्ति की जगह दुनिया के काम-काज में लगे रहने के कारण वे उसकी मलामत करते थे।

गुनकियानोस की कहानियों ने ज्वार्त की जिज्ञासा और भी बढ़ा दी थी। अध्ययनकाल में जब दोनों पालथी मारकर ऐबट के निकट जा बैठते थे, ज्वार्त विस्फारित आँखों से उस बुद्धिमान व्यक्ति की ओर एकटक देखता रहता था। वह उस व्यक्ति का एक भी शब्द सुनने से वंचित नहीं होना चाहता था। शुरू में ज्वार्त को उसकी असामान्य, अनजानी बातें समझने में कठिनाई होती थी। हालाँकि एक बात शुरू से स्पष्ट थी: ऐबट एक

असाधारण व्यक्ति था, ऐसा व्यक्ति जिसके विचार समुद्र की तरह गहरे व अथाह थे और उसकी गर्जना की तरह ही अबोधगम्य। ज्वार्त उस बूढ़े की बातें सम्मोहित हो सुना करता।

कक्ष की दीवारों के बाहर प्रकृति के विराट जग में एक भव्य समारोह चल रहा था। आकाश का सहस्रमुखी दीप अपना प्रकाश पहाड़ों व घाटियों पर उंड़ेल रहा था, पक्षीगण आनन्दान्दोलित उड़ान भर रहे थे। धरती अपना महानतम उत्सव मना रही थी; अपनी रचना के सुख का उत्सव।

ज्वार्त और गुनकियानोस अपने पाठ में लगे थे। बूढ़ा ऐबट अपने लेखन में निमग्न था। कक्ष के खुले दरवाज़े से रविरश्मियों में नहाती एक मधुमक्खी उड़कर आयी तथा गुंजार द्वारा जीवन का उल्लास उन तक पहुँचाने लगी।

अचानक रविरश्मियों का अन्दर आना रुक गया। ज्वार्त ने उधर देखने के लिए नज़र उठायी तो एक लम्बे-से आदमी को चौखट पर खड़ा पाया। लिंटल से बचने के लिए सिर नीचा करके वह एक क़दम अन्दर आकर ठहर गया। उसने ज्वार्त पर एक तीव्र दृष्टि डाली तो उसकी बकरे-सी दाढ़ी ठीक उसके सामने चस्पाँ हो गयी। फिर ऐबट के क़रीब जाकर झुकते हुए उसने उसे एक किताब दी।

गुनकियानोस और ज्वार्त ने किताब की ओर देखने के लिए अपनी गर्दनें ऊपर उठा लीं। ऐबट ने उसे खोला। पन्ने बेलबूटों व तरह-तरह की गुलकारी से सज्जित थे। पाठ के बीच मोनैस्ट्रियों तथा अन्य इमारतों की तस्वीरें थीं। उस लम्बे-से आदमी का पुस्तक से ज़रूर कोई सम्बन्ध था क्योंकि वह पन्नों को उलट-पलटकर, यहाँ-वहाँ से कुछ-कुछ समझाये जा रहा था। रेखांकन उसी ने बनाये होंगे, ज्वार्त ने अनुमान लगाया।

"ऐबट ने किताब लिखी, उसमें इमारतों के चित्रांकन किये और तब तादे ने उसकी प्रतिलिपि तैयार करके तस्वीरें बनायी हैं," गुनकियानोस ने धीमे से उसके कान में बताया।

ऐबट ने किताब बन्द कर सन्तोषपूर्वक लम्बी साँस छोड़ी और विचारमग्न स्वर में कहा,

"मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। मैंने अपने जीवन का कार्य पूरा कर लिया है। अब मैं अकलुष चेतना के साथ सर्वशक्तिमान के पास जा सकता हूँ।"

चित्रकार तादे बूढ़े का हाथ चूमकर चला गया।

ऐबट ज्वार्त व गुनकियानोस की ओर देखकर कोमल भाव से मुस्करा उठा। उसने अपनी किताब से ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर सुनाना शुरू कर दिया। अपनी ही भावनाओं के प्रवाह में वह श्रोताओं को भी भूल गया।

"ब्रह्माण्ड और रचनात्मक कार्य..."

एक पन्ना उलटकर वह सोत्साह पढ़ता गया, "नगरों का निर्माण, वाणी का विन्यास, विचार का गठन..." कभी आकाश की ओर, कभी ज़मीन की ओर और कभी मोनेस्ट्री की दीवारों की ओर इंगित करते हुए उसने उन्हें मानव मस्तिष्क की शक्ति के बारे में बताया और वास्तुशिल्पीय नियमों की व्याख्या की।

ज्वार्त की कल्पना के तो जैसे पंख ही लग गये थे, वह अपने मस्तिष्क में अद्‌भुत तस्वीरों की रचना कर रहा था। फावड़े खनक रहे थे, अधरशिलाओं पर निष्ठुर चेहरेवाले राजमिस्तरी काट-छाँट करने में लगे थे और दक्ष राजगीर ऐसे भव्य नगरों का निर्माण कर रहे थे जिनके गुम्बद आसमान को छूते थे और बाग़ गर्तों पर झूलते थे।

"वृक्षों को उत्पन्न करती, वम्रकूटों को बढ़ाती प्रकृति अनवरत रूप से कार्यरत रहती है। प्रकृति की संततियो, तुम्हें भी रचना करनी चाहिए, अपने श्रम से प्रेम करना चाहिए। रचना तथा श्रम पावन हैं..."

"उत्पीड़न समाप्त हो जायेगा, सिंहासन तथा साम्राज्य टूट-बिखर जायेंगे, श्रम के फलों के अलावा कुछ नहीं बचेगा..."

इस असाधारण व्यक्ति के चेहरे का रंग उड़ गया था। अब वह कोई रूक्ष साधु नहीं बल्कि एक ऐसा सांसारिक व्यक्ति था जो भव्य निर्मितियों के सपने देखता था। कक्ष की दीवारें विस्तृत होती प्रतीत हुईं और ज्वार्त को असीम विश्व की झाँकी देने लगीं। और यह विश्व जहाँ पक्षीगण अपने सुखद घोंसलों का निर्माण करते थे, चींटियाँ अथक रूप से काम करती थीं, ज्वार्त को गगनचुम्बी मीनारोंवाली ऐसी महाकार वास्तुशिल्पीय संरचना प्रतीत होने लगा जहाँ आसमान में सूर्य चमकता था, अधरशिलाओं की श्रेणियाँ थीं, गहरे गर्त थे।

ज्वार्त को चैन नहीं था। वह रात में सो नहीं सकता। एक विचित्र तृषा उसकी आत्मा को कचोट रही थी। उसे न तो अपनी परेशानी का, न तो अपनी चाहत का कोई कारण समझ में आ रहा था।

गुनकियानोस ज्वार्त की छटपटाहट तो देख रहा था लेकिन समझ नहीं पा रहा था कि उसकी मदद कैसे की जाये, इस लिए बोला:

"ज्वार्त, कुछ और अध्ययन में लगने की कोशिश करो।"

ज्वार्त ने अपने मित्र की ओर अन्यमनस्क दृष्टि डाली।

"मेरा मस्तिष्क इतना अशक्त है कि मैं ख़ुद को समझने में भी असमर्थ हूँ, गुनकियानोस।"

"धैर्य से काम लो। तुम पर परमात्मा की कृपा होगी, वह तुम्हारे मस्तिष्क की अशक्तता दूर कर देंगे।"

"उनकी कृपा क्या है?"

"इसका मतलब है, परमात्मा तुम्हारे समक्ष तुम्हारी आकांक्षाएँ उन्मुक्त करेंगे और तुम्हें बुद्धिमान बना देंगे।"

"परमात्मा कौन है?"

गुनकियानोस अपनी बात समझा नहीं सका क्योंकि इस विषय में उसकी जानकारी ख़ुद उलझी-सी थी। ऐबट ने उसे बताया था कि परमात्मा की कृपा का अर्थ है प्रकाश।

"प्रकाश?" ज्वार्त इससे भयभीत हो गया। "लेकिन तब क्या होगा जब वह परमात्मा रात में, अन्धेरे में, इन एकाकी क्षणों में उपस्थित हो जाये?" इस बात पर विचार करते हुए ज्वार्त को बड़ी बेचैनी महसूस हुई।

विचारों में खोया, वह मोनैस्ट्री की दीवारों के बाहर चक्कर काटता रहा। चट्टानें, सोते, फूल—सब के सब वसन्तकालीन धूप से नहाये थे। ज्वार्त को प्रतीत होता था जैसे वे सब वहाँ रहनेवाले विवेकपूर्ण, सजीव प्राणी थे। उसे लगा, वह एक गुप्त भाषा में उनके साथ वार्तालाप कर सकता था। सब कहीं वे उसे दिखाई दे रहे थे: बादलों में, मोनैस्ट्री की दीवारों पर, अन्धेरे में। वे उसे गतिशील, मानवीय रूपाकारवाले प्रतीत हुए, वे उससे बातें करते, हँसते थे और उसे अपने पीछे बुलाते थे।

उन्हें स्मृति में सँजो लेने के लिए ज्वार्त शून्य में उनकी आकृतियाँ बनाया करता लेकिन वे लुप्त हो जाते थे, बचे रहते थे उनके शब्द मात्र,

उसके कानों में गूँजते आग्नेय शब्द। पल भर को वे उसके कानों में गुंजरित हो ग़ायब हो जाते। फिर यही सब दुबारा-दुबारा होता...

किसी चीज़ की तलाश में, किसी अनजान तृष्णा में ज़्वार्त बेचैन रहता।

...निस्तब्धता का पान करते हुए वह ऊँचे मेहराबदार भवन के नीचे अकेला खड़ा था। नयनाभिराम निशा सँकरी खिड़कियों से झाँक रही थी। अन्दर अन्धेरा था, उदासी थी। गर्त के तले से निद्राहीन निर्झर की मर्मर ध्वनि आ रही थी, तराई में कोई निशाचर मर्मस्पर्शी चीत्कार कर उठा।

अचानक ऊँची दीवारें फट गयीं और कोई अन्दर आ पहुँचा। यह और कोई नहीं ख़ुद ज़्वार्त था... लेकिन ज़्वार्त को भी कोई आश्चर्य नहीं हुआ था। प्रायः उसे अपना प्रतिबिम्ब निर्झरों व ओसकणों में दिखाई देता रहता था। उसके प्रतिरूप की प्रकाशमान आँखें हीरों की तरह दमक रही थीं। ज़्वार्त इस तीव्र प्रभा से भयभीत हो उठा।

उसकी आँखों में झाँकने का साहस वह जुटा नहीं पा रहा था लेकिन कोई अदृश्य शक्ति उसे ललकार रही थी। आख़िर उसने आँखें ऊपर उठायीं और पूर्ण आतंक से वह फ़र्श पर गिर पड़ा।

काफ़ी देर तक वह वहाँ निस्पन्द पड़ा रहा। आगे की घटना की उसे कोई याद न थी। उसे लगा, उसका प्रतिरूप उसके पास आया और उसने झुककर उसे देखा। ज़्वार्त को उसकी आवाज़ सुनाई दी। फुसफुसाहट की भाँति वह धीमी थी और किसी गीत की भाँति लयबद्ध। इस आवाज़ के असर से वह सो गया और शब्द संगीतानुरूप उसकी आत्मा में एक के बाद एक आते रहे।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में आख़िर उसकी आँखें खुलीं। कक्ष के अधखुले दरवाज़े से उसे आकाश दिखाई दे रहा था। पिघले सोने की बून्द की तरह कोई एकाकी तारा उसकी गहराइयों में टिमटिमा रहा था। अद्‌भुत संगीत ज़्वार्त को अभी भी सुनाई दे रहा था। वह एक बार फिर अपने मीठे सपने में खो गया।

जब दुबारा उसकी आँखें खुलीं, बाहर मुँडेर पर अबाबील चहचहाकर अपना प्रातःगीत गा रही थी। इससे उसे रात की मीठी-मीठी फुसफुसाहट याद हो आयी।

प्रवेश-द्वार से बाहर निकल कर ज़्वार्त मोनैस्ट्री के आस-पास घूमने लगा।

प्रात:कालीन रवि-रश्मियाँ चट्टानों की धुँधली स्तम्भश्रेणियों को कोमलता प्रदान कर रही थीं। अज्ञात की ओर प्रवहमान् नदी गर्त के तल में बह रही थी। इसकी कलकल ध्वनि रात की उसी मधुर संगीत तरंग जैसी ही थी।

ज़्वार्त तत्क्षण रुक गया। वह आगन्तुक था कौन?.. वह स्वयं तो हो नहीं सकता। कौन था वह? उसे महसूस हुआ, वह रात में सुनी संगीत तरंग को गुनगुना रहा था और अब उसे मालूम हुआ कि रात में यह गीत उसी ने गाया था और वह दूसरा कोई, ख़ुद वही था (एक आदमी दो रूप कैसे धारण कर ले सकता है)।

फिर उसने शब्दों को मुँह में ढलते महसूस किया। वह उन शब्दों को जोरों से कह उठने, सबको सुना देने के लिए व्याकुल हो उठा।

उसने कोमल स्वर में शब्दों को उच्चरित करना शुरू कर दिया।

प्रात:कालीन धूप की गरमाहट लेते बहुत से साधु मोनैस्ट्री की दीवारों के पास खड़े थे। अचानक अधरशिला के एकदम किनारे अपनी बाँहें हिलाते ज़्वार्त उन्हें दिखाई दिया।

"दिमाग़ चल गया है! गिर पड़ेगा!" उनमें से एक चीख़ पड़ा। लड़के के पास दौड़ते हुए पहुँचकर उसने उसकी बाँह थाम ली। ज़्वार्त ने बेचैन आँखों से उसकी ओर देखा। उसके होंठ काँप रहे थे।

साधु लड़के को ऐबट के पास ले आये। ऐबट बाहर प्रांगण में निकल आया।

"क्या बात है, बेटे? क्या बीमार हो?"

उसने ज़्वार्त का ललाट छूकर देखा। ललाट जल रहा था।

धुँधली आँखों से ऐबट की ओर देखते हुए ज़्वार्त हाँफ़ रहा था। उसका सिर सहलाकर बूढ़ा स्नेह भरे स्वर में बोला।

"मुझे बताओ तो क्या बात है? कौन-सी चीज़ परेशान कर रही है, बेटे?"

"बताओ, बता दो!" साधु चिल्लाये।

ज़्वार्त ने उनकी ओर देखा, फिर ऐबट की ओर और अचानक वह चौंक पड़ा। उसे महसूस हुआ, जिस बात ने उसे आत्मा से आप्लावित कर रखा था, बता देनी चाहिए। जब वह अपने सपने और विशेष शक्ति प्राप्त करने की

बात बताने लगा, उसका चेहरा खिल उठा। उसके होंठों से शब्द प्रवह-मान् हो रहे थे, उसे अपने आस-पास की कोई ख़बर नहीं रही थी।

...धरा को सुषुप्ति से जगाता, हरे अँखुवों को सिंचित करता वसन्त आता है। वसन्त के पहले फूल अपनी पँखुड़ियाँ खोल कर अन्य समस्त फूलों का आह्वान करते हैं: जागो, जागो! काफ़ी सो चुके, अब दुनिया में ख़ुशियाँ लाओ।

घाटियों-तराइयों में छा गयी हरीतिमा पुनः,
क्रीड़ामग्न बालक-सा लगता विश्व यह,
एक अलौकिक आभा का वरदान मिला है इसको,
शफ़तालू धारण करता है एक गुलाबी बाना को,
नीली आँखें प्यारी, वसन्ती गुलाब की छटा निराली,
प्रेम-पगा है जगत चराचर, प्रेम बिना सब ख़ाली,
सुर्ख़ गुलाब के ओसकणों को प्रेम ही जानो,
रवि-रश्मियों को भी प्रेम-रूप ही मानो,
खग-कलरव में, जीव-जीव में प्रेम ही पूरित,
सुन्दर-सदय, यह जग जब प्रेम से हो विहसित।

पत्थर से चेहरे बनाये साधु ज़्वार्त के शब्दों को सुन रहे थे। उसके शब्द उनके दिलों में कोई भाव नहीं पैदा कर पा रहे थे।

उनमें से सर्वाधिक द्वेषपूर्ण साधु अज़र क्रोध से उबाल खाते हुए बोला, "ज़रा इस कामचोर की निरर्थक बातें तो सुनो! तुम्हें लगेगा, यह ऐबट जितनी बुद्धिमानी की बातें कर रहा है।"

ऐबट ने उसकी बात बीच में ही काट दी।

"उसे तुम फटकार क्यों सुना रहे हो? ज़्वार्त के विचार स्पष्ट एवं गहरे हैं। यह नौजवान किसी ऐबट से अधिक प्रज्ञावान है।"

साधु कुपित हो उठे थे। उन्होंने ज़्वार्त की ओर घृणा भरी दृष्टि डाली। ज़्वार्त ने ईर्ष्या से दग्ध अज़र के चेहरे को घृणा से कुरूप होते देखा।

ऐबट ने ज़्वार्त को आशीर्वाद देकर साधुओं को उनके कक्षों में भेज दिया। वे क्रोध से जलते चले गये। उस दिन से उन्होंने अपना क्रोध छुपाने की कभी कोई कोशिश नहीं की। वे कभी भी ज़्वार्त की मलामतें करने,

उसे कोसने का कोई भी मौक़ा हाथ से नहीं जाने देते। लेकिन ज्वार्त उनके वैर-भाव की ओर ध्यान देता नहीं प्रतीत होता। उसके चेहरे पर हमेशा मुस्कान छायी रहती।

"हमारी हँसी उड़ाता है," साधु ताव खाते हुए कहते। वे इस बात से कुपित थे कि ऐबट ने एक सिर फिरे लड़के को अपने संरक्षण में ले लिया था।

उन्होंने ऐबट के विरुद्ध कुत्सा का सहारा लेते हुए यह बात फैलानी शुरू कर दी कि वह नास्तिक व ऐन्द्रजालिक करतबवाला आदमी था। वह एक शैतानी किताब लिख रहा था जिसे आग के हवाले कर देना चाहिए।

जब यह अफ़वाहें ऐबट के पास पहुँचीं, वह अत्यन्त दुखी हो उठा। अपना अन्त क़रीब जानकर उसे अपने जीवन भर के कार्य के बारे में, अपनी आत्मा की रचना के बारे में चिन्ता सताने लगी। गुनकियानोस सीधा-सादा था तो ज्वार्त बहुत छोटा। वह अपनी पुस्तक सौंपे तो किसे? हर तरफ़ उसे अन्धेरा ही दिखाई दे रहा था।

एक दिन अज़र के नेतृत्व में साधु ऐबट के पास जा पहुँचे। उन्होंने ऐबट से ज्वार्त को मोनैस्ट्री से निकाल बाहर करने की माँग की क्योंकि ज्वार्त उनकी दृष्टि में सिर फिरा था और ज्वार्त पर सवार प्रेतात्मा पवित्र गिरजाघर को कलुषित बना रहा था।

उनसे बातें करने के लिए ऐबट बाहर निकलकर प्रांगण में आ गया। तर्क द्वारा उन्हें समझाने की कोशिश करते हुए उसने कहा,

"आप लोगों की दयालुता कहाँ चली गयी है?" उसके स्वर में दुःखपूर्ण मलामत थी। "आप लोग उसकी प्रतिभा का मूल्यांकन नहीं करते हैं, आप उसके विचारों के सम्बन्ध में ग़लत धारणाएँ बना रहे हैं।"

"उसको यहाँ बुलाइये। हम उसकी बातें सुनेंगे और सिद्ध कर देंगे कि वह विधर्मी है।"

ऐबट ने ज्वार्त को उसके कक्ष से बुला लिया। "आओ, बेटे, अपनी पावनता सिद्ध करो।"

ज्वार्त बाहर आया और मुस्कराते हुए साधुओं पर नज़र डाली। "अपने विचार इन्हें बताओ और इन्हें अपना मूल्यांकन का अवसर दो।"

ज्वार्त पल भर को ख़ामोश रहा। फिर उसने बोलना शुरू किया। उसका चेहरा खिल उठा, वह भावाभिभूत स्थिति में था। उसने कहा:

आया वसन्त। आया जग में निखार।
पाटल कलिका गुलाब से हो समत्सर,
प्रेरित करती है सखी-सुमनों को,
मार डालो मेरी सौत गुलाब को।
बिन मारे सब करती हैं मिलकर अवमानना उसकी,
जन-जन की दुलारी, सौन्दर्य की रानी गुलाब की।
गद्य व पद्य भरे हैं उसकी प्रशंसा से,
और वे सब वंचित हैं एक भी दृष्टि से।
मन्त्रणा हुई, सब एक हो, मोर्चा सम्भालें,
गोहार मची, गुलाब से सब मिल बदला लें,
चाहे कोई है, सब के साथ पूरा न्याय हो,
चाहे सुमनों में हाइसिंथ हो या प्रातश्ती हो,
चाहे ट्यूलिप हो चाहे नरगिस हो,
मार डालो सब का एक ही नारा हो।
सुमन-सखियाँ सहम कर पीछे हट जाती हैं,
जब अचानक कोई बुलबुल गा उठती है,
तन्द्रा से जागती गुलाब की कली को देख के,
टिक नहीं पाती हैं सामने उसके सौन्दर्य के।
सकुचाते, असीम लावण्य के साथ,
मृदुता से उठाया अपना मुखड़ा अरुणाभ,
कुछ फीकी पड़ीं, दूसरी हुईं शर्म से लाल,
भाग चलीं कलियाँ, छोड़कर अपनी डाल।
हुईं आतंकित, अरे हाँ, आ ही गयी मौत,
क्या रूप है, स्वच्छ, अकलुष, अद्भुत!

गुलाब ने अपने नयनाभिराम वसन धारण कर लिये और पास ही एक डाल पर बैठी बुलबुल, उसकी सुरभि से मुग्ध गाना शुरू कर देती है:

दिन का उजाला प्रेम है, रात अन्धेरी प्रेम से,
प्रेम है कोमल दूर्वादल किन्तु सबल सबसे।
होती है काँटों से भरी गुलाब की डाल,

तिस पर आ बैठी बुलबुल हो प्रेम-निहाल।
अगर प्रेम न करता उसमें साहस का संचार,
भय तज कर गाती कैसे प्रेम के गीत अपार?
न त्यागो, न छोड़ो अपनी वफ़ादार बुलबुल को
मत करो हवाले इसे हिम और प्रभंजन को...

गुलाब बुलबुल की ओर हाथ बढ़ाकर चूमने की प्रार्थना करता है।

आओ, चूमो मुझको, बुलबुल मेरी, प्यार करो मुझसे!
गर्दन उड़ जायेगी मेरी, खून निकालेंगे वे मुझसे,
उससे तैयार करेंगे रोगी की पीड़ा-मुक्ति को मलहम,
दिल मेरा डूबा जाता है, कैसी वेदना यह विषम...

ईर्ष्या से पीड़ित अज़र आगे बढ़ आया। उसके होंठ जहर उड़ेल रहे थे।

"गुलाब की बातें और इसका प्यार शैतान के शब्द हैं।"

"नास्तिकतापूर्ण शब्द," साधु एकसाथ बड़बड़ा उठे।

"उसकी निन्दा न करो! उसके विचार पवित्र हैं।"

लेकिन अज़र हार मानने को तैयार न था। वह फिर आगे बढ़ कर बोला,

"उस पर भूत सवार है, हमें भूत उतार देना चाहिए।" और यह कहकर वह ज्वार्त की ओर दौड़ पड़ा।

"दूर रहो!" ऐबट गुस्से से गरज पड़ा। "किसी निर्दोष पर हाथ उठाने का क्या हक़ है तुम्हें?"

ऐबट को वास्तविक चिन्ता सताने लगी। द्रोह के बीज पनप रहे थे। क्रुद्ध धर्मोन्मादियों से लड़के की रक्षा कैसे की जाये? वह क्या उपाय करे? उसने ज्वार्त की ओर आशा भरी दृष्टि डाली।

"क्या तुम अपने विचारों को स्पष्ट कर सकते हो?" वह कठोर स्वर में बोला।

ज्वार्त बूढ़े की परेशानी भाँप गया। उसमें तत्क्षण अन्तःस्फुरण हुआ। साधुओं की ओर मुड़कर वह आत्मविश्वासपूर्वक बोला:

सुनाऊँ राज़ इस शोक का?
कौन हो पाटल, कौन हो गुलाब?
और कौन हो साहसरूपी बुलबुल?
कौन किसके लिए गाये प्रेम का गीत?

"फूल राजपादरी हैं, गुलाब जीसस है, पाटल जुडास है जिसने उन्हें धोखा दिया था और बुलबुल है गैब्रिल—दैवी सन्देशवाहक। नील लोहित पोशाक पहने गुलाब ही ईसा मसीह है; पीले, मुरझाये फूल उसकी क़ब्र का त्याग करनेवाले योद्धा हैं।"

उसके जवाब से ऐबट ख़ुश हो उठा। साधुओं के मुँह से बोली नहीं निकल रही थी।

ज्वार्त विजयी रहा था।

सिर्फ़ अज़र को ज्वार्त की आँखों की शरारत भरी मुस्कान दिखाई दे गयी और वह उसकी चतुराई समझ गया। उसे महसूस तो हुआ कि ज्वार्त के विचार नास्तिकों के थे लेकिन अपने मन्द मस्तिष्क में वह कोई उपयुक्त उत्तर नहीं सोच पाया। उसके पास वापस लौट जाने के अलावा कोई रास्ता न था। दूसरे साधु भी उसके पीछे-पीछे लौट गये।

उसके बादवाले दिनों में साधुओं के कक्षों से बस ऐबट को कोसने की आवाज़ें सुनाई देती रहीं। वृद्ध ऐबट अवसादग्रस्त था, उसने महसूस किया कि साधुओं का वैरभाव उसकी मौत निकट ले आयेगा।

एक रात वह लगभग तीसरे पहर तक अपना आख़िरी अहदनामा लिखता रहा। साधुओं की कुत्सा व ईर्ष्या ने उसके मन की शान्ति हर ली थी और अपने अहदनामे में ऐबट ने ज्ञानोन्नतिविरोध को फटकार बताते हुए मीमांसा के प्रकाश की इस प्रकार प्रशंसा की:

"मेरा पार्थिव शरीर मिट्टी में बदल जायेगा और धुएँ की तरह बिखर जायेगा लेकिन मेरे सत्यनिष्ठ विचार मेरे बाद भी जीवित रहेंगे। आप मेरी जान ले सकते हैं, मेरे रजकणों को बिखेर सकते हैं लेकिन मेरे विचार किसी रविरश्मि की तरह चमकते रहेंगे। अन्धेरे की संततियो, मेरा स्पर्श न करो क्योंकि मैं सत्यरूप हूँ और मेरा प्रतिशोध तुम्हें प्रतिहत कर देगा।"

पौ फटने को था जब उसने ज्वार्त और गुनकियानोस को जगाया, उन-

का चुम्बन लिया और कहा कि विदाई का अन्तिम समय आ पहुँचा है।

"कहाँ?" गुनकियानोस ने पूछा हालाँकि ऐबट के शब्दों का अर्थ वह फ़ौरन जान गया था और रोने लगा था।

बूढ़े ने नौजवानों को अपनी जीवन से प्रिय पुस्तक सौंपते हुए उन्हें इसे सम्भालकर रखने के लिए कहा।

उसी दिन ऐबट ने आख़िरी साँसें ले लीं।

ऐबट के प्रति वास्तविक घृणा को छुपाते हुए साधुओं ने बड़ी धूमधाम से उसे दफ़न कर दिया।

गुनकियानोस पुस्तक को छुपाकर तादे को दे आया। तादे ने उसे सुरक्षित स्थान में छुपा दिया।

दूसरे दिन साधुओं ने ज्वार्त को एक अन्धेरे कक्ष में बन्द कर फूलों के बारे में गीत गाने से मना कर दिया। सिर्फ़ गुनकियानोस उससे मिलने आता था। ज्वार्त दुखपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखता और फिर अपनी कल्पना की उड़ानें भरता बातचीत शुरू कर देता। कविता की शक्ति में खो जाने से वे यह भी भूल जाते कि उन्हें तहख़ाने में बन्द रखा गया है। गुनकियामोस फूलों के बारे में ज्वार्त की कविताएँ सुनते कभी नहीं थकता था।

लेकिन एक सुबह ऐसी भी आयी जब साधुओं ने उनकी मुलाक़ातें भी ख़त्म कर दीं। अब गुनकियानोस ज्वार्त को सलाखों के पीछे से ही सिर्फ़ देख सकता था। हमेशा की तरह ज्वार्त स्वप्निल मुस्कान बिखेरता रहता और दुश्चिन्ताहीन प्रतीत होता।

इस प्रकार ज्वार्त होंठों पर मुस्कान लिये मृत्यु की गोद में सो गया।

अन्धेरी छत के तले जीर्ण-शीर्ण कमरे में जीवन अपनी पूर्ण भव्यता के साथ जगमगा रहा था क्योंकि चित्रकार तादे ने अपने रंग फ़र्श पर इधर उधर रख छोड़े थे। लकड़ी के फ़्रेम में जड़े चर्मपत्र चमड़े की पतली पट्टियों के सहारे छत से लटक रहे थे। तादे ने तूलिका एक रंग भरे प्याले में डाली। फिर उसकी तीक्ष्ण दृष्टि एक चर्मपत्र पर टिक गयी, वह कुछ पलों तक निस्पन्द खड़ा रहा, फिर उसने रेखांकन शुरू कर दिया। चर्मपत्र पर रंग दहक उठे।

उसके छात्र अध्यापक की ओर साँस रोके देख रहे थे। वे उससे डरते भी थे और स्नेह भी करते थे। अपनी तूलिका से तादे चमत्कार कर सकता था। उसकी भृकुटि पर जितने अधिक बल पड़ते, चर्मपत्र के रंग उतने ही रमणीय होते जाते—सुनहले, फ़ीरोज़ी, नारंगी व क़हरुबा।

जिस पुस्तक के लिए तादे रेखांकन कर रहा था, उसके छात्रों ने उसका नाम पूछा।

तादे ने सिर ऊपर उठाया लेकिन उसकी दृष्टि सूनी-सूनी सी थी। चौंक कर उसने गुनकियानोस को आते देखा।

तादे फिर अपने काम में लग गया। उसकी दृष्टि मयूर पर टिकी थी जिसकी कोरे रंगवाली गर्दन गर्वीली व चापवत थी। उसकी पूँछ के पंख किसी प्राच्य क़ालीन की तरह सुन्दर थे। हाशियों पर अंकित विचित्र फूल बहुमूल्य पत्थरों की तरह यत्र-तत्र दमक रहे थे। ऊपर में ऐसे ख़ालिस नीले रंग में आसमान अंकित किया गया था मानो चर्मपत्र के फट जाने से आसमान दिखाई देने लगा हो।

छात्र बिना कुछ बोले तत्परतापूर्वक महान कलाकार के रेखांकनों को बेलबूटों से सजा रहे थे।

समय-समय पर तादे कह उठता,

"नारंगी रंग पिघलते सोने का रंग है... इसके चारों ओर एक स्वर्णिम विकीर्णता होती है... स्वर्ग का रंग आसमानी है... चमकीला नीला... सुरद्रुम का रंग आर्द्र हरित है... और यहाँ ऊपर में गुलाब होना चाहिए।"

रात में तादे के कक्ष में आकर गुनकियानोस ने ज़्वार्त के बारे में बताया। अपने ही सपनों में खोया तादे उसकी बातें अन्यमनस्क भाव से सुनता रहा। अन्धेरा उसके काम में बाधा डाल रहा था। अनिद्रारोग से वह पीड़ित था। काले चर्मपत्र पर दहकते चमकीले रंगों ने उसकी आँखों की नीन्द उड़ा ली थी। उसके हाथों से तूलिका लेकर प्रकृति ने नभ के काले पन्ने पर तारों की पँखुड़ियाँ अंकित करना शुरू कर दिया था। तादे सुनता रहा।

गुनकियानोस में साहस का नवसंचार हुआ और उसने फूलों के बारे में ज़्वार्त की एक कविता सुना दी। (बेचारा गुनकियानोस, उसकी यही तो एक उज्ज्वल स्मृति थी!)

ज्वार्त के कोमल गीत ने तादे का मर्मस्पर्श कर लिया। आदि से अन्त तक गीत सुनने के बाद वह धीमे स्वर में बोला,

"धन्य है, हृदय के लिए मधुर!"

"क्या ज्वार्त के गीत के लिए तुम रेखांकन तैयार कर दोगे, तादे?" अश्रुसिक्त स्वर में गुर्नकियानोस ने याचना की।

कलाकार ने हामी भर दी।

"निस्सन्देह। मैं कल ही शुरू कर दूँगा।"

ऐबट की पुस्तक में ज्वार्त के गीत को सप्राण करते हुए तादे ने निस्स्वार्थ भाव से काम किया। गुनकियानोस तादे की हरेक चेष्टा ध्यान से देखता। अधिकाधिक नये-नये वर्णों की तलाश में कलाकार रंगों को मिलाता रहता। हाशियों में चमकीले अलंकरण प्रकट होने लगे। नारंगी हिरणों का पीछा करते रक्त-लोहित बाघ थे। तादे बड़ी बेकली से काम में लगा था। जलती मोमबत्ती की तरह उसका शरीर कृश होता जा रहा था। उसे किसी रंग की तलाश थी लेकिन वह ढूँढ़ नहीं पा रहा था। उसकी थकी आँखें अधमुँदी रहतीं मानो वह किसी गर्त में अभूतपूर्व रंगोंवाले खिलते किसी फूल को देख रहा हो। लेकिन जैसे ही तूलिका को रंगवाले प्याले में डुबोकर वह चर्मपत्र का उससे स्पर्श करता, किसी जादुई चिड़िया की तरह उसका तलाशा रंग उसे गच्चा दे जाता। ठण्डी आह भरकर तादे निराशापूर्वक चर्मपत्र को निहारने लगता।

उसके छात्रों को साँस लेने की भी हिम्मत नहीं होती। वे अपने अध्यापक की रचना-पीड़ा को समझते थे।

अचानक झल्लाहट भरी दीर्घ निःश्वास के साथ तादे लम्बे डग भरता कक्ष से बाहर चला गया।

"सही रंग की तलाश में गये हैं। आओ, हम भी चलें।"

वे तादे के पीछे-पीछे मोनैस्ट्री के फ़ाटक से निकलकर पहाड़ों में जा पहुँचे। छात्रों के संग-संग वह दिन भर ढलानों में भटकता रहा। फिर कक्ष में लौटकर उसने पुनः तूलिका उठा ली। श्रद्धासूचक निस्तब्धता में नये नये रंग प्रकट होने लगे।

प्रकाश एवं प्रज्ञा से परिपूर्ण यह एक प्रदीप्त पुस्तक थी। दो पाण्डुलिपियों पर अग्निवत अर्द्ध-पशु अर्द्ध-पक्षी, मछलियाँ व फूल सुसज्जित थे;

एक का विषय था ब्रह्माण्ड एवं रचनात्मक श्रम की पावनता, दूसरी पर दो पृष्ठों में फैला एक आग्नेय सोता प्रवहमान् था। यह ज्वार्त का फूलों का गीत था।

बर्फ़ से पहाड़ रोशन हो उठे थे लेकिन मोनैस्ट्री उदास थी और जिस तहख़ाने में ऐबट की पुस्तक तथा अन्य पाण्डुलिपियाँ गड़ी थीं, वह अन्धेरा व सीला था। सीलन पुस्तक को खाये डाल रही थी। कहते हैं चर्मपत्र सीलन को बर्दाश्त नहीं करता। इस पुस्तक में फूल थे। वे मर गये या नमी उन्हें ले डूबी और पुस्तक भी नष्ट हो गयी?

साधु पेट-पूजा में लगे रहते। वे मेंढक की तरह मोटे हो गये थे और एबट, ज्वार्त, तादे व उसके छात्रों को भूल चुके थे। एक दिन तादे व उसके छात्रों को मोनैस्ट्री से निकाल बाहर कर दिया गया और वे इधर उधर अपनी राह चलते बने।

रात घिर आयी थी। आर्मीनिया के पहाड़ों पर शरदागमन हो चुका था। बड़ी चिलकती ठण्ड थी। आकाश शीशे का जमा टुकड़ा-सा था। गुनकियानोस ढलान से नीचे की ओर रास्ता तय कर रहा था। उसके कन्धे पर एक बण्डल था, हाथ में रेशमी रूमाल में लिपटी एक पुस्तक थी। ठण्ड से उसकी अंगुलियाँ बेजान हुई जा रही थीं लेकिन हाथ चाहे सूख ही क्यों न जाये, वह पुस्तक को गिरने नहीं देगा।

गुनकियानोस मोनैस्ट्री से निकल भागा था। उसका एक मात्र लक्ष्य था किसी भी क़ीमत पर पुस्तक की सुरक्षा। लेकिन हाँ, सफल हो तब न... उसे मंज़िल का कोई ज्ञान न था। पहाड़ों पर भयानक तूफ़ान आ-या था। घाटियाँ सैनिकों से पटी थीं। नगरों, गाँवों, मोनैस्ट्रियों व पुस्तकालयों—सब को लपटों के हवाले किया जा रहा था...

सुबह होते-होते तूफ़ान ने पहाड़ों व खड्डों को सफ़ेद चादर से ढक दिया। एक प्राचीन मोनैस्ट्री से बाहर निकलते किसी बूढ़े साधु को फाटक के पास कन्धों पर बोरी लिये बर्फ़ से आधा जमा एक आदमी दिखाई दिया। उस आदमी की बग़ल में एक खुली पुस्तक पड़ी थी—इसके पृष्ठों से नीला नभ विहसता दिखाई दे रहा था।

बूढ़े साधु ने पुस्तक पवित्र भाव से भरकर उठा ली।

पुस्तक की बाद की कहानी अन्धेरे में है क्योंकि उस सदी के इतिहास में इसकी बड़ी मामूली-सी चर्चा है।

सुल्तान एल्तेरीम के रिसाले की टापों से आर्मीनिया की सड़कें गूंज रही थीं। तूफ़ान के बादलों की तरह उसकी सेनाएँ आगे बढ़ रही थीं। टापों की गूँज धरती की ख़ामोशी भंग कर रही थी।

एक बढ़ा अपने कक्ष में प्राचीन मोनैस्ट्री की पाण्डुलिपियों के अध्ययन में रत था। वह अपने देश पर टूटी विपत्ति से ग़ाफ़िल था। दो युद्धोन्मत्त भट उसके कक्ष में घुस आये। उसे उनके अन्दर आने का भी पता नहीं चला। दोनों उससे कुछ बोले। उसे उनकी आवाज़ें सुनाई ही नहीं दीं। कुपित हो दोनों ने बूढ़े साधु को तीरों से वेध दिया।

शीघ्र ही कक्ष जलती पुस्तकों के तीव्र धुएँ से भर उठा। हो-हो कर जलते चर्मपत्रों को देखकर सैनिक प्रसन्न हो उठे। लेकिन इस खेल से ऊब-कर उन्हें बूढ़े साधु की याद हो आयी। उनके दिलों में भय की एक अनु-भूति रेंग गयी। शायद बूढ़े की हत्या अकारण ही हो गयी थी।

"यह किस तरह की पुस्तकें हैं?"

"कौन जाने?"

"सुनते हैं, पुस्तक क्रुद्ध होकर बदला ले सकती है... लोग बताते हैं, पुस्तक में सत्य का वास होता है..."

सहसा एक मोटी-सी पुस्तक आग की लपटों से उछलकर दूर जा गि-री। दोनों डरकर लपटों को बुझाने के लिए दौड़ पड़े। आग बुझने के बाद भट कक्ष से बाहर निकल गये।

पुस्तक क्रुद्ध हो गयी थी।

"नहीं, पुस्तकें नहीं जलानी चाहिएं।"

खड्ड में बेंतों ने मन्द-मन्द संगीत छेड़ रखा था। पतझड़ खड्ड में प्रवह-मान् शीतल सोते की भाँति ढलानों से नीचे उतर आयी थी। बेंतों की सरसराहट में शैवालयुक्त सोते की कलकल ध्वनि मिल गयी थी। पनचक्की-वाले अकोप ने पनचक्की के तालाब का पुश्ता खोल दिया और चक्की ने घूमना बन्द कर दिया।

देश में भुखमरी थी...

बेंतों के पास खड़ा अकोप अपने नौजवान बेटे उसिक से कह रहा था।

"दमिश्क चले जाग्रो। पनचक्कियाँ बन्द हो गयी हैं। वहाँ से गेहूँ लाकर बोग्राई करो ग्रौर प्राण-रक्षा करो।"

उसिक की नीली ग्राँखों में उदास मुस्कान थी।

"हमारी प्राण-रक्षा कैसे हो सकती है?" हैरानी से पिता की ग्रोर देखते हुए उसने पूछा।

"मूर्ख न बनो। ग्राँखें खोलो। तुम्हें काल-कवलित होता देश दिखाई नहीं देता?"

घर के ग्रन्दर जाकर सन्दूक से ग्रकोप ने एक रंग-बिरंगा चोग़ा व पाँच रेशमी रूमाल बाहर निकाला। ग्रपने बटुग्रा से उसने तीस सिक्के गिन दिये।

"दस फावड़ों की बिक्री से मिले पैसे हैं। चोग़ा ग्रौर रूमाल बेच दो। वहाँ पहुँचने के लिए पर्याप्त पैसे मिल जायेंगे। रास्ते में तुम्हें काम भी मिल जा सकता है। ग्रगले वसन्त में तुम ग्रनाज लेकर लौट ग्राग्रोगे। हम फिर बोग्राई कर सकेंगे।"

उसिक ने विचारपूर्ण मुद्रा में पिता की ग्रोर देखा। उसे ग्रपने पिता स्वयं प्रकृति की तरह प्रज्ञावान लग रहे थे। उनके शब्द उसिक के हृदय में भय पैदा कर रहे थे।

ग्रौर इस प्रकार उसिक नीली ग्राँखों में उदासीन मुस्कान लिये दमिश्क की ग्रोर रवाना हो गया। पीछे कुहरों में छुपी उसकी मातृभूमि थी।

धूप से चिलचिलाती सड़कें गुज़रती थीं। ऊँटों के कारवाँ खजूर, पिस्ता, कॉफ़ी ग्रौर गेहूँ के गट्ठर लादे सड़कों पर चले जा रहे थे।

उसिक के विचार सुखद न थे।

"पिता जी ने क्या कहा था? हमें ग्रपनी प्राण-रक्षा करनी चाहिए? लेकिन कैसे? कौन-सी चीज़ ग्रादमी की प्राण-रक्षा कर सकती है? धरती? लेकिन वे लोग हमसे हमारी धरती छीन लेंगे? सेल्जुक ग्रौर तातार सेनाएँ ग्रार्मीनिया के ख़िलाफ़ हमला बोल रही हैं। ख़ून की नदियाँ बहाती वे हिमानी ग्रवधाव की तरह ग्रागे बढ़ रही हैं। तो शायद धन-दौलत? लेकिन मुझे ग्रमीर भी भिखमंगे बनते दिखाई दिये हैं। हमारे जीवन की रक्षा कैसे हो सकती है? ग्रौर जीवन का वास्तविक ग्रर्थ है क्या?"

उसिक के समस्त विचार जीवन के ग्रर्थ से सम्बन्धित थे।

पसीने से तरबतर, सूर्य की चिलचिलाती किरणों से पीड़ित उसिक रास्ता तय कर रहा था।

काश, आदमी के पंख लग जाते और वह आसमान में अपनी सम्पदा समेत उड़ पाता! लेकिन इससे लाभ क्या? चील, गीध व उक़ाब उसे नोच डालेंगे।

सुनहली धूल के लबादे में लिपटा नगर धूप में झिलमिला रहा था। मार्ग जनसंकुल थे। उसिक की आँखें आश्चर्य से विस्फारित हो गयीं। एक साँवला-सा नौजवान अपने मज़बूत हाथों से तेज़ धारवाली फ़ौलादी तलवार को मोड़ रहा था। हल्के कम्पन के साथ फ़ौलाद मुड़कर सीधा हो जाता। नौजवानों की भीड़ उसे चारों ओर से घेरे थी। वे हँस रहे थे, उनके सफ़ेद दाँत चमक उठते थे। ऊँट चनार के पेड़ों तले आराम कर रहे थे। उनके चारों ओर गेहूँ व अन्य चीज़ों के गट्ठरों के ढेर लगे थे।

एक पेड़ के सहारे उसिक गट्ठरों के पास ही बैठ गया। सूर्य आग उगल रहा था, हवा दमघोंट थी। उसने बाज़ार को घेरे में लिये इमारतों की ओर, धूप से सँवलाये चेहरोंवाले भागते लोगों की ओर देखा। शीतल नीलाभ जल के सपने देखता वह प्यास से मरा जा रहा था। सूखे होंठों पर उसे उसका अहसास हो रहा था। उसे गहरी नीन्द आ रही थी। उसके विचार गड्डमड्ड हो रहे थे। उसिक को पता ही नहीं चला कि वह कितनी देर तक वहाँ बैठा रहा, सोया था या नहीं। अचानक उसकी दृष्टि कुछ लोगों के झुण्ड पर टिक गयी। वे लोग हँसते हुए किसी पुस्तक को एक-दूसरे के हाथों से झपट रहे थे।

उछलकर उसिक पैरों पर उठ खड़ा हुआ। उसे लगा जैसे कोई परिचित चीज़ दिखाई दी हो। क्या थी वह चीज़? अरे, हाँ, यह तो वही पुस्तक थी। वह पहले भी इस तरह की पुस्तकें देख चुका था। वह उन लोगों के क़रीब जा पहुँचा। इस समय जिस आदमी के हाथ में पुस्तक थी, वह उसकी अन्तिम जिल्द से रजत खुरचने की कोशिश कर रहा था। किसी दूसरे आदमी ने उसके हाथ से पुस्तक छीन ली। वह चाँदी से कढ़े बेलबूटोंवाली चमड़े की जिल्द को देखने के बाद पन्ने उलटने लगा। पुस्तक का एक-एक पन्ना वसन्त तथा उदार पतझड़ के रंगों से उद्दीप्त था। लाल आसमान थे, लपटें छोड़ते गुलाब के फूल थे, दूसरे तरह-तरह के फूल थे—सब के सब चमकीले, नयनाभिराम तथा मनमोहक। उसिक की आँखों के सामने उसकी अपनी घाटियों, अपने पहाड़ों के रंग साकार हो उठे।

इस पुस्तक में क्या कुछ लिखा था जो आदमी को अपने रंगों से चकाचौंध कर रही थी?

पुस्तक बिकाऊ थी। इसका स्वामी एक भलामानस अरब सैनिक था। वह बता रहा था कि पिछले हमले के दौरान उसे यह पुस्तक मिली थी और मूर्खों की तरह वह इसे इतनी दूर, दमिश्क तक ढोता चला आया था...

"कितने में बेचोगे यह पुस्तक?" किसी ने मज़ाकिये स्वर में पूछा।

"तीस सिक्के!"

भावी क्रेता ठहाका लगाकर हँस पड़ा। पुस्तक उसने ज़मीन पर फेंक दी। दूसरे उसे ठोकर मारने लगे। सैनिक ने अलस भाव से नीचे झुककर पुस्तक उठा ली। चूँकि पुस्तक ख़रीदनेवाला कोई न था, इसलिए वह मनोरंजन कर रहा था।

उसिक उसके पास जाकर उससे पुस्तक ले पन्ने उलट-उलटकर देखने लगा। फूलों से वह अभिभूत हो उठा था। वह शाश्वत जीवन की, वसन्त की समस्त सुरभि लिये खिल रहे थे। पुस्तक किसी ऐसे व्यक्ति की तरह शान्त, सुस्थिर थी जिसे जीवन के नियम ज्ञात थे, इसके रहस्य जिसने ढूँढ़ निकाले थे और जिसे मृत्यु का कोई भय न था, जिसे जीवन से प्यार था और जो भाग्य से लड़ना जानता था।

उसिक की जिह्वा पर पुस्तक में लिखे यह शब्द उच्चरित हो उठे: "यह कृति पवित्र है।"

उसे मस्तिष्क में अचानक प्रपितामह सार्गिस की याद हो आयी। लोग बताते हैं, वह मिस्तरी थे और शराब व तफ़रीह का उन्हें बड़ा शौक़ था। पत्थरों के विशाल प्राचीर बनाते समय भी वह गाते थे और बुरे दिन आने पर भी। ऐसा लगता था, बुढ़ापा कभी उन पर विजयी नहीं हो पायेगा। घर लौटने पर एक दिन उन्होंने देखा कि उनका मकान लूटा जा चुका है। अब परिवार के पास कानी कौड़ी भी न थी। लेकिन सार्गिस ने हँसते हुए कहा था,

"अरे, मेरे हाथ तो अभी भी मेरे पास ही हैं।"

उस मुसीबत भरे समय में वह कहा करते थे, "श्रम जीवन की एक थाती है, धरोहर है।" उनके बेटे, दक्ष वास्तुशिल्पी ने भी वही बात कही थी, उनके पोते और पड़पोते ने भी, उसिक के पिता ने। उसके

पिता ने उसिक को बताया था कि उनके परिवार में बाप से बेटे को सौंपी जानेवाली थाती थी: "दुनिया में श्रम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।"

"श्रम पवित्र है," यही शब्द उसने पुस्तक में पढ़े थे। उसिक के मेहनती पूर्वजों का भी यही कहना था। उसने शब्दों को फिर से पढ़ा: "यह कृति पवित्र है।"

तो क्या यह वही पुस्तक थी?

उसिक की आँखें प्रज्वलित हो उठीं। उसने सैनिक को सिक्के थमा दिये। सैनिक सिक्के जेब के हवाले कर दबी हँसी हँसता जल्दी से वहाँ से चलता बना। भीड़ में हँसी के ठहाकों व हैरानी भरी बातों की आवाज़ें उठ रही थीं।

लेकिन उसिक को कुछ भी दिखाई-सुनाई नहीं दिया। वह अपने ही विचारों में पूर्णतया निमग्न था।

उसके गिर्द भीड़ बढ़ती जा रही थी। जब वह पुस्तक अपनी बोरी में रख रहा था, किसी ने उसे नाम लेकर पुकारा। बुलानेवाला उसी का ग्रामवासी सोगोमोन था।

"क्या पागल हुए हो? या मूर्ख? क्या तुमने उसे पुस्तक के लिए अपने सारे पैसे दे दिये?"

"जी हाँ," व्यग्र मुस्कान के साथ उसिक बोला।

"अब वसन्त में बोआई क्या करोगे?"

इस सवाल से उसिक आहत हो गया। उसके चेहरे पर एक परछाईं आ गयी।

"तुम्हारे ख़्याल से मैंने बड़ी मूर्खता की? है न?"

"घर जा, मूर्ख।"

हाँ, वह घर लौट जायेगा जहाँ भुखमरी उसकी प्रतीक्षा में थी।

समय की ग़र्द पुस्तक पर पड़ी है। एक बार फिर उसकी कहानी बीच में ही रह जाती है।

उसिक का क्या बना? भूख ने उसके प्राण ले लिये या वह जीवित रहा? निस्सन्देह, उसका यह काम पागलपन से भरा था...

इतिहासकार कहते हैं, उसिक ने पुस्तक के लिए अपने सारे पैसे दिये... उसे जरूर ऐसी अनुभूति हुई होगी कि त्राण तो गेहूँ में भी नहीं क्योंकि गेहूँ मृत्यु का भय हमेशा-हमेशा के लिए नहीं दूर कर सकता।

एक बीमार बच्चे के तकिये के नीचे से कोई पुस्तक झाँक रही थी (सदियाँ बीत चुकी हैं)। अनपढ़ खेतिहरों के इस परिवार में पुस्तक के बारे में कोई भी नहीं जानता था। उन्हें यह पुस्तक किसी मकान के ध्वंसावशेषों में मिली थी। लोगों का विश्वास था, यह पुस्तक सभी तरह के रोगों को दूर कर सकती थी। और उनका बच्चा दुर्बल मस्तिष्क का था...

"हाजी, तुम्हारा कारवाँ कहाँ जा रहा है?"

"वेनिस और अगर भाग्य ने साथ दिया तो जेनेवा।"

हाजी एक पुस्तक पर झुका बड़ी उत्सुकता से पढ़े जा रहा था। उसका रास्ता जलते रेगिस्तान से गुज़रता था। ऊँटों पर मजीठ, चमड़े और बहुमूल्य पत्थर लदे थे।

कारवाँ ने तम्बू डाले।

हाजी यात्रा की थकान उतारता पुस्तक पढ़ता रहा।

इस प्रकार युगों से विचरती पुस्तक हम तक आयी। टिमटिमाती लौ की तरह शताब्दियों के अन्धेरे के बीच भटकती आख़िर हम तक पहुँच ही गयी। यात्राओं में इसे कैसे-कैसे ख़तरे झेलने पड़े, हम कभी नहीं जान पायेंगे। न तो शीत, न अन्धेरा, न आग, न निदाघ इसे नष्ट कर पाया। इसकी अक्षुण्णता कोई चमत्कार थी या मात्र संयोग? हमारे पूर्वजों ने इसकी देखभाल की, इसकी हिफ़ाज़त की और समय की समस्त प्रतिकूलताओं के बावजूद वे आगामी पीढ़ियों को सौंपते गये।

पुस्तक मुस्कराती है। यह सरल है, निश्चिन्त है, शरारती है और अपना उद्देश्य जानती है। या शायद यह बुद्धिमान है और अपना भविष्य इसे मालूम है?

तूफ़ानी सागर की उत्क्षेपित लहरों पर खेलती यह एक रविरश्मि है। लहरें पीली पड़ती हैं, काली होती हैं, झाग-झाग होती हैं, गरजती हैं, स्वयं सूर्य को चुनौती देती हैं लेकिन इसके बावजद सूर्य की निर्भय किरण उन पर मुस्कराती रहती है। सागर की घृणा उसे परेशान नहीं करती, लहरें उसे भयभीत नहीं करतीं।

रंग सज्जा से हज़ारों-हज़ार आँखें उल्लसित हुई हैं, श्रद्धापूर्वक एवं कोमलता के साथ हज़ारों-हज़ार हाथों ने इसके पन्नों का स्पर्श किया है।

हज़ारों-हज़ार हाथ मिट्टी में मिल गये, हज़ारों-हज़ार तलाशती आँखें मृत्यु की नीन्द सो गयीं लेकिन यह जीवनदायी पुस्तक जीवित रही।

एक इनक़लाब इन सुनहले पन्नों से गुज़र रहा है और सदियों से जीवित पुस्तक उसकी ओर विश्वासपूर्ण दृष्टि से देख रही है। यह अपने शाश्वत रक्षक के साथ जीवित रही है: वह शाश्वत रक्षक है जनता।

फ़ौलादी पुरालेखागारों में शताब्दियाँ ख़ामोश पड़ी हैं। एक श्वेतकेशी वृद्ध प्राचीन इतिहास के गर्त पर झुका है और उसे फूल ही फूल, सुमन ही सुमन दिखाई दे रहे हैं...

अवेतिक इसाकियान

साम्रादी का अन्तिम वसन्त

वसन्त का पदार्पण हुआ था।

धरती का रूपान्तरण करनेवाले वसन्तों में यह एक था। हर्ष एवं विषाद का कवि साम्रादी* ऐसे सौ वसन्त देख चुका था।

उस सुबह साम्रादी की नीन्द सवेरे खुल गयी। वह रोन्नाबाद नदी के तटवर्ती कुसुमोद्यान में वसन्त के चमत्कार बुलबुल का गायन एक बार फिर से सुनने जा पहुँचा।

उसने प्रातः तन्द्रा में निमग्न, प्रकृति के उपहार गुलाबों से सुशोभित शिराज़ के खेत की ओर देखा। एक सुवासित सफ़ेद कुहरे का आवरण उस पर आच्छादित था।

साम्रादी एक कुसुमित चमेली की लता तले सुन्दर-से इस्फ़हानी क़ालीन पर बैठ गया। अपने काँपते हाथ में गुलाब की एक हरी-लाल कली थाम कर वह धीमे स्वर में बोल उठा:

"अपने प्रियतम के आलिगंन में जाकर जिस तरह कोई युवा अपरिणीता मुस्कराती है, प्रातःकालीन बयार के लिए गुलाब अपने होंठ उसी प्रकार अलग कर लेता है।"

हालाँकि साम्रादी अब बहुत बूढ़े हो चुके थे, उनकी आत्मा अभी भी अधमुँदी पलकों व अर्द्धवधिर कानों से इस दुनिया की अद्भुत घटनाओं तथा प्रतिमाओं को, अज्ञात दूरियों के गीतों व ख़ामोशियों को देख-सुन सकती

---

* साम्रादी (११८४-१२९१)–ईरान का महान कवि

थी क्योंकि कैफ़ पहाड़ के ऊपर घोंसला बनाकर रहनेवाली कविता की जादुई रूह, सिमुर्ग़ चिड़िया अभी भी उनसे बातें करती थी....

उजास आँखों, पांशु पंखोंवाली बुलबुलों ने प्रेम की आग से प्रज्वलित अपनी मोहक रूबाइयाँ लहराती आवाज़ में गाना शुरू कर दिया और उनके गीत साम्रादी के हृदय में गुंजरित होने लगे।

दुलराती बयार का एक अछूता झोंका अपने साथ सुदूरवर्ती प्रेमासक्त गुलाबों का प्रेमाभिवादन ले आया और साम्रादी की आत्मा उनकी इन प्रेमाभिव्यक्तियों को जान गयी...

"प्रेम से पगा हृदय सदैव प्रकृति की बातें समझ लेता है। दुनिया सामंजस्यपूण है। इसकी आसक्तिपूर्ण मादकता शाश्वत है," बहुत समय पहले कहे उसे अपने शब्द याद हो आये।

बुलबुल के गीत तथा लाल गुलाबों के सौन्दर्य में खोये साम्रादी ने उनकी अभिभूतकारी सुरभि का पान किया और मदहोश हो पलकें बन्द कर लीं; किसी सपने की तरह उनके हृदय में विश्व प्रतिबिम्बित हो उठा।

उन्हें पवित्र कमलों से सुशोभित भारत की शान्त नदियाँ दिखाई दीं।

उन्हें जंगलों में सोच में डूबे बुद्धिमान हाथी दिखाई दिये और दिल्ली के स्वर्णिम प्रासादों में काले बालों में लाल-लाल फूल लगाये प्यारी-प्यारी सुन्दरियाँ उन्हें दिखाई दीं।

उन्हें तुरान के तूफ़ानी मैदान और चमकती तलवारें लिये, आँधी के डैनों पर सवार भयानक नराधम दिखाई दिये।

उन्हें रेगिस्तान भी दिखाई दिया, धूप से झुलसा और आकाश में उड़ते उक़ाबों की निगरानी में फुर्तीली हिरनियों का पीछा करते घुड़सवार बद्दू भी दिखाई दिये।

उन्हें तीर्थयात्रियों का असीम कारवाँ भी दिखाई दिया; वे उनको मक्का के फाटकों पर घुटने के बल झुके, दुआ करते, गुनगुनाते दिखाई दिये।

उन्हें प्राचीन मिस्र के विख्यात चमत्कार, असीम सागरों के नील स्फटिक और लरजते बदनवाली दमिश्क की मखमली त्वचावाली सुन्दरियाँ दिखाई दीं। उनकी कोमल, प्यार जताती बाँहें नौजवान साम्रादी को कण्ठहार की तरह आलिंगन में लिये थीं...

आह भरकर साम्रादी ने आँखें खोल दीं।

"उफ़, मेरे सौ साल किसी मधुर स्वप्न की तरह, किसी एक रात के स्वप्न की तरह गुज़र गये; यह सौ साल एक पल की भाँति बीते क्योंकि ऐ परीकथाओ, बुलबुलो और गुलाबो व गुलाबों की सहगामिनियो, स्वर्गिक सुख से भरपूर सुन्दरियो—तुम सब सदैव मेरी संगिनी रही हो!"

कुसुमों से जगमगाते आसमानी बग़ीचों से धूप निकल आयी और घास, पत्ते, पत्थर व शिखर चमक उठे क्योंकि रात ने उन सब पर हीरे की धूल छिड़क दी थी।

नीले आकाश और स्वर्णिम सूर्योदय में ऊँची उड़ानें भरते नभचरों को साआदी गहरी नज़रों से देख रहे थे।

उन्होंने उनकी ओर आश्चर्य एवं विस्मय से देखा।

"सच में यह धरती एक चमत्कार है, एक परीकथा है: यह अति सुन्दर है, आश्चर्यजनक है।

मैं हर दिन इस धरती को देखता हूँ और हर दिन मुझे नया आश्चर्य होता है मानो इसे पहली बार देख रहा होऊँ; धरती जानी-पहचानी है फिर भी अद्भुत, पुरानी है फिर भी नयी, ऐसे शाश्वत एवं अवर्णनीय सौन्दर्य से नित नूतन है जिसकी तुलना सिर्फ़ इसी से की जा सकती है।"

साआदी ने धरती की ओर, प्रकृति के नाना रूप व इसकी ऐन्द्रजालिक क्रीड़ा की ओर एक बार फिर देखा। उन्हें हरित चरागाह पर अपने मूँगे से लाल क़दमों से डग भरते दो कपोत दिखाई दिये। वे गुटरगूँ करते हुए चोंच लड़ा रहे थे। एक बार फिर साआदी ज़ोरों से बोल उठे:

"पूरी धरती किसी मन्त्र के वशीभूत है, यहाँ की हर चीज़ अदृश्य जादूगर के हाथों की जादुई छड़ी के वशीभूत है, यहाँ की हर चीज़ ने परीकथा का रूप धारण कर लिया है।

धरती तेज़ी से दौड़ी जा रही है, गिरकर अलहदा होती है और सदैव परिवर्तित होती रहती है; लेकिन वह कौन-सी चीज़ है जो इस भव्य धरती की पुनः सृष्टि एवं इसका पुनर्निर्माण करती है, हमारे सामने परी-कथाओं का अद्भुत जाल बिछा देती है?

कौन-सी ऐसी चीज़ है जो हिरनियों को प्रेम-संवेग से दीवाना बना देती है और वे नुकीली खड़ी चट्टानों पर चढ़ने को व्याकुल हो पत्थरों से सींग तोड़ लेती हैं?

कौन-सी ऐसी चीज़ है जो आदमी को अज्ञात से नाता तोड़, रक्त व

मज्जा का शरीर धारण कर सोचने व पीड़ित होने, प्रखर इच्छाओं-कामनाओं की लपटों को महसूस करने और कभी न मरने की लालसा पालने को मजबूर कर देती है?

आह, प्यार, ऐ अजेय शक्ति, ऐ मृदुल अधिनायक, तुझे मैं बहुत समय से जानता हूँ! लेकिन इसके बावजूद मैं तेरी गहराई, तेरे सारतत्व को पूरी तरह समझने में असफल रहा..."

साम्रादी ने अन्तःप्रज्ञा से जान लिया था कि यह जीवन का अन्तिम वसन्त होगा।

अन्तिम वसन्त!

बाग़ का द्वार खुला।

अपने हिम धवल शरीर को बयार के हवाले कर शिराज़ की नज़ियत अन्दर आयी। वह साम्रादी की प्रेयसी थी और प्रायः उनसे मिलने आती थी।

शराब की तरह नशीले उसके होंठ, उसके वसनहीन बाँहों का गोरापन और उत्ताप ने शतवर्षीय कवि की निन्द्राविहीन रातों को प्रायः उल्लासमय बनाया था।

साम्रादी उससे अपने पूरे युवा, अम्लान हृदय से प्यार करते थे और अपनी अमर कृति "गुलिस्तान" में उसे स्वर्णाक्षरों में अंकित कर दिया था।

नज़ियत उनके पास आयी, उसकी बाँहों में गुलाब ही गुलाब भरे थे। उसने उनका अभिवादन किया। वह स्वयं भी गुलाब की तरह सुवासित थी।

कवि उदास था। उसके पीले होंठों पर उदासी थी।

"ओह, नश्वरों में सर्वाधिक सुखी, तुम्हें कौन-सी वेदना साल रही है?"

साम्रादी चुप थे।

"ओ साम्रादी, मुझे तुम्हारी चिन्तनता से प्यार है; तुम्हारी उदासी बुद्धिमत्ता की चिर सहचरी है; तुम्हारे दिव्य होंठों ने ही तो यह शब्द कहे थे कि मोती ज़ख्मों से पैदा होते हैं और अगरबत्ती की ख़ुशबू इसकी जलन की तरह मीठी है।"

साम्रादी ने उसकी ओर क्षीण मुस्कान के साथ देखा।

"देखो, मैं अपने बग़ीचे से तुम्हारे लिए मख़मली गुलाब लायी हूँ।"

साआदी के ऊपर फूल बिखेर उसने अपनी उज्ज्वल अँगुलियों के कोने से कवि का उदास ललाट छू लिया।

"ऐ अप्सरे, जो फूल तूने मुझे दिये हैं वे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ गुलाब रहे हैं और वे कभी मुरझाये नहीं।"

"हाँ, साआदी। 'गुलाब की ख़ुशबू लेनेवाले को इसके क्षणिक जीवन के बारे में क्यों सोचना चाहिए? इसकी ख़ुशबू की याद करो और तुम फ़ौरन भूल जाओगे कि यह कब का मुरझा चुका है।'" नजियत ने अपने रजतोपम स्वर में कवि के किसी समय कहे शब्द दुहरा दिये।

और सपनों का आह्वान करनेवाले उसके बाल साआदी के चेहरे पर छा गये, वह घुटनों के बल उसके सामने बैठ गयी। फिर एक सुरभिमय बयार कुसुमोद्यान में बहने लगी, इसके इन्द्रधनुषी पंख फड़फड़ा उठे: यह सिमुर्ग पक्षी के अद्भुत पंख थे और जब साआदी अपने कांपते हाथ से नजियत के स्वप्निल बालों को सहला रहे थे, वे पंख हवा में फड़फड़ाने लगे थे।

फिर अपनी अन्तरात्मा में डूबकर साआदी ने अपने आस-पास की परी-कथा की जाज्वल्यमान दुनिया पर नज़र डाली; उन्होंने कमनीय सुन्दरी के होंठों पर खेलती प्रभासमान मुस्कान की ओर देखा और गर्म आँसू की एक बून्द उसके बूढ़े दिल को जला गयी; फिर प्रेयसी का नन्हा-सा हाथ अपने हाथ में लेकर साआदी ने उसे चूमकर अपने फड़फड़ाते हृदय से सटा लिया।

"अपने इस नन्हे हाथ से मेरी 'गुलिस्तान' के आख़िरी पन्ने पर मेरे अन्तिम शब्द लिख देना:

अपनी इच्छा से हम पैदा नहीं होते, हम आश्चर्य में जीते हैं और सन्ताप में मर जाते हैं!"

राफ़ेल अरामियान

मटकी ले, पनिया भरन को गयी

घोड़े में अस्तबल की बू बसी थी: लगता था, अरसे से किसी ने इसकी सवारी नहीं की थी। घोड़े की लगाम थामे मुसाफ़िर उसके आगे-आगे चल रहा था। थोड़ी ही देर में सुनसान रास्ते पर एक गड़ेरिया उसके पास आ पहुँचा। उसके हाथों में एक नवजात मेमना था।

"शुभ दिन। कहाँ की यात्रा पर हो?" मुसाफ़िर ने पूछा और मेमने के रेशमी रोएँ सहला दिये।

"भाई, तुम्हें भी शुभ दिन। मैं सारिगिउख़ जा रहा हूँ।"

"क्या हिमाच्छादित पर्वत में तुम वसन्त ला रहे हो?"

"कैसा वसन्त? मैं तो मेमने को ले जा रहा हूँ।"

"मेमना ही तो वसन्त है।"

उसके विचित्र उत्तर से मन ही मन में हँसते हुए गड़ेरिये ने मुसाफ़िर की ओर ध्यान से देखा।

"और तुम? तुम हिमाच्छादित पर्वत में क्या ला रहे हो?" उसने मखौल उड़ाते हुए पूछा। मुसाफ़िर को उसकी आँखों में स्पष्ट व्यंग्य की झलक दिखाई दे गयी लेकिन उसे बुरा नहीं लगा।

"कुछ भी नहीं। इसके विपरीत मैं वहाँ से अपने साथ कुछ ले जाना चाहता हूँ।"

"क्या?" गड़रिये की आवाज़ में चिन्ता थी। "क्या तुम कोई ज़मीन्दार हो?"

"नहीं।"

"तो फिर तुम कौन हो?"

"मैं गीत संग्रह करता हूँ।"

गड़ेरिये को उसका उत्तर मूर्खतापूर्ण लगा। भला किसी ने कभी गीत संग्रह की बात सुनी है?

"अरे भाई, मैं यही काम करता हूँ," गड़ेरिये के विचारों को भाँपकर मुसाफ़िर बोला। "गीत की तलाश करनी जरूरी है। काश, तुम जानते, इस समय तुम्हारी खुरजीं में ही कितने गीत छुपे हैं..."

"मैं देखता हूँ, तुम बड़े मजाक-पसन्द हो। मेरी खुरजीं में गीत क्यों होने लगे? उसमें तो बस पनीर है, रोटी है और नदी तट पर उगनेवाले पुदीने के पत्ते हैं।"

मुसाफ़िर मुस्करा रहा था।

मेमने को ज़मीन पर उतारकर गड़ेरिये ने अपनी खुरजीं खोलनी शुरू कर दी। मेमना अपने दुर्बल पैरों पर काँप रहा था। वसन्त कितना सद्यः व नूतन था! बयार के हल्के-से झोंके से भी मुलायम, रसदार घास बिछ-सी जाती थी। पैर फैलाकर, अपना नन्हा-सा सिर नीचे झुकाकर मेमने ने घास का ग्रास मुँह में ले लिया।

"आओ बैठो। हम सारिगिउख़ तक साथ-साथ चलेंगे," गड़ेरिये ने कहा। "पनीर व पुदीने से हम तरोताज़ा हो लें। आओ।"

शाम हो आयी थी जब वे सारिगिउख़ पहुँचे। वे पैदल चल रहे थे और ज़ीन से बँधी खुरजीं के अन्दर से मेमने का नन्हा-सा सफ़ेद सिर झाँक रहा था। एकदम गाँव के पास ही भेड़ों के झुण्ड ने उनका रास्ता रोक लिया। करुण स्वर में मेमना मेमिया उठा। भेड़ों का झुण्ड तो आगे बढ़ गया लेकिन एक मेषी थमककर रुक गयी और मेमियाते हुए उलझन में पड़कर इधर-उधर देखने लगी।

"सिर्फ़ गुमशुदा बच्चे की माँ ही किसी अनाथ के क्रन्दन को समझ सकती है।"

"हाँ," गड़ेरिये ने हामी भरी। "हमेशा से ऐसा होता आया है और हमेशा होता रहेगा। तो तुम्हें गीतों की तलाश है?" उस ने अचानक ही पूछा। मगर इस समय उसकी आवाज में न तो आश्चर्य था, न तो व्यंग्य। "वह उधर देखो।" सड़क के मोड़ के पास एक पत्थर के मकान की ओर इशारा करते हुए उसने कहा। "वहाँ रहनेवाले लोग अपने घुमक्कड़ के लौटने की राह देखते हैं। उन्होंने सड़क के किनारे इस लिए मकान

बनाया है कि किसी विलम्बित मुसाफ़िर को रात में ठहरने की जगह मिल जाये। उस वृद्धा का बेटा कहीं विदेश चला गया है, इसलिए उसने अपनी बहू को आदेश दे रखा है: 'मुसाफ़िरों के लिए हम अपने मकान के दरवाज़े हमेशा खुले रखें जिससे हमारे घुमक्कड़ को भी सब कहीं सत्कार प्राप्त हो'।"

गड़ेरिये ने ज़ीन से खुरजी खोलकर कन्धे पर लटका ली। फिर अपने सहयात्री को अलविदा कह वह सारिगिउख़ की ओर चला गया। काफ़ी देर तक मुसाफ़िर झुटपुटे में सफ़ेद धब्बे को जो मेमने का सिर था, देखता रहा और उसकी करुण मेमियाहट सुनता रहा। और एक बार फिर अन्धेरे में उसे गुमशुदा बच्चे की माँ का करुण क्रन्दन सुनाई दिया...

गाँव के आख़िर में पत्थरवाले मकान में रात बिताने के लिए मुसाफ़िर रुक गया। उसका घोड़ा अस्तबल में बाँध दिया गया। वृद्धा की बहुएं उसके लिए पानी ले आयीं। जब उसने हाथ-मुँह धो लिया, घर की मालकिन बोली, "तुम्हारे लिए बिस्तर कहाँ लगाया जाये?"

"छत पर।"

"अगर ऐसी ही उसकी इच्छा है तो वही करो," उसने युवा महिलाओं से कहा।

"बिस्तरे की कोई ज़रूरत नहीं। बस मेरे लिए थोड़ी सूखी घास ला दो। मुझे सूखी घास पर सोना पसन्द है।"

वृद्धा ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। उसने बुरा मानने के अन्दाज़ में जवाब दिया,

"भला किसी ने कभी आर्मीनियाई परिवार को किसी मेहमान को गन्दा लिनेन देते सुना है?"

एक के बाद एक, कई कम्बल उसने साफ़-सुथरे ढेर में से निकालकर उसके सामने फेंक दिये। एक कम्बल तो किसी प्राच्य परीकथा जैसा था। उस पर चमकते बादामों की डिज़ाइनें बनी थीं। ऐसा प्रतीत होता था जैसे अंजुलियों में भर-भरकर बादाम व ख़ुरमा उसके विमल किनारों में बिखेर दिये गये हों। मुसाफ़िर ने कम्बल पर प्यार से अपना हाथ फेरा। बचपन में उसके पास एक इतना ही भड़कीला कम्बल था। वह उसके इन्द्रधनुषी रंगों को देखते नहीं थकता था, वह डिज़ाइनों में गीत सुनता रहता, उसे अनन्त सर्पिल मार्गों पर पतली कमरवाले नौजवान व बादामी आँखोंवाली लड़कियाँ नज़र आने लगतीं...

बाद में, एचमियाद्ज़िन मोनेस्ट्री की दीवारों के बाहर उसकी मुलाक़ात अपने गाँववासियों से हुई थी जो किसी तरह तुर्क क़त्लेआम से बच गये थे। एक बार फिर उसे ऐसे कम्बल दिखाई दिये थे। इस बार उन्हें बदक़िस्मत शरणार्थी ओढ़े हुए थे। लेकिन बादामी डिज़ाइनें अब उसे परी-कथा के अंग प्रतीत नहीं होते थे। अब वे डिज़ाइनें उसे जैनिज़री (तुर्क सिपाही) के बूटों की छापों की याद दिलाती थीं जो उसके हृदय को, उसकी मातृभूमि के हृदय को रौंदने को तत्पर थीं।

मानो उन घिनौनी पद-छापों को मिटा देने के लिए ही उसने कम्बल पर फिर हाथ फेरा।

"क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं?" वृद्धा के स्वर में पीड़ा की झलक थी।

"निस्सन्देह मुझे तुम पर विश्वास है। दरअसल मुझे बिस्तरे पर सोने की आदत ही नहीं।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हारे लिए सूखी घास ले आयेंगी।"

नौजवान औरतें कमरे से चली गयीं। सब कहीं ख़ामोशी थी। कोने में कोई झींगुर झिंगार रहा था, छत के छेद से आ रही चाँदनी में भागते चूहे की झलक दिखाई दी।

बैठने के लिए कहते हुए वृद्धा ने मेहमान के सामने रोटी व दही तथा गेहूँ का शोरबा परोस दिया।

"तुम कहाँ के रहनेवाले हो? तुम कौन हो? तुम किसके बेटे हो?" उसने पूछा।

मुसाफ़िर ने धीमे से कटोरी में रोटी तोड़ी।

"मैं आर्मीनियाई हूँ।" शोरबे में चम्मच घुमाते हुए वह बोला।

"वह तो मैं देख रही हूं।"

"मैं कुताई का रहनेवाला हूँ। मैं गेवोर्क व ताकुई सोगोमोन्यान का बेटा हूँ। मैं ऐबट हूँ। मेरा नाम कोमितास है।"

वैसे ही शोरबे में चम्मच घुमाते हुए वह बोल रहा था, उसका स्वर एकदम ही उकताऊ व उदासीन था और इसी कारण वृद्धा ने उसकी ओर अविश्वासपूर्ण दृष्टि से देखा।

"तुम कैसे ऐबट हो जो केसाक भी नहीं पहनते?"

"मैं यहाँ उपदेश देने नहीं आया हूँ। मैं गीत संग्रह कर रहा हूँ।"

"ज़रूर झूठ बोल रहा है," औरत ने सोचा।

"गीत गेहूँ तो हैं नहीं जो उनका संग्रह किया जाये," टेढ़ी दृष्टि डालते हुए वह बोली।

उसे बुरा नहीं लगा। उसने विश्वास दिलाने की कोशिश भी नहीं की, वह बस सलीके से भोजन करता रहा।

"अगर तुम सचमुच कोई ऐबट हो, मेरे बेटे के लिए प्रार्थना करो," वृद्धा अप्रत्याशित रूप से बोल उठी।

कोमितास ने सिर ऊपर उठाया। उसका चम्मच कटोरे के ऊपर हाथ में झूल रहा था। वृद्धा माँ की आँखों में उमड़ आये आँसू अब गालों पर लुढ़क पड़े थे।

"वह कहीं विदेश में है और हमें उसने अपना कोई समाचार नहीं भेजा है," उसकी आवाज़ रुँध गयी थी। "मेरी बहू उसकी राह ताकते-ताकते गली जा रही थी। मटकी ले वह पहाड़वाले सोते पर जाती है और बैठी बैठी सड़क की ओर निहारा करती है।"

लकड़ी का चम्मच धीरे से कटोरे में फिसल पड़ा।

"वह कहाँ है?"

"बाकू से हमें एक ख़त मिला था। गिरजाघर के पुजारी ने हमें पढ़कर सुनाया था। लिखा था, पतझड़ में घर लौट आयेगा। लेकिन पतझड़ आयी, फिर जाड़ा आया, वसन्त भी आन पहुँचा लेकिन वह अभी तक नहीं लौटा।

उसके चिबुक की अश्रु-बून्द काँप उठी। ऐबट ने यंत्रवत चम्मच की ओर हाथ बढ़ाया लेकिन उसका पता ही न था।

"मैं उसके लिए प्रार्थना करूँगा। मुझे उसका नाम बताओ, मैं तुम्हें ख़त लिखूँगा। जितना हो सकेगा, मैं उसे ढूँढ़ने की कोशिश करूँगा।"

"धन्यवाद। तुम अगर ऐबट नहीं भी ख़त तो लिख ही सकते हो।"

"लेकिन मैं सच में ऐबट हूँ। भगवान साक्षी है, मैं ऐबट हूँ।"

"तो फिर लिख लो: अन्द्रानिक तेकमेकच्यान, वल्द मानास।"

कोमितास ने अपनी संगीतपुस्तिका में नाम लिख लिया।

"भोजन तो करो। या तुम्हें अच्छा नहीं लगा?"

"भूख ही नहीं है।" और कोमितास उठ खड़ा हुआ।

वे बाहर निकल आये। रात घिर आयी थी। पहाड़ों से परे दूर-दूर

तक तारों भरा आकाश फैला था। सपाट छत पर वहाँ एक दीपक टिमटिमा रहा था जहाँ नौजवान औरतें उसके लिए बिस्तर लगा रही थीं। कोमितास घुटनों के बल बैठ गया और उसके पास वृद्धा भी बैठ गयी।

"सर्वाधिक दयालु परमात्मा, सभी घुमक्कड़ों की रक्षा करना," कोमितास ने प्रार्थना शुरू की।

"आमीन," वृद्धा बोली।

दीपक की टिमटिमाती लौ हिल उठी क्योंकि नौजवान औरतें उठ खड़ी हुई थीं। आगेवाली औरत टिमटिमाता दीपक ले जा रही थी, दीपक किसी टिमटिमाते तारे-सा प्रतीत हो रहा था। वह सीढ़ियों से उतर कर दीपक की रोशनी के साथ उनके क़रीब आ गयी जबकि तारे ऊपर ही रह गये।

टिमटिमाती लौ से औरत का रोशन चेहरा, चारों ओर के अन्धेरे में झिलमिला रहा था। उसकी आँखें काली-काली थीं, भौंहें पंखवत और गालों में गड्ढे पड़ते थे।

"किस की रूह के लिए प्रार्थना कर रहे हैं?" उसने पूछा।

"अन्दर जाओ। तुम्हें इससे कोई मतलब नहीं," वृद्धा बोली।

"सर्वाधिक दयालु परमात्मा, सभी घुमक्कड़ों की रक्षा करना," कोमितास ने दोहराया।

"परमात्मा को तुम्हारी प्रार्थनाएँ सुनाई ही नहीं देतीं। वह कभी नहीं तुम्हारी प्रार्थनाएँ सुनेगा," नौजवान औरत ने कहा। ऐबट को उसकी आँखों में स्पष्ट उपहास दिखाई दे रहा था। "न तो परमात्मा ने किसी की कभी सुनी है और न वह तुम्हारी प्रार्थना सुनेगा।"

"घर में जाओ," सास हौले से लेकिन दृढ़ स्वर में बोली। "परमात्मा को सब कुछ सुनाई देता है और कुमारी मेरी को भी।"

"परमात्मा से याचना क्यों कर रही हो? अगर वह इतना ही अच्छा होता, वह अपनी बीवी को इस तरह पीड़ित नहीं होने देता। वह कभी उससे उसका बेटा नहीं छीन लेता।"

"कुमारी मेरी के बारे में ऐसी बातें कहना पाप है। कुमारी मेरी कभी पत्नी थी ही नहीं। परमात्मा हमें माफ़ करे।"

"क्या तुम सोचती हो, मैं पत्नी हूँ? अन्द्रानिक कहीं विदेश चला गया है। अगर परमात्मा इतना दयालु है, वह मुझे बिना पति के बच्चा क्यों नहीं दे देता? या कुमारी मेरी मुझ से ज्यादा सुन्दर थी?"

कोमितास ने उसकी ग्रोर देखा।

ग्राकाश की ग्रन्धकारमय पृष्ठभूमि में दीपक से प्रदीप्त उसका सिर किसी प्रभामण्डल से घिरा प्रतीत होता था। उसके चमकते बाल जाज्वल्यमान थे। उसकी भौंहों के नीचे काली परछाइयाँ थीं। उसकी काली-काली ग्राँखों में दीपक का प्रकाश प्रतिबिम्बित था, गालों में गड्ढे ग्रन्धेरे थे जो जब तब रोशन हो उठते। ग्रन्धेरे में उसके ऊपरी होंठ पर स्वर्णिम कोमल बालों की झलक थी।

"तुमने हमें लांछित किया है। चलो ग्रन्दर," नौजवान ग्रौरत का हाथ थामते हुए वृद्धा ने कहा।

जब कोमितास ग्रकेला रह गया, ग्राकाश की ग्रोर देखने लगा। वह उन घुमक्कड़ों के बारे में सोच रहा था जो ग्रपना घर, ग्रपनी मातृभूमि का परित्याग कर हमेशा-हमेशा के लिए चले गये थे। यों तो सब कहीं निस्तब्धता व शान्ति थी लेकिन उसे प्रतीत हो रहा था जैसे कोई चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा हो: "ग्रार्मीनियावासियो, ग्रपनी धरती का परित्याग न करो! कौन कहता है, हमारी मातृभूमि छोटी-सी है? कोई भी मातृभूमि छोटी नहीं होती। बस इसके सपूत ही निर्बल हो गये हैं। ग्रार्मीनियावासियो, ग्रपने घरों का परित्याग न करो! ध्वंसावशेषों के बीच विजेता कभी नहीं रहेगा लेकिन परित्यक्त घर का स्वामी वह ज़रूर बन जायेगा।"

पहले की ही तरह सब कहीं निस्तब्धता छायी थी। बस कभी-कभी किसी गाय के रम्भाने ग्रौर इक्के-दुक्के कुत्ते के भौंकने की ग्रावाज़ सुनाई दे जाती।

जब कभी वह ग्रकेला होता, प्राय: ग्रपने ग्राप से बातें करता रहता। उस समय उसका छोटा-सा, कहवे के बीजों जैसे रंगवाला चेहरा गम्भीर, विचारपूर्ण हो उठता, ग्राँखें, गहरे धँस जातीं, वह होंठों को इतना कसकर दबा लेता कि वे नीले पड़ जाते। वह ग्रतिव्याकुल हो उठता। फिर हृदय में ग्राशाएँ जागने लगतीं ग्रौर वह ग्रपने ग्राप मुस्करा उठता। ऐसे मौक़ों पर लोग ऐबट की ग्रोर हैरानी से देखने लगते ग्रौर तब मन ही मन में कोमितास उन्हें सम्बोधित करते हुए कहता, "मुझे मायूस देखकर तुम हैरान नहीं होते, बस इतना ही समझ लेते हो, कुछ न कुछ हुग्रा है। लेकिन जैसे ही मैं ग्रपने ही विचारों पर मुस्कराता हूँ, तुम उलझन में पड़

जाते हो। मेरे लोगो, ख़ुशी के अलावा तुम हर चीज़ के आदी हो चुके हो।" उसके मस्तिष्क में विचारों का जमघट लगा रहता... कोमितास घर की ओर बढ़ गया। दरवाज़े के पास वृद्धा खड़ी थी।

"फ़ादर, उसके बारे में अन्यथा न सोचें। अभी भी उसकी उम्र ज़्यादा नहीं हुई है और वह महसूस करती है, परमात्मा ने उसे भुला दिया है। परमात्मा मेरे बेटे व बहू पर मेहरबान हो! क्या उसके लिए आप प्रार्थना करेंगे?"

दरवाज़े के पास ही कोमितास घुटनों के बल झुक गया लेकिन उसने प्रार्थना नहीं की। वह ख़ामोशी से आकाश की ओर निहारता रहा, वह परमात्मा के बारे में नहीं, अपने लोगों के बारे में सोच रहा था। जब तब वृद्धा "आमीन" कह उठती लेकिन ऐबट को जैसे उसकी आवाज़ सुनाई ही नहीं दे रही थी।

...आख़िर चौंककर वह वास्तविक जगत में लौट आया।

"आमीन," वृद्धा कह रही थी।

"आमीन," उसने भी दोहराया।

दोनों उठ खड़े हुए।

"तो तुम बता रहे थे, तुम यहाँ गीत संग्रह करने आये हो? मेरी बहुएँ तो गाती ही नहीं। सीधी-सादी औरतें हैं। शायद बूटियाँ चुनते समय या जब सब कोई सो जाते हों तो रात में गाती हों।"

एक नौजवान औरत दीपक बाहर ले आयी।

"ऐबट को छत तक ठीक से पहुँचा दो," वृद्धा ने कहा।

लकड़ी की सीढ़ियों पर दीपक से रोशनी करती उसकी बहू आगे-आगे चल पड़ी।

"क्या तुम गाती हो?" उसके पीछे-पीछे छत पर पहुँचकर कोमितास ने पूछा।

औरत चुप रही।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

कोई जवाब नहीं मिला।

"तुम्हारा गीत सुनकर मुझे बड़ा अच्छा लगेगा।"

छत पर दीपक रखकर वह जल्दी-जल्दी नीचे उतर गयी। आँगन में पहुँचकर उसने अपनी देवरानी व जेठानी से धीमे से कुछ कहा और उसे उन तीनों की दबी-दबी हँसी सुनाई दे गयी।

"तुमने बता दिया होता, तुम्हारे पति है। तुमने बता दिया होता कि एरीकनाज़ का पति कहीं जा कर नहीं लौटा है।"

"उसके बारे में ऐसी बातें न कहो।"

"क्यों नहीं? बस अपनी मटकी उठाकर पहाड़ में सोते पर जाकर चुपचाप बैठ जाती है। कहती है, अन्द्रानिक की बाट जोहती है। उसे न तो कुमारी मरियम पर, न तो परमात्मा पर विश्वास है।"

कोमितास को उन पर कोई गुस्सा नहीं आया बल्कि एरीकनाज़ के प्रति उसे दुख की अनुभूति ज़रूर हुई।

"दीपक लाने के लिए एरीकनाज़ को ऊपर भेज दो," एक औरत बोली और बाक़ी सब हँस पड़ीं। उनकी हँसी दरवाज़े के पास से तैरती ऊपर को उठ रही थी। दरवाज़ा खुला और तेज़ी से लम्बकार रोशनी पड़ी व ग़ायब हो गयी। फिर सर्वत्र निस्तब्धता छा गयी।

कोमितास पीठ के बल बाँहों पर सिर रखे लेटा था। उसके चारों ओर सूखी घास की सुवास थी। नीन्द कहीं दूर थी। गीत सुन पाने की आशा में उसने कान लगा रखे थे। शायद कोई गा ही उठे जैसे कोई विलम्बित यात्री, बच्चे को थपकियाँ देती कोई माँ या कोई प्रेमासक्त लड़की। कोई आर्मीनियाई ख़ास तौर पर किसी के लिए तो शायद ही गाये। उसका गीत सुनना है तो अनजाने में ही। जब औरतें बूटियाँ चुनने जाती हैं तो क्या उनके पीछे-पीछे चुपके से चल पड़ना चाहिए? शायद देख लेंगी। लेकिन अगर उनकी नज़र न भी पड़े तो यह ज़रूरी तो नहीं कि वे गायेंगी ही। शायद इसीलिए विदेशी यात्री सोचते थे कि आर्मीनियाइयों के अपने गीत होते ही नहीं। लेकिन क्या ऐसे लोग भी होते हैं जिनके गीत न हों? उसे मोनैस्ट्री की गरमागरम बहस याद हो आयी जब एक साधु ने बल देकर कहा था कि कियामान्चा और तार पूर्णतया आर्मीनियाई बाजे थे और आर्मीनियाई गीतों की ख़ास विशेषता उनके स्वरों का आरोह-अवरोह थी जो हमेशा जीवन्त व करुण होते थे।

"आर्मीनियावासियों के बारे में उन्हें मालूम ही नहीं," उसने कड़वाहट से सोचा। "हमारी आत्मा के दर्शन हमारी वास्तुकला में करने चाहिए। हमारी मोनैस्ट्रियाँ सीधी-सादी किन्तु सख़्त हैं। हमारे गीत भी वैसे ही हैं: रुक्ष तथा अनलंकृत।"

उसने करवट ली। गाँव के गिरजाघर की ऊँची मीनार कृष्णाभ नभ

की पृष्ठभूमि में छायाचित्र-सी दिखाई दे रही थी, वह पोपलरों से भी ऊँची थी। अब वह कुछ भी नहीं सोच रहा था, आँखें उसने बन्द कर ली थीं और पलकों के तले का कालापन असंख्य काले धब्बों-सा दिखाई दे रहा था जैसे किसी अदृश्य हाथ ने आस-पास तिल के दाने बिखेर दिये हों। तभी तो उसे आवृत्त करनेवाला वह अन्धेरा इतना असीम, इतना अथाह प्रतीत होता था। सवेरे उसकी आँखें खुलीं। बग़ल में एक झींगुर झिंगार रहा था। ज़रूर ही रात भर बोलता रहा होगा लेकिन उसे तनिक भी उसकी आवाज़ सुनाई नहीं दी थी।

वृद्धा ने गोशाला का द्वार खोल दिया। लड़खड़ाती चाल से भेड़ें बाहर निकल आयीं और उनके पीछे ही एक भैंसा भी चला आया। आकाश की नीलाभ-अरुणिम पृष्ठभूमि में भैंसे का नीला-काला चमड़ा स्याही का एक बड़ा-सा धब्बा प्रतीत होता था और ऐसा लगता था जैसे वह धब्बा आसमान में फैल जायेगा और कभी साफ़ नहीं होगा।

सिर हिलाकर रँभाते हुए भैंसा आगे बढ़ गया।

"एरीकनाज़! भैंसा बाहर निकल आया है।" वृद्धा ने आवाज़ दी।

एरीकनाज़ भैंसे को हाँककर वापस गोशाला में ले गयी। फिर मटकी उठाकर वह दुबारा बाहर चली आयी।

"इतना सवेरे-सवेरे पानी लाने क्यों जा रही हो?"

"अन्द्रानिक भी तो सवेरे ही गया था।"

छत पर अपनी जगह से ही वह पहाड़ों की ओर जानेवाले रास्तों को देख सकता था। बैंगनी कुहरे में मटकी नीली दिखाई दे रही थी। वह एक के बाद दूसरी ऊँचाई पर चढ़ती गयी और धीरे-धीरे मटकी उसी का अंग बन गयी। पल भर कोमितास को अपनी कल्पना में वे प्रेमियों की जोड़ी प्रतीत हुईं, दोनों के सिर आपस में सटे थे और वे सोते की ओर बढ़ते हुए सुदूर में विलीन हो रहे थे...

और फिर उसे मन ही मन में सुनाई दिया या सचमुच ही किसी गाने की आवाज़ आ रही थी ...

"मटकी ले पनिया भरन को गयी..."

पहाड़ों में कहीं यही गीत उसने कभी सुना था लेकिन उसे याद न आ रहा था कहाँ—अरागात में, सिपान में, बिंगेल में या आरागात्स में।

सब कहीं औरतें मटकियाँ ले पानी लाने जाती हैं, सब कहीं किसी न किसी को अपने प्रिय की तलाश रहती है और किसी को अपनी ख़ुशी हासिल होती थी, किसी को नहीं।

थोड़ी ही देर में सूरज निकल आयेगा। गाँव पाद पर्वत में बसा था। सोता चोटी पर था। छत से वह सोते व एरीकनाज़ को चोटी पर चढ़ते देख सकता था। उठकर कोमितास ने कपड़ों से तिनके झाड़े। रास्ते सोते के पास से शुरू होते थे और मुड़ते, बल खाते तराई में स्थित नदी की ओर उतरते हुए टीलों के पीछे खो जाते थे। उसे ऊपर सोते के पास से गीत की आवाज़ आती सुनाई दी। गानेवाली एरीकनाज़ थी।

"मटकी ले पनिया भरन को गयी..."

किन पहाड़ों में यह गीत जन्मा था? कोई नहीं जानता। सब कहीं किसी न किसी को अपने प्रिय की तलाश रहती है, किसी को ख़ुशी हासिल होती, किसी को नहीं।

संगीत-पुस्तिका निकालकर कोमितास ने जल्दी-जल्दी लिखना शुरू कर दिया। अधखुली आँखों से सुदूर में विलीन होते रास्तों की ओर देखते हुए वह पहला बन्द गाने लगा। उसे पति को अलविदा कहती एरीकनाज़ दिखाई देती प्रतीत हुई। उसके धूप से सँवलाये नंगे पाँव ओससिक्त थे, उसके सोने के कर्णफूलों में धूप चमक रही थी। उसके गालों में गड्ढे पड़े थे और भौंहें पंखवत थीं।

"अपने समाचार भेजते रहना और जल्दी आना," एरीकनाज़ धीमे से बोली थी।

"जब लकलक लौटेंगे और बच्चे छत पर खड़े होकर फिर से चिल्ला पड़ेंगे, 'ओ लकलक। अच्छा हुआ तुम लौट आये!' तब मैं भी लौट आऊँगा," अन्द्रानिक बोला था।

वह अपनी यात्रा पर रवाना हो गया था जबकि एरीकनाज कन्धे पर मटकी लिये सोते के पास खड़ी रह गयी थी।

कोमितास को महसूस हो रहा था जैसे यह सब कुछ अभी, उसकी आँखों के सामने घटित हो रहा था, एरीकनाज़ ने अभी-अभी पति को अलविदा कहा था और सर्पिल रास्तों पर ग़ायब होता आदमी अन्द्रानिक था।

"फ़ादर, एरीकनाज़ पानी ले आयी है। क्या आप मुँह-हाथ धोयेंगे?"

वृद्धा के स्वर से वह कल्पना लोक से लौट आया। नीचे उतरकर, हाथ-मुँह धो, वह घर के अन्दर चला आया।

जब अस्तबल से घोड़ा ले आया गया, कोमितास ने सबसे विदा ली। जब वह चलने को हुआ, वृद्धा ने कहा, "फ़ादर, क्या आप अन्द्रानिक को ख़त लिखेंगे और उसे हम लोगों को अपना समाचार भेजने कहेंगे?"

एरीकनाज़ कुछ भी न बोली। ज़मीन की ओर देखती वह सास की बग़ल में खड़ी रही।

"उसका समाचार मिलते ही मैं तुम लोगों के गिरजाघर में प्रवचन देने आऊँगा।"

"प्रवचन शुभ हो," वृद्धा बोली।

* * *

कई महीने बीत गये। बाकू के बिशप को लिखे ख़त का जवाब कोमितास को मिल गया था।... "अन्द्रानिक तेकमेकच्यान नाम का एक घुमक्कड़ बाकू में पिछली पतझड़ में मृत्यु को प्राप्त हो गया। परमात्मा उसकी माँ व विधवा को सान्त्वना प्रदान करे..."

ख़त को फिर से पढ़ते हुए उसे सारिग्युख गाँव के गिरजाघर में प्रवचन के अपने वायदे की याद आयी। इस बार उसने केसाक धारण कर लिया और आगमन की सूचना भेज दी।

ग्रीष्मावसान था। घासकटे चरागाहों से तीतरों की आवाज़ें आ रही थीं। भयानक गर्मी थी। घोड़ा थमक-थमककर चल रहा था लेकिन कोमितास फिर भी उसे टिटकारने की कोशिश नहीं कर रहा था। उसे कोई जल्दी न थी।

"प्रवचन शुभ हो," वृद्धा के यह शब्द उसे याद आये। लेकिन वह तो बुरा समाचार ले जा रहा था।

जब उसे दूर में गाँव व सड़क के किनारेवाला पत्थर का मकान दिखाई दिया, उसने घोड़े का रुख़ मोड़ दिया जिससे वृद्धा अथवा एरीकनाज़ का सामना न हो।

गिरजाघर के प्रांगण में किसान एकत्र हुए थे। उसे दोनों औरतें फ़ौरन

ही दिखाई दे गयीं। घोड़े से उतरकर कोमितास उनकी ओर बढ़ गया। वृद्धा ने उसका हाथ चूमा लेकिन पूछा कुछ भी नहीं। कोमितास ने राहत की साँस ली। फिर एरीकनाज़ पर नज़र पड़ी तो उसने महसूस कर लिया, उसकी आँखों के ज्वलन्त प्रश्न से वह ख़ुद को नहीं बचा सकता। उसे ख़त के बारे में ज़रूर ही बता देना चाहिए।

टन-टन करके गिरजाघर की घण्टी बज उठी। प्रांगण में धूप की ख़ुशबू उठ रही थी। जनसमूह की ओर देखता कोमितास प्रार्थना कक्ष में खड़ा था। अब लोग घुटनों के बल झुक गये थे। एरीकनाज़ प्रार्थना नहीं कर रही थी। वह लगातार ऐबट की ओर देखे जा रही थी, उसकी आँखें सवाल कर रही थीं: "तुम उसका समाचार लाये?"

और तब स्वयं हैरान होते हुए उसने प्रार्थना के बदले एक गीत गाना शुरू कर दिया। उसका गीत मुश्किल से सुनाई दे रहा था:

"मटकी ले पनिया भरन को गयी,
न मिला प्रियतम उसे, न मिला..."

गाँव के पुजारी ने ऐबट की ओर आश्चर्य से देखा। "गिरजाघर की सामूहिक प्रार्थना में वह गीत गा रहा है और वह भी किसी के प्रियतम के बिछुड़ने के बारे में," पुजारी सोच रहा था, "आर्कबिशप को इसका कोई पता नहीं और भगवान भी चुप है।"

"फ़ादर, आप यह क्या कर रहे हैं," पुजारी धीरे से बोला। "आप सारिगिउख़ के गिरजाघर में हैं, परमात्मा हमें देख रहा है, सलीब में ईसा की तस्वीर हमें निहार रही है।"

कोमितास ने सुनी-अनसुनी कर दी।

"मटकी ले पनिया भरन को गयी..."

गीत गाते-गाते उसने एरीकनाज़ की ओर देखा। वृद्धा प्रार्थना कर रही थी और ख़ामोश सुबकियों से उसके कन्धे हिल उठते। एरीकनाज़ प्रार्थना नहीं कर रही थी। अपने सवाल के जवाब की तलाश करते हुए वह ऐबट को देख रही थी। ऐबट उसका गीत गा रहा था—वही गीत जिसे वह वसन्त में गाती रही थी, जिसे वह अन्द्रानिक के लिए गाती रही थी।

ऐबट उसी का गीत गा रहा था। उसने ऐबट की ओर देखा लेकिन उसकी आँखें अभिव्यक्तिहीन थीं। अन्धेरे गिरजाघर में टिमटिमाती मोमबत्ती की रोशनी भी उसकी आँखों में प्रतिबिम्बित न थी। अचानक उठ खड़ी हो, वह दौड़ती हुई गिरजाघर से भाग गयी।

गीत ख़त्म होने के बाद ऐबट ने उन सभी घुमक्कड़ों की आत्माओं की शान्ति के लिए प्रार्थनाएँ कीं जो विदेश चले गये थे और अब कभी भी अपने खेत जोतने, अपने बाग़ों की देखभाल करने, बैलों को पानी पिलाने नहीं लौटनेवाले थे। प्रार्थना व प्रवचन समाप्त करने के बाद वह फ़ौरन गिरजाघर से रवाना हो गया।

गाँव का पुजारी उसके पीछे-पीछे आ पहुँचा। "फ़ादर," उसने कहा, उसकी आँखें सिकुड़ आयी थीं, "क्या गिरजाघर में किसी को गीत गाने की अनुमति है?"

"परमात्मा का सब कुछ आदमी का है और जो कुछ आदमी का है, वह सब परमात्मा का है," कोमितास ने जवाब दिया। वह अच्छी तरह जानता था कि पुजारी शीघ्र ही इस घटना का पूरा विवरण आर्कबिशप के पास भेज देगा।

कोमितास ने किसानों से विदा ली। फिर लगाम हाथ में ले वह पत्थर-वाले मकान की ओर बढ़ गया।

सड़क के किनारे वृद्धा उसका इन्तज़ार कर रही थी। ख़ामोशी से चलते हुए वे मोड़ पर जा पहुँचे।

"एरीकनाज़ सोते पर गयी है। वह बोली, 'मैं पानी ले आऊँ जिससे कि किसी घुमक्कड़ को ठण्डा पानी पेश कर सकूँ'।" अचानक वृद्धा कह उठी।

कोमितास को गले में कुछ अटकता महसूस हुआ। उसे बोलने को शब्द नहीं मिल रहे थे। वृद्धा की आँखें भर आयी थीं। झुर्रीदार पलकों पर दमकने के बाद आँसू धीमे-धीमे उसके गालों पर लुढ़क आये।

"विदेश में उसकी क़ब्र आरामदेह हो," वृद्धा फुसफुसायी और विदा का कोई शब्द कहे बिना घर की ओर मुड़ गयी।

उसकी झुकी आकृति की ओर देखता कोमितास मोड़ पर खड़ा था। उसके पैवन्द लगे स्कर्ट के किनारे ज़मीन से रगड़ खा रहे थे और हलकी

धूल उड़ चलती। वह निस्पन्द वहीं खड़ा था और एक करुण स्वर उसके अन्दर ही अन्दर गा रहा था:

"मटकी ले पनिया भरन को गयी,
न मिला प्रियतम उसे, न मिला..."

वह गीत कहाँ जन्मा था? कहाँ उसने पहले यह गीत सुना था? सब कहीं किसी न किसी को प्रिय की तलाश रहती है, किसी को ख़ुशी हासिल होती, किसी को नहीं...

होवान्नेस तुमानियान

मेरा दोस्त नेसो

१

हम गाँव के बच्चे हमेशा साथ-साथ ख़ुश रहते थे।

हमारे लिए वहाँ न तो कोई स्कूल था, न पढ़ने को पाठ थे। हम पक्षियों की तरंह आज़ाद थे और दिन भर खेलते रहते थे। आह, क्या ख़ूब हम खेलते थे! हम कितने अच्छे दोस्त थे और एक-दूसरे को कितना प्यार करते थे! जब हमें भूख लगती, हम दौड़कर घर जाते और रोटी का टुकड़ा व घड़े में रखा पनीर लेकर खा लेते। फिर बाहर दौड़ पड़ते। कभी-कभी हम शाम के समय एकत्र होकर बातें करते और कहानियाँ कहते।

एक लड़के का नाम नेसो था। वह बहुत-सी कहानियाँ व परीकथाएँ जानता था और उन कहानियों का कोई अन्त न होता!

गर्मियों में हम चाँदनी रात में अपने प्रांगण में लकड़ी के कुन्दों के ढेर पर घेरा बनाकर बैठ जाते और मन्त्रमुग्ध दृष्टि से नेसो के चेहरे की ओर देखते रहते। नयी-नयी कल्पनाएँ उसे सुन्दर बना देती थीं। वह हमें गुरी पेरी के बारे में, स्वर्ग में रहनेवाले पक्षी के बारे में और अन्धेरे व उजाले के राज्यों के बारे में कहानियाँ सुनाया करता...

"आओ नेसो, हमें एक और कहानी सुनाओ। अन्धे राजा के बारे में तोते के बारे में और गंजे आदमी व दाढ़ी रहित आदमी के बारे में..."

२

एक दिन हमारे गाँव में एक स्कूल खुल गया। बीस या तीस अन्य लड़कों की तरह मुझे भी स्कूल में दाखिल करा दिया गया

वहाँ पढ़ाई के लिए साल में तीन रूबल देने पड़ते थे, इसी कारण गाँव के बहुत से ऐसे लड़के जिनके माँ-बाप फ़ीस नहीं दे सकते थे, स्कूल में दाखिल नहीं हो सके। नेसो सहित मेरे अधिकतर मित्र स्कूल में दाखिला नहीं ले सके।

जीवन में हमें पहली बार अलग होना पड़ रहा था और हमें एक दूसरे से अलग करनेवाले थे स्कूल व अध्यापक। हम पहली बार यह समझने को बाध्य हुए थे कि हममें से कुछ अमीर थे, कुछ ग़रीब। मुझे आज भी धूल में लोटकर क्रन्दन करते नेसो की आवाज़ सुनाई देती है:

"मैं भी स्कूल जाना चाहता हूँ! .."

मुझे आज भी उसके पिता की चीखती आवाज़ सुनाई देती है:

"भगवान के लिए, क्या तुम समझ नहीं सकते! मेरे पास पैसे नहीं हैं! अगर मेरे पास तीन रूबल होते, तो क्या मैं अनाज न ख़रीद लेता जिससे तुम लोगों को भूखे नहीं रहना पड़ता। मेरे पास पैसे ही नहीं हैं!"

नेसो तथा दूसरे लड़के जो स्कूल में दाख़िला नहीं ले पाये थे, वे दरवाज़े के पास भीड़ लगाकर जमा हो जाते और हम लोगों को देखने के लिए झाँकते। लेकिन अध्यापक उन्हें अन्दर नहीं आने देते। वह उन्हें दूर खदेड़ देते। विश्राम के समय भी वह हमें साथ-साथ नहीं खेलने देते। उनका कहना था, स्कूली लड़कों का बाहरी लड़कों से कोई मतलब नहीं। मेरे दोस्त चले जाते और स्कूल के बाहर बैठकर हमारी प्रतीक्षा छुट्टी तक करते। फिर हम साथ-साथ घर लौटते।

धीरे-धीरे उस एक साल में स्कूल में मेरे नये-नये दोस्त बन गये। साल ख़त्म होते-होते, नेसो व दूसरे लड़के जो स्कूल में दाख़िला नहीं ले पाये थे, अब स्कूल के बाहर हमारी प्रतीक्षा नहीं करते थे।

३

मैं दो साल तक गाँव के स्कूल में पढ़ता रहा। फिर मेरे पिताजी मुझे निकटवर्ती छोटे-से शहर ले गये और मेरा नाम वहाँ एक माध्यमिक स्कूल में लिखा दिया। मेरे लिए यह एक नयी दुनिया थी। यहाँ सभी मकान सफ़ेद थे और उनकी छतें लाल थीं और शहर में रहनेवाले सभी लोग सुन्दर, स्वच्छ कपड़े पहनते थे। स्कूल भी बड़ा व ख़ूबसूरत था और यहाँ

गाँव के स्कूल की तरह एक नहीं, कई अध्यापक थे। एक महिला अध्यापिका भी थी। मेरे लिए यह एक सुखद आश्चर्य था।

नये वातावरण व स्कूल के अनुरूप ही मेरे कपड़ों में भी परिवर्त्तन आ गया। अब मैं सुन्दर, स्वच्छ, शहरी स्कूल की पोशाक पहनता था। इस प्रकार, इस कायापलट के साथ मैं छुट्टियाँ बिताने अपने गाँव आया। जब नेसो व मेरे दूसरे पुराने दोस्तों को मेरे घर आने की बात मालूम हुई, वे सुबह-सवेरे मेरे घर के पास जमा हो झाँकने की कोशिश करने लगे। मैं उनका अभिवादन करने बाहर निकल आया। मुझे नहीं मालूम कि हमने आपस में क्या-क्या बातें कीं लेकिन मुझे इतना ज़रूर याद है कि हमारे बीच पहले जैसा दोस्ताना भाव नहीं रह गया था। जिस चीज़ पर सबसे पहले उनकी नज़र पड़ी थी, वह थी मेरी स्कूली पोशाक। मेरी स्कूली पोशाक की ओर कटाक्ष करते हुए नेसो बोला:

"लगता है, तेरा तो बाना ही बदल गया।"

सब हँस पड़े। मुझे बुरा तो लगा लेकिन मैं कुछ बोला नहीं। फिर नेसो ने जाकिट को छूकर देखा और उसके बाद बारी-बारी से सबने। कपड़ा के बेहद मुलायम होने से वे सब चकित थे। और सच में तभी पहली दफ़ा मैंने उनके कपड़ों की ओर देखा, उनके कपड़े कितने गन्दे व फटे-चिटे थे। दरअसल, सारा गाँव मुझे दीन-हीन व गन्दा प्रतीत हुआ।

४

दो साल बाद मेरे पिताजी ने मुझे एक बड़े शहर में ले जाकर पहले से भी बड़े स्कूल में दाख़िला दिला दिया। जब मैं वहाँ से लौटा, मेरे पहले के खेल के साथी जो अब बड़े हो चुके थे, मुझसे मिलने आये। दूसरे किसानों की तरह ही उन्होंने मेरा अभिवादन किया और उन्हीं किसानों की तरह मेरे प्रति सम्मान जताते हुए वे एक ओर खड़े हो गये। हमारी बातचीत शुरू हुई और सिर्फ़ एक बार जब किसी ने पूछा कि क्या मुझे गाँव के स्कूल में साथ-साथ बिताये दिन कभी याद आते थे, तो नेसो बोला:

"क्या तुम्हें याद है, हम किस तरह तुम्हारे प्रांगण में लकड़ी के कुन्दों पर बैठकर रात में कहानियाँ कहते थे?.."

"मैं वह कभी भूल सकता हूँ भला! वह मेरी एक सुखदतम स्मृति है।" मैंने जवाब दिया। मुझे लगा, नेसो खुश हो उठा लेकिन इसके बावजूद हमारे बीच किसी अजनबी जैसी दूरी बनी रही।

जब मेरे शहर लौटने का समय आया, पिताजी ने नेसो के पिता से एक घोड़ा किराये पर ले लिया। नेसो को घोड़े के साथ पैदल जाना था। जब हम रवाना हुए, मैं घोड़े पर सवार था और वह अपने फटे-चिटे कपड़ों व जीर्ण-शीर्ण सैण्डिलों में पैदल चल रहा था। मुझे बड़ा दुखद लगा। जब हमने थोड़ी दूरी तय कर ली, मैंने कहा कि मुझे पैदल चलने की इच्छा है और मैं घोड़े से नीचे उतर आया। कभी साथ-साथ चलते, कभी बारी-बारी से घोड़े पर सवार होते, हम अपना सफ़र तय करते रहे। नेसो खुश था लेकिन मुझे महसूस हुआ, वह मेरी औचित्य व मित्रता की भावनाओं को समझ नहीं रहा था बल्कि पैदल चलने के कारण मुझे मूर्ख मान रहा था। मुझे ठेस-सी लगी लेकिन अभी तो और भी बुरा होना बदा था।

कुछ खाने के लिए हम रास्ते में रुके। तरबूज़ काटने के लिए मैंने नेसो को अपना जेबी चाकू दे दिया। और तब जब हम दुबारा चलने को हुए मैंने देखा चाकू ग़ायब था। नेसो ने क़सम खाते हुए कहा कि चाकू उसने लौटा दिया था और मैंने जेब में रख लिया था। हालाँकि मैं अच्छी तरह जानता था कि चाकू उसने नहीं लौटाया था, मैंने फिर भी अपनी जेबों की तलाशी ली। खैर, हम फिर चल पड़े। ज़ाहिर था, चाकू उसने छुपा लिया था और बाद में वही चाकू लोगों ने उसके पास देखा भी। जब हम दुबारा चले, मेरे हृदय में तेज़ टीस उठ रही थी—चाकू के लिए नहीं बल्कि उससे कहीं बड़े नुक़सान के लिए जिसे मेरा हमराही अपनी नादानी के कारण समझ नहीं पा रहा था...

जब हम अपनी मंज़िल पर पहुँच गये और नेसो लौटने को हुआ, मैंने जाकिट के लिए सूती कपड़ा ख़रीदकर उसे उपहारस्वरूप दिया। जब मैंने घोड़े का किराया भी अदा कर दिया, वह सलाम बजाते हुए बोला:

"क्या तुम मुझे बख़्शिश नहीं दोगे?"

मै बुरी तरह परेशान हो उठा। मैं ने बख़्शिश भी दे दी। और तब से जब कभी मैं अपने बचपन के दिन याद करता, जब कभी चाँदनी रातों में कुन्दों पर बैठकर नेसो से कहानियाँ सुनने की बातें याद करता, मेरा हृदय वेदना एवं करुणा से भर उठता।

५

"नेसो ग़रीब है... नेसो अनपढ़ है... नेसो गाँव के निर्धन जीवन से उत्पीड़ित है... अगर उसे पढ़ने का मौक़ा मिला होता, अगर उसका लालन-पालन ठीक से किया जाता, वह मुझसे भी कहीं बढ़-चढ़कर निकलता।"

अब जब कभी मैं नेसो के बारे में सोचता हूँ, अपने हृदय को इन्हीं बातों से सान्त्वना देता हूँ, मैं अपनी आँखों में उसे ऊपर उठाना चाहता हूँ और उससे उसी तरह स्नेह करना चाहता हूँ जिस तरह कभी बचपन में करता था। मैं चाहता हूँ, नेसो मुझे हमेशा उसी रूप में याद आये, जिस रूप में मैं उसे उन शान्त, तारों भरी चाँदनी रातों में देखा करता था। लेकिन मुझे यह असम्भव प्रतीत होता है, मैं ऐसा नहीं कर पाता। तत्क्षण ही मेरी आँखों के सामने एक और तस्वीर आ जाती है जो लज्जा-जनक तथा पीड़ादायक है।

अपनी शिक्षा पूरी करने और दुनिया में अपने लिए एक स्थान बनाने के बाद मैं फिर अपने गाँव में लौटा। उस दिन गाँव का चौक लोगों की भीड़ व शोर-शराबे से भरा था। चौक के बीच में एक खम्भे से बँधा नेसो खड़ा था। उसका सिर शर्म से झुका था।

मुझे बताया गया, उसे चोरी करने के अपराध में सज़ा दी जा रही थी। मैंने उसे माफ़ी देने को कहा और उसे छोड़ दिया गया। लेकिन मेरे मन की आँखों में वह आज भी खम्भे से बँधा, चिलचिलाती धूप में खड़ा दिखाई देता। लोगों के शोर के बीच उसका झुका सिर होता...

हमारे गाँव में चोरी व कोड़ों की मार आम बात थी लेकिन मैं इस घटना को भूल नहीं सकता और न ही मैं उस नेसो को भूल सकता हूँ जो चाँदनी रातों में कुन्दों पर बैठकर कहानियाँ सुनाता था। नेसो कितना निश्छल, कितना मृदुल था, मेरे बचपन का दोस्त...

१९१४

स्तेफ़ान ज़ोरियान

पुस्तकालयवाली लड़की

कहानी एक माँ की ज़बानी

१

हमारा शहर बहुत बड़ा तो नहीं लेकिन हाँ, ख़ूबसूरत ज़रूर है। इसके सीमान्त में वन और ऊँचे पर्वतवलय हैं। पर्वत कुक्षिकाओं से कल कल करती लघु सरिताएँ नीचे की ओर दौड़ती हैं। रात में जब सारा शहर सोता हो, झरनों का क्वणन तथा आस्फालन सुना जा सकता है। फिर अपनी सीटी से आसमान फाड़ती ट्रेन खड़-खड़ करती शहर को जाती है—अपने गर्जन से वन-पर्वतों को भरती, दूसरी सभी आवाज़ों को ख़ामोश करती। हमारा शहर सचमुच प्यारा है! हर घर के सामने बाग़ और हर आँगन में कुआँ है। पास-पड़ोस के सभी क़स्बों व गाँवों से किसान अपने उत्पाद शहर लाते हैं। जितना चाहो, दूध मिल जाता है और अंडे बहुत सस्ते हैं। जाड़ा अल्पकालिक होता है तो गर्मियाँ सुखद—ठंडी बयार हमेशा बहती रहती है। हाँ, वर्षा अक्सर हो जाती है लेकिन सूरज निकल आने पर आपको स्वर्ग-सा महसूस होगा। थोड़े में कहूँ तो हमारे शहर की तुलना में येरेवान कुछ भी नहीं!

आप पूछ सकते हैं, हमारा शहर इतना ज़्यादा बढ़कर है तो मैं येरेवान क्यों आन बसी हूँ? लेकिन क्या कहूँ, अगर इसका फ़ैसला मुझपर होता, मैं वहाँ से हिलती भी नहीं। इस सम्बन्ध में मेरी लड़की ने मुझसे पूछा था:

"तुम मेरे साथ क्यों नहीं रहना चाहती हो?"

मुझे क्या करना चाहिए था? इस संसार में मेरे लिए वही सब कुछ है, मेरी इकलौती लाड़ली, मेरी एकमात्र ख़ुशी। मैं कपड़े धोने का काम किया करती थी लेकिन किसी तरह उसे पाल-पोसकर स्कूल भेजने में सफल

रही। क्या अब मैं उससे सम्बन्ध त्यागकर उसे अकेली छोड़ दे सकती हूँ? "इतनी दूर-दूर हमारा अलग-अलग रहना ठीक नहीं," मैंने मन में कहा और फिर उससे सहमत हो गयी। अगर मेरा बेटा येर्वाण्ड ज़िन्दा होता, मैं शायद यहीं रहती लेकिन जो वह लड़ाई में गया तो फिर उसकी कोई ख़बर ही नहीं मिली। मुझे उस समय बड़ी ख़ुशी हुई थी जब मेरा इकलौता बेटा होने के कारण उसे पहले साल फ़ौज में न जाने की अनुमति मिल गयी थी। लेकिन फिर हमारे मकानदार मिखाक और पादरी का बेटा अटार्नी वगार्शाक ने उसे सेना में भरती कराके ही चैन की साँस ली।

"तुम्हें देश को बचाना है," उन्होंने उससे कहा।

"अगर मैं भरती हो जाता हूँ तो मेरी माँ और बहन की देखभाल कौन करेगा?" येर्वाण्ड बोला।

लेकिन उनके पास जवाब तैयार था।

"भगवान भला करे, तुम्हारी माँ अभी तक कपड़े धोने का काम कर सकती है। वह अपना और तुम्हारी बहन का भरण-पोषण कर लेगी। और अगर उन्हें कभी ज़रूरत पड़ी ही तो हमें उनकी मदद करके हमेशा ख़ुशी होगी। ज़रा ख़ुद ही सोचो, तुम्हारे जैसा स्वस्थ, हट्टा-कट्टा आदमी ऐसे समय में निठल्ला घूम रहा है जब कि हर नौजवान आर्मीनियाई जनता की रक्षा के लिए लड़ने को इच्छुक है। क्या तुम्हें लाज नहीं आती?"

उनकी मलामतों और सतानेवाली बातों से आजिज़ हो बेचारा लड़का जाकर सेना में भरती हो गया। जो वह गया, सो फिर लौटकर नहीं आया... इस सम्बन्ध में बात करने से भी मुझे पीड़ा होती है!

बेटे के जाने के बाद मैं अपनी बेटी के साथ अकेली रह गयी। मकानदार मिखाक के मकान में ही एक कमरा हम लोगों का था। वह एक अमीर व्यापारी था। और अपनी दूकान के लिए गाड़ी भर-भरकर कपड़े तिफ़लिस से मँगाया करता था। शहर के अधिकाँश प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ उसके मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे। मिखाक को आप हमेशा कलफ़ लगी क़मीज़, टोप और अभी-अभी दरज़ी के यहाँ से सिलकर आया हो इस तरह एकदम साफ़-सुथरे सूट में ही देखेंगे। वह शहर का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था। लड़ाई के समय वह सेना में स्वयंसेवकों को भरती करनेवाली तथा युद्धकोषों की अनेकानक संचालन समितियों का सदस्य था। अपनी बीवी लीज़ा व बेटियों आनिया तथा सोनिया के साथ मिखाक मकान

के ऊपरवाले हिस्से में रहता था। मैं अपनी बेटी विक्टोरिया के साथ नीचे, तहखाने में रहा करती थी। तहखाने का अधिकाँश हिस्सा ईंधन की लकड़ियों व जाड़े के लिए खाने-पीने के सामानों से भरा रहता था। हमारे पास एक छोटा-सा कमरा था, इसकी छत नीची और दीवारों पर सफ़ेदी की हुई थी। फ़र्श ईंटों का था और दो ऐसी छोटी-छोटी खिड़कियाँ थीं जिन से सड़क पर आते-जाते लोगों के पांव दिखाई देते रहते थे। कमरे के लिए मैं उन्हें दो रूबल तो देती ही थी, साथ में हर हफ़्ते उनके परिवार के कपड़े भी धो देती थी।

तो इस तरह हमारी ज़िन्दगी कट रही थी। मैं दिन में अलग-अलग परिवारों के कपड़े धोती और विक्टोरिया स्कूल जाती। मैं ख़ुद तो अनपढ़ थी लेकिन जो जानते थे," वे मेरी बेटी को मेधावी छात्रा बताते। मिखाक और उसकी बीवी की तरह दूसरे लोग भी थे जो कहते, "उसे तुम स्कूल काहे को भेजती हो? तुम्हारे पास इसके लिए पैसे कहाँ हैं? तुम्हारी मदद करे यही अच्छा होगा।"

लेकिन मैं उन की बातें इस कान से सुनती, दूसरे से निकाल देती। मैं उसे हर हालत में स्कूल भेजते रहना चाहती थी। इसके लिए जरूरत पड़ने पर मैं उपवास भी करने को तैयार थी—आख़िर वही तो मेरी सब कुछ थी... येर्वाण्ड जब लड़ाई में मारा जा चुका था, विक्टोरिया ने स्कूल की पढ़ाई पूरी की। मैंने उसे पुस्तकालय में नौकरी देने की अभ्यर्थना की। उसका काम आसान और अच्छा था। वह किताबों की जाँच करती और जिन किताबों की जिल्द फटी होती, उनपर नयी जिल्द लगाती, चिपकाती। अक्सर घर पर रात में किताबें भी ख़ूब पढ़ती रहती।

"आओ, विक्टोरिया, हम कुछ खा लें," मैं कहती।

"एक मिनट। बस एक ही पृष्ठ बच रहा है..."

जब वह सस्वर पढ़ती, बड़ा प्यारा लगता—गिरजाघर में पादरी के प्रवचन की तरह। कभी-कभी वह पढ़ी किताबों के बारे में बातें छेड़ देती और मुझे उनके लेखकों के बारे में बताती।

"इसको लिखनेवाला सीधे-सादे, मामूली लोगों का बेटा था, फिर भी कितनी मोहक है यह पुस्तक!" वह कहती।

विक्टोरिया आर्मीनियाई और रूसी, दोनों पढ़ सकती थी। वह मुझे दूसरी जगहों पर रहनेवाले लोगों और इस बारे में बताया करती कि कैसे

मुट्ठी भर लोग अमीर होते जा रहे थे जबकि दूसरों को ग़रीबी के कारण परेशान होना पड़ रहा था। जितना कुछ वह बताती, उसमें अधिकांश मेरी समझ में नहीं आ पाता। विक्टोरिया को बड़े नगरों और भविष्य में जीवन कैसा होगा, इस सम्बन्ध में बातें करना बहुत अच्छा लगता। मैं ध्यान से सुनती रहती और कहती "क्या लाभ, जब हम यह सब अपनी आँखों से नहीं देख सकेंगे!"

"नहीं, मम्मी, हम ज़रूर देखेंगे..."

उसी समय हमें मालूम हुआ, ज़ार को गद्दी से उतार दिया गया है। क्या हँसी-ख़ुशी मची थी! सब कहीं लाल ही लाल झंडे दिखाई दे रहे थे। कई दिनों तक सड़कें लोगों से भरी रहीं। भाषण हुए, लोगों ने ठहाके लगाये, नारे बुलन्द किये:

"इनक़लाब ज़िन्दाबाद!" "इनक़लाब" का मतलब तो मैं नहीं जानती थी लेकिन मुझे महसूस हुआ, उनकी ख़ुशी ज़्यादा दिनों तक बरक़रार रहनेवाली नहीं, भला ज़ार के बिना कहीं देश बच पायेगा! कई दिनों बाद तिफ़लिस से गइक अज़ातियान आये और उनका भाषण हुआ। बड़ा विलक्षणकारी भाषण था! उन्होंने कहा, हमें पुराने पदाधिकारियों, प्रमुखों, मेयरों की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वे ज़ार के पिछलग्गू थे और उन्हें उनके ओहदों से हटा देना था... उसके ठीक बाद ही पुलिस चीफ़ को गिरफ़्तार कर लिया गया; जज और वन अधिकारी भाग खड़े हुए; पहरेदारों के बिल्ले उखाड़ फेंके गये और कुछ को तो पिटाई भी हुई।

यह सब मेरी आँखों देखी बातें हैं। मुझे हैरानी होती, आख़िर पहरेदारों से उनकी क्या दुश्मनी थी? उन्हें क्यों दोष दिया जा रहा था?

"यह तो एकदम वाजिब है, मम्मी," विक्टोरिया बोली, "क्योंकि वे ज़ार के हाथ बिके हैं।"

उसके थोड़े समय बाद ही बैठकें शुरू हुईं। मेरी लड़की को तो जैसे दम लेने की भी फ़ुरसत न थी। दिन में पुस्तकालय का काम था, शाम में बैठकें और रात में पुस्तकें एवं अख़बार।

"ज़रा मेरी भी तो सुनो, बेटी," मैं उससे कहती। "तुम स्कूल की पढ़ाई पूरी कर चुकी हो। फिर तुम्हें जीवन भर पढ़ते रहने की क्या ज़रूरत? तुम अपनी आँखें ख़राब कर लोगी।"

"अरी, मम्मी, तुम नहीं समझती! अभी तो मुझे बहुत कुछ पढ़ना है। विश्वविद्यालयों में पढ़ने लोग पीटर्सबुर्ग और मास्को जाते हैं। कम से कम मैं घर पर तो पढ़ने की कोशिश कर सकती हूँ।"

"आँखों की रोशनी गँवा दोगी और दिमाग़ भी चल जायेगा।"

लेकिन वह मेरी बात कब सुनती? सोने भी जाती तो अक्सर हाथ में किताब लिये।

कभी-कभी मैं क्रुद्ध हो उठती। "अगर तुम्हें आँखों की रोशनी गँवा देने की परवाह नहीं तो कम से कम तेल की तो बचत किया करो। यह महँगा हो गया है।"

लेकिन वह जवाब देती, "मेरी फ़िक्र न करो ,मम्मी। लैम्प के लिए मैं और तेल ख़रीद दूँगी। कल मुझे एक बैठक में बोलना है, इसलिए मुझे कुछ नोट करना है।"

"किस काम की हैं वे बैठकें? अपना समय बिताने का क्या यही तरीक़ा है? मिखाक की बेटियों को देखो। अगर उन बैठकों से कोई लाभ होने को होता तो मकानदार की बेटियाँ ज़रूर जातीं। वे तुमसे ज्यादा पढ़ी-लिखी हैं, उन्हें तो मालूम होगा न।"

"मेहरबानी करके, उनका उदाहरण न दो। उनका दिमाग़ बस कपड़ों और गपबाज़ी में ही चलता है।"

वह सच कह रही थी। दोनों नवयुवतियाँ हर दिन गुड़ियों की तरह सज-धजकर थिएटर, क्लब या रेलवे स्टेशन जा पहुँचतीं। अपनी छतरियाँ लिये वे दिन भर इधर से उधर मटरगश्ती करती फिरतीं।

"तो क्या? कम से कम उन्होंने तुम्हारे जैसे बाल तो नहीं कटाये और न ही बैठकों के पीछे भागती फिरती हैं।"

"मुझे बड़े-बड़े बालों की क्या ज़रूरत? मुझे उनके जैसे शौहर ढूँढ़ने का भूत सवार नहीं।"

"देखो भई, लड़की को शौहर ढूँढ़ने में रुचि तो रखनी ही चाहिए। और तुम्हारे साथ-साथ फिरनेवाले वे लड़के कौन हैं?"

"मेरे कॉमरेड।"

"दोस्ती तुम्हें लड़कियों से करनी चाहिए, नौजवानों से नहीं, विक्टोरिया।"

"ओह, प्यारी मम्मी! बस तुम कुछ समझ नहीं पाती!"

उसमें क्या शक था। दिन तेज़ी से गुज़रते जा रहे थे, विक्टोरिया पुस्तकालय में, बैठकों में और फिर पुस्तकों के अध्ययन में व्यस्त रहती। पड़ोस की औरतें मेरे पास रुककर बताती रहतीं कि तुम्हारी बेटी ने आज यहाँ, कल वहाँ भाषण किया है। मुझे तो लगता, मैं पागल ही हो जाऊँगी। "लड़की एकदम ही हाथ से बाहर हो गयी है," मैं सोचती। "मुझे उसके साथ ज्यादा सख़्ती बरतनी चाहिए।" मकानदार भी कठोर शब्द कहने से नहीं चूकता।

"तुम्हारी लड़की के दिमाग़ के कुछ पेंच ढीले हैं।"

"क्या उससे कोई ग़लती हुई है?"

"उसे सिर चढ़ाकर बिगाड़ दिया गया है। वह हर चीज़ में दख़ल देती है। बड़े-बुज़ुर्गों से बहस करती है।"

"उसकी उम्र ही ऐसी है। क्या किया जा सकता है। अगर उसे बात बहस पसन्द है तो कर लेने दो। आख़िर औरों की तरह वह रातों में बाहर तो नहीं रहती।"

"न ही करे तो अच्छा! तुम एक ग़रीब औरत हो, तुम्हारी बेटी को शालीन होना चाहिए!"

मैं साफ़ देख रही थी, वह किसी बात से परेशान था लेकिन मैं कुछ भी न बोली। उसी शाम विक्टोरिया ने बताया, किसी बैठक में उसने मिखाक को बुर्जुआ कहा था।

"अरे, नहीं, नहीं! काश, मेरी मौत आती! तुमने हिम्मत कैसे की? तुम अपने को सोचती क्या हो? क्या लोगों को तुम्हारे ख़ानदान का अता-पता नहीं? तुम चाहती हो, वह हमें अपने घर से खदेड़ दें?"

"वह कभी ऐसी हिमाक़त नहीं करेगा! और अगर वह ऐसा करे भी तो क्या? ऐसे कमरे बहुत से हैं।"

वह बहुत ऊँचे स्वर में बोल रही थी।

"चुप भी रहो," मैंने चिरौरी की। "ऊपर से तुम्हारी बात सुन लेंगे। हमें अपमानित होना पड़ेगा।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा। लेकिन हाँ, वह ज़रूर मुसीबत में पड़ सकता है।"

"उसने किया क्या है? मिखाक जैसा अच्छा आदमी शहर में दूसरा नहीं।"

"हूँ-हूँ—बड़ा ही अच्छा, जमा हुआ—बेशक! दुकान में अपने दोनों सहायकों को वह कानी कौड़ी भी नहीं देता। इसके अलावा, स्कूल का न्यासी भी है। चार महीनों तक शिक्षकों का वेतन रोककर उन पैसों से अमीर बनने के लिए वह सामान ख़रीदता रहा।"

"तो क्या? शायद उसे पैसों की ज़रूरत रही होगी। आख़िर में उसने उन्हें पैसे दिये या नहीं?"

"बोलने से क्या फ़ायदा? तुम बस समझती नहीं हो।"

"उसे अहित के रास्ते पर बढ़ने से कैसे रोकूँ?" मैं सोचा करती। "उसे मैं सीधे, सधे-बँधे रास्ते पर कैसे वापस लाऊँ?"

सब बेकार। मैं कपड़े धोने का काम करती रही और वह अपने पुस्तकालय में, जिससे जी आये, बहस करती।

उससे कोई छोटा-मोटा काम करने के लिए कहने और वह क्या कर रही है, यह देखने मैं पुस्तकालय के पास इधर-उधर जाती रुक जाती। आम तौर से वह किताबों की जाँच-पड़ताल में व्यस्त रहती लेकिन कभी-कभी जवान लड़कों या लड़कियों से बातें करती भी दिख जाती। वह उनसे किसी पुस्तक के अर्थ के बारे में बातें कर रही होती और हरेक से बातें करने का उसका अलग-अलग ढंग था... वह बड़े-बुज़ुर्गों से, स्कूल अध्यापकों तक से बहस करती—ऐसी बातों के सम्बन्ध में जैसी कि मेरी तरह अनपढ़ औरत ने कभी सुनी भी न हो। एक बात पक्की थी: हमेशा उसी का पलड़ा भारी रहता। "कैसी लड़की है!" मैं दहशत से सोचा करती। "अपने अध्यापकों की मौजूदगी में भी उसे क़तई संकोच महसूस नहीं होता!" मैं शर्म से पानी-पानी हो जाती लेकिन वह नहीं।

"तुम्हारी लड़की बड़ी बहादुर है। वह सच्ची बोल्शेविक है," एक दिन पुस्तकालय में जब मैं उन्हें बोलते सुन रही थी, एक अध्यापक ने मुझसे कहा। "हम उसके विचार नहीं बदल सकते।"

मैं बोल्शेविकों के बारे में पहले भी सुन चुकी थी लेकिन सच कहूँ तो, वे कौन थे, मुझे नहीं मालूम था। इस बार हिम्मत करके मैंने पूछ ही लिया।

"बोल्शेविक कौन होते हैं?"

"तुम्हारी बेटी जैसे लोग और क्या," उसने कहा।

ज़ार की जगह किसी तरह की असेम्बली के चुने जाने की ख़बर जल्दी ही फैल गयी हालाँकि कुछ लोग नये ज़ार के निर्वाचित किये जाने की बात भी कह रहे थे। विक्टोरिया ने मुझे बताया कि न तो नया, न पुराना ज़ार होने जा रहा है बल्कि उसकी जगह एक असेम्बली होगी। यही देश का शासन चलायेगी। बस कुछ ही दिनों बाद चुनाव होनेवाले थे। हमारी सड़कों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगा दिये गये थे जिनमें हर किसी से मतदान के लिए कहा गया था। इस काम में विक्टोरिया ने भी हाथ बँटाया। वह अभी भी बैठकों में जाती रहती और मतदाताओं को काग़ज़ बाँटती। संक्षेप में, वह दिन भर व्यस्त रहती। मिखाक की बीवी लीज़ा ने मुझसे पूछा, "तुम किसे वोट देने जा रही हो, अन्ना?"

"मुझे क्या मालूम? मेरे बिना ही काम चला लेंगे," मैंने जवाब दिया।

"ग़लत बात है। मेरे ख़्याल से तुम्हें ज़रूर वोट देना चाहिए। किस नम्बर को तुम वोट देनेवाली हो?"

"मैं तो जानती नहीं। विक्टोरिया ने मुझसे नम्बर ५ को वोट देने कहा है।"

"अरे, नहीं। मेरे ख़्याल से तो तुम्हें उस नम्बर पर वोट नहीं देना चाहिए। वोट देना है तो नम्बर ४ को। केवल यही सच्चा है। बाक़ी सब जाली नम्बर हैं।"

विक्टोरिया के घर आने पर मैंने उसे इस बातचीत के बारे में बता दिया।

"उसकी बातों पर कोई कान न दो," वह ग़ुस्से से बोल उठी। "वह और उसके पति जाली हैं। उनका नम्बर भी जाली है!"

फिर वह मुझे नम्बर ५ को क्यों वोट दिया जाये, यह समझाने लगी। उसने मुझे एक काग़ज़ देकर कहा कि इसे ही मतदान पेटी में डालना है।

चुनाववाले दिन मैं स्कूल के मकान की ओर चल पड़ी। दीवार में कील से ठोककर पाँच पेटियाँ रखी थीं। उनकी बग़ल में पाँच लोग बैठे थे और आस-पास बड़ी भीड़ जमा थी। हमारा मकानदार भी वहीं था।

"तो तुम भी वोट देने आयी हो, अन्ना," वह बोला। "किस पेटी में अपना मत का काग़ज़ डालोगी?"

मैंने अपने हाथवाला नम्बर उसे दिखा दिया। उस काग़ज़ को लेकर उसने कुचल डाला।

"वह बेकार है! तुम्हारे काम का यह रहा।"

चूँकि हमारे इर्द-गिर्द बहुत से लोग थे इस लिए मैंने यह बताना उचित नहीं समझा कि वह काग़ज़ मुझे विक्टोरिया ने दिया था। "क्या फ़र्क़ है?" मैंने मन में कहा। "बस इसे पेटी में डालकर जितनी जल्दी हो सके, यहाँ से निकल जाऊँगी।"

जब विक्टोरिया को इसका पता चला, वह बहुत क्षुब्ध हुई। "क्या तुम्हें मालूम है, तुमने क्या किया है? तुमने अपने दुश्मन को वोट दिया है। अपने फ़ायदे की बात भी तुम्हें नहीं मालूम।"

"कैसा दुश्मन? तुमने पेटी में काग़ज़ गिराने कहा था, सो मैं गिरा आयी।"

"तुम्हें ऐसे आदमी को वोट देना चाहिए था जो दिल से तुम्हारा हित चाहनेवाला, तुम्हारे हितों का रखवाला हो।"

"भगवान ने मेरे एकमात्र रखवाले को मुझसे उसी दिन छीन लिया जिस दिन येर्वाण्ड मारा गया था। अब मेरे हितों को दिल में रखनेवाला कौन होगा? कौन मेरी रक्षा करेगा?"

"तुम ग़लत कह रही हो। नम्बर ५ हमारी रक्षा करेगा।"

"मैं इस सब के बारे में कुछ भी नहीं जानती!"

"तो फिर जो जानते हैं, उनकी सलाह पर क्यों नहीं चलती?"

बात न मानने के कारण वह मुझसे नाराज़ हो गयी थी।

उस दिन से वह पौ फटते ही उठती और रेलवे स्टेशन की ओर भाग खड़ी होती। फिर जब लौटती, जल्दी-जल्दी चाय गटककर अफरा-तफरी में पुस्तकालय चली जाती।

"स्टेशन पर तुम क्या करती हो?" आख़िर मैंने पूछ लिया।

"पुस्तकालय के लिए पुस्तकें और अख़बार लाती हूँ।"

"तुम डाक से उन्हें पाती हो, तुमने एक बार मुझसे कहा नहीं था?"

"अब बहुत सारा रेल से हमें मिलता है।"

बहरहाल, मैंने देख लिया, जिन अख़बारों को वह स्टेशन से घर लाती थी, कभी पुस्तकालय नहीं ले जाती।

"तो उन्हें पुस्तकालय क्यों नहीं ले जाती?" एक बार मैं पूछ बैठी।

"ले जाऊँगी।"

प्राय: वह शाम की ट्रेन के समय भी स्टेशन चली जाती। और कभी-कभार अपने एक या दो कॉमरेडों के साथ लौटती।

"माँ, मैं तुम्हें अपने मित्रों से मिलाना चाहती हूँ।" इतना कहने के बाद वह आगे बोलती, "उनके पास ठहरने की कोई जगह नहीं। हमें आज रात उन्हें अपने यहाँ ठहराना होगा।"

मैं क्या कह सकती थी? उनके पास ठहरने की कोई जगह नहीं, यह तो मैं देख ही सकती थी। विक्टोरिया के दहेज़ के लिए रखे सामानों में से मैं कुछेक साफ़ सुथरे तकिये और चादरें निकाल लेती। "उन्हें भी आराम महसूस होना चाहिए," मैं मन में कहती। "आख़िर वे भी तो अपने माँ-बाप के बच्चे हैं और शायद उन्हें मुलायम तकियों पर सोने की आदत हो – चाहे आज की रात घर से दूर ही क्यों न हों।" नौजवान सोते और भोर होने से पहले ही चले जाते।

"कहाँ गये वे?" मैं बेटी से पूछती।

"पड़ोस के गाँव में।"

कुछ दिनों बाद काग़ज़ों का पुलिन्दा लिये यह या वह फिर आ पहुँचता। कभी-कभी विक्टोरिया उन्हें स्टेशन से लाये काग़ज़ देती। फिर वे कई-कई दिनों तक नहीं दिखाई देते। और हारकर जब मैं सोचने लगती कि उन्हें अब मैं कभी नहीं देख पाऊँगी, वे आन पहुँचते। शीघ्र ही, मैंने महसूस कर लिया, वे किसी गुप्त कार्य में व्यस्त हैं। वे एक-दूसरे से कानाफूसी में बातें करते, अंधेरा होने पर आते और सुबह से पहले रवाना हो जाते – पड़ोसियों के उठने से पहले।

कोई पीछा तो नहीं कर रहा, इसका यक़ीन करने के लिए वे हमेशा मुड़कर देखते।

"यह बात ज़रूर किसी मुसीबत में डालेगी," मैंने सोचा।

और मैंने कितना सही सोचा था।

२.

यह सारी घटना एक मई को हुई। सच कहूँ तो मुझे तनिक भी नहीं मालूम था कि पहली मई को भी कोई उत्सव होता है।

उस स्मरणीय सुबह, मज़दूरों के कपड़ों में दो नौजवानों ने आवाज़ लगायी। विक्टोरिया ने उनसे अन्दर आने के लिए कहा। उन्होंने किसी पताका के बारे में पूछा। मैं यह बताना तो भूल ही गयी कि कई दिन पहले वह एक लम्बा-चौड़ा लाल कपड़ा घर लायी थी। अगली दो संध्याएँ उसने उसी पर काम करते बितायी थीं—सफ़ेद कपड़े से अक्षर काट-काटकर वह उस लाल कपड़े पर उन्हें चिपकाती रही थी। अक्षर चिपकाने के बाद ये शब्द बन गये थे: "इनक़लाब ज़िन्दाबाद!" यह बड़ा आकर्षक था। लड़कों को पताका बड़ी रास आयी और उन्होंने कलाकारिता की प्रशंसा की।

जब कभी कोई प्रशंसा करता, विक्टोरिया लजा जाती। अभी भी वही हुआ। यह कहते हुए उसने उन्हें जल्दी ही चलता कर दिया, "हमें बात करने का समय नहीं। पताका ले जाओ लेकिन बिना खोले। यह ठीक रहेगा।"

लड़के पताका लपेटकर चलते बने।

"वे इसे किस लिए ले गये?"

"आज त्यौहार के लिए हमें इसकी ज़रूरत है।"

पहले दिन जब उसने पताका का काम शुरू किया था, मैं कुछ भी न बोली थी। मैंने सोचा, पुस्तकालय के लिए बना रही होगी क्योंकि ज़ार के गद्दी से उतारे जाने के बाद से दो बार वह पहले भी पुस्तकालय के लिए पताकाएँ बना चुकी थी। लेकिन इस बार तो लड़के, सच पूछिये तो चोरों की तरह छुपाकर ले गये थे। सो, मैंने जानना चाहा, आख़िर माजरा क्या है।

"मई दिवस कैसा त्यौहार है?"

"मई दिवस मेहनतकश लोगों का त्यौहार है। आज दुनिया भर के मज़दूर इसे मना रहे हैं। ठीक इस समय, इसी मिनट, यूरोप और अमरीका के सभी नगरों के मज़दूर एकत्र हो रहे हैं।"

"क्या हम लोगों के चर्च के कैलेण्डर में भी इसे कोई त्यौहार माना गया है?"

"साधु-सन्त इसे क्यों शामिल करने लगे? उनके कैलेण्डर के त्यौहार तो अनस्तित्ववान् साधु-सन्तों को समर्पित होते हैं। ऐसा वे लोगों को बेवक़ूफ़ बनाने के लिए, उन्हें जहालत में रखने के लिए करते हैं।"

"श्‌! पाप-वचन न बोल! और अनस्तित्ववान्‌ साधु-सन्तों से तुम्हारा क्या मतलब है? क्या तुम्हारे ख़्याल से साधु लोग मूरख हैं? क्या तुम्हारे ख़्याल से चर्च कैलेण्डर के लिए वे नाम गढ़ लेते हैं?"

"नहीं, वे मूरख नहीं, बहुत चालाक हैं। वे तुम्हारे जैसे लोगों को अन्धेरे में रखने के लिए उलझनों में डालते हैं जिससे तुम चर्च में जाती रहो, मोमबत्तियाँ जलाओ और साधुओं के हाथ चूमो, उन पर विश्वास करती रहो। वास्तव में साधु-सन्त जैसी कोई चीज़ ही नहीं। यह सब साधु-सन्तों की बस कपोल-कल्पना है।"

मुझे काटो तो ख़ून नहीं।

"चुप रह!" मैं चिल्लायी। "तेरे कारण हम सब पर भगवान का कोप होगा! वह हम पर क़हर ढायेगा!"

भयभीत हो मैंने सीने पर क्रॉस बनाया और वह मुझ पर हँस पड़ी।

"ओफ मम्मी! बेकार ग़ुस्सा होने में ताक़त न ख़र्च करो। वहाँ ऊपर न कोई भगवान है, न साधु-सन्त! हमारे ऊपर सिर्फ़ बनिया मिखाक और उसकी बेशर्म बीवी और बेटियाँ हैं। बस। और कोई नहीं।"

"ख़ामोश रह। उन्होंने हमारी बात सुन ली तो निकाल बाहर कर देंगे!"

"वे ऐसी हिम्मत नहीं करेंगे। हम उन्हें जल्दी ही दिखा देंगे, कौन किसे बाहर निकालता है। कुछ भी हो, वे ऐसे मकान में रह रहे हैं जो दूसरों की मेहनत से बनाया गया है..."

इसी रौ में वह कुछ देर बोलती रही फिर कोट डालकर बाहर चली गयी। उसकी बातों से मैं बड़े गड़बड़ में पड़ गयी थी। घुटनों के बल झुककर मैंने दुआएँ कीं। फिर मोमबत्तियाँ लेकर चर्च जाने का निश्चय किया लेकिन अपना इरादा बदल दिया। भगवान से अपने बेटे येर्वाण्ड का जीवन-दान माँगती मैं न जाने कितनी मोमबत्तियाँ जला चुकी थी। लेकिन क्या मेरी दुआएँ उसका जीवन बचा पायी थीं? नहीं, मैं चर्च नहीं जाऊँगी। शायद विक्टोरिया ठीक ही कह रही थी। क्योंकि अगर उन सन्तों के पास कोई शक्ति होती, किसी पराये देश की ज़मीन पर लड़ाई के दौरान मेरे बेटे के गुमशुदा होने की ख़बर न मिलती। येर्वाण्ड के बारे में सोचकर मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने निश्चय किया कि बाहर जाकर आख़िर देखें तो, मई दिवस कैसा त्यौहार होता है।

मुख्य मार्ग पर भीड़ के कारण तिल रखने की भी जगह न थी। यह बड़ा ही सुहाना, धूप भरा दिन था। बैण्ड बज रहा था, लोग गा रहे थे और बच्चे इधर-उधर दौड़ रहे थे। कुछ ने अपने सबसे अच्छे कपड़े पहन रखे थे और हर कोई किसी चीज़ की प्रतीक्षा में था। शीघ्र ही परेड शुरू हो गयी। सबसे पहले कुछ छात्र आये, चार-चार की संख्या में क़दम से क़दम मिलाकर मार्च करते हुए—आगे-आगे उनका अपना बैण्ड था। फिर दूसरे सारे छात्र आये। बहुत से छात्रों के हाथों में पताकाएँ थीं। फिर कार्यालयकर्मी आये। उन्होंने भी हाथों में पताकाएँ ले रखी थीं। एक बड़ी-सी पताका और बैण्ड के पीछे फिर आयीं फ़ौजी टुकड़ियाँ। उनके पीछे एक नीची गाड़ी में झाँकी आयी। इस पर निहाई और भाथियाँ थीं। दो आदमी लुहारों के कपड़े पहने लोहे पर हथौड़ा चला रहे थे, मानो कह रहे हों: हमें काम करते देखो! फिर एक खुली गाड़ी आयी। उस पर सफ़ेद कपड़े पहने एक लड़की खड़ी थी जिसके बाल पीछे की ओर लहरा रहे थे। वह लोगों पर फूल उछाल रही थी। अब अगला प्रोग्राम क्या होगा भला! तभी क़तारबन्द कुछ और लोग आये। अचानक ही मेरी नज़र सड़क के एकदम अन्तिम सिरे से आते कुछ लोगों पर पड़ी। उन्होंने विक्टोरिया की बनायी पताका उठा रखी थी। मैंने लाल कपड़े और सफ़ेद अक्षरों को पहचान लिया था। उन्होंने उसे एक लम्बे डंडे में कील लगाकर ठोक दिया था और ऊपर उठा रखा था। हवा के साथ पताका फर-फरकर फहरा रही थी और उसके शब्द कोई भी आसानी से पढ़ सकता था। विक्टोरिया को पहले मैं देख नहीं सकी। फिर मैंने उसे पताका ले जानेवाले लोगों के पीछे-पीछे चलते देख लिया। उसने एक लाल रूमाल लगा रखा था। उसकी पाँत में अधिकतर नौजवान लोग थे। बड़े-बुज़ुर्ग बस इक्के-दुक्के। मैं एक अध्यापक, मुहल्ले के बत्ती जलानेवाले और विक्टोरिया की उम्र की दो लड़कियों को ही पहचान पायी।

विक्टोरिया के कॉमरेडों ने इंटरनेशनल गाना शुरू कर दिया।

तब भीड़ के लोगों ने दशनाक राष्ट्रगीत गाना शुरू कर दिया। भीड़ में से एक सजा-धजा आदमी चीख़कर बोल उठा: "अपने टोप उतार लो! लोग हमारी मातृभूमि का गीत गा रहे हैं!"

सब के सब रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़े। मैं भी भीड़ के पीछे चल पड़ी। लोग कह रहे थे, स्टेशन पर भाषण होंगे।

चूँकि घर से बाहर निकल ही आयी थी तो मैंने सोचा, सुनती चलूँ, लोग कहते क्या-क्या हैं। घर पर कोई काम था नहीं और फिर शायद कोई दिलचस्प बात मुझे सुनने को मिल जाये।

स्टेशनवाले चौक पर लगभग बीस हज़ार लोग ज़रूर रहे होंगे। मिखाक, उसकी बीवी और बेटियाँ भी थीं। सबने अपनी सबसे अच्छी पोशाकें पहन रखी थीं। जब मिखाक की नज़र मुझ पर पड़ी, वह बोल उठा:

"अरी, अन्ना, तुम भी यहीं हो? इसका मतलब है घर पर कोई नहीं। अगर कहीं हमारे यहाँ चोरी हो जाये तो?"

"कुछ नहीं होगा। मैं देखना चाहती थी, यह कैसा त्यौहार है।"

वे आगे बढ़ गये लेकिन मैं जहाँ की तहाँ खड़ी रही। मैंने अपने पूरे जीवन में इतने सारे लोग कभी नहीं देखे थे। बैण्ड बजता रहा। आख़िर क़लफ़दार कमीज़वाले एक आदमी ने बोलना शुरू किया। यह पादरी का बेटा अटार्नी वगार्शक था—वही, जिसने मेरे बेटे येर्वाण्ड को कई साल पहले फ़ौज में भरती होने के लिए मजबूर कर दिया था। इर्द-गिर्द नज़र दौड़ाते हुए, अपना गला साफ़ कर उसने बोलना शुरू किया: "कॉमरेडो! आज सारी दुनिया मई दिवस मना रही है..."

वह बोलता रहा, बोलता रहा और ऐसी विद्वता के साथ कि मैं उसकी आधी से अधिक बातें समझ ही नहीं पायी। टोप हिलाते हुए, चीख़कर अपनी बात के अन्त में उसने कहा, "मई दिवस, ज़िन्दाबाद!"

बैण्ड ने कोई संगीत बजाना शुरू कर दिया। भीड़ में बहुत से लोगों ने अपने टोप उतार लिये थे।

फिर अध्यापकों में से एक ने भाषण दिया। वह भी बहुत देर तक बोलता रहा और अन्त में ज़ोरों से चिल्लाया: "मई दिवस ज़िन्दाबाद!" और भी बहुत से लोग बोले। कुछ शान्तिपूर्वक, धीरे-धीरे बोले, कुछ सनकियों की तरह हवा में हाथ हिला-हिलाकर ख़ूब चीख़-चीख़कर बोले लेकिन अन्त सबने एक ही तरह से किया: "मई दिवस, ज़िन्दाबाद!" हर भाषण के बाद बैण्ड बजने लगता, लोग अपने टोप उतार देते। हर कोई तालियाँ बजाकर चिल्ला पड़ता "हुर्रा!" अचानक विक्टोरिया मुझे वक्ताओं के मंच पर दिखाई दे गयी। उसके सिर पर लाल रूमाल बँधा था, हाथ में उसने पताका थाम रखी थी। पल भर को मेरे दिल की धड़कनें रुक सी गयीं।

"कौन है? कौन है वह लड़की?" मैंने लोगों को कहते सुना।

"पुस्तकालयवाली लड़की।"

चिन्ता के मारे मेरी जान निकली जा रही थी। कहीं कोई लड़की भी ऐसा ग्राचरण करती है? मेरे घुटने जवाब दे रहे थे, दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था, मुँह सूख गया था। "ग्रगर कहीं मिखाक ने मुझे देख लिया तो? क्या कहेगा वह?"

विक्टोरिया ने बोलना शुरू किया।

"कॉमरेडो! ग्रब तक जो कुछ यहाँ कहा गया है, वह सब झूठ ही झूठ है क्योंकि इन सज्जनों की कथनी ग्रौर करनी में बहुत बड़ा ग्रंतर है। वे कहते हैं, सारे मेहनतकश लोगों को एकजुट होना चाहिए लेकिन वे रूसी मज़दूरों से एकजुट नहीं होना चाहते जो समस्त मेहनतकश जनता के सुख के लिए संघर्ष कर रहे हैं। मैं एक बार फिर कहती हूँ: इन सज्जनों ने जो कुछ कहा है, वह सब झूठ है ग्रौर जनता को यह बात ज़रूर जान लेनी चाहिए क्योंकि वे जनता के दुश्मन हैं।"

दूसरे सारे वक्ता त्यौहार के बारे में बोले थे लेकिन वह सिर्फ़ जनता, सरकार ग्रौर व्यवस्था प्रणाली के बारे में बोली थी।

"किस तरह की सरकार हमारी है जो हमेशा युद्धरत रहती है ग्रौर जनता का दमन करती है? हमें ऐसी सरकार की कोई भी ज़रूरत नहीं!"

ग्रध्यापक ग्रौर वगार्शाक किस चीज़ के बारे में बोले थे, यह मैं नहीं समझ पायी थी लेकिन विक्टोरिया का एक-एक शब्द मुझे मन-मन भर का लग रहा था। मुझे यहाँ से चल देने की इच्छा महसूस हुई लेकिन फिर मैंने रुकी रहने का निश्चय किया। "ग्रगर कहीं लोग उसपर टूट पड़ें ग्रौर ग्रपने खिलाफ़ बोलनेवाले दर्ज़ी के बेटे मकार की तरह उसे पीटने लगें तो?"

उसके पूरे भाषण के दौरान मैं बड़े ग्रसमंजस में रही ग्रौर यह कब तक चला, मैं यह भी नहीं जान पायी लेकिन जैसे ही उसने सही-सलामत ग्रपना भाषण पूरा कर लिया, मेरे सीने पर से एक भारी बोझ-सा उतर गया। भीड़ में चीख़ने-चिल्लाने की ग्रावाज़ थी। ऐसा लगा, त्यौहार ख़त्म हो गया था। विक्टोरिया मंच से नीचे उतर ग्रायी थी। उसे ज़ोर-ज़ोर से डाँटने-फटकारने की इच्छा से मैंने उसकी ग्रोर बढ़ने की कोशिश की लेकिन भीड़ ज़बर्दस्त थी, सो मैं घर की ग्रोर लौट पड़ी।

मेरा सिर झुका था। इतने साल बेलाग जीवन जीने के बाद ग्रब बुढ़ा-

पे में मैं शहर भर में मज़ाक का पात्र बन जाऊँगी। फाटक के पास बैठी मैं यही सब सोच रही थी। मिखाक अपने परिवार के साथ लौट रहा था। मुझे देखकर वह बोल उठा: "मुझे तुम्हारे लिए सचमुच बहुत खेद है, अन्ना! तुमने पाल-पोसकर कैसी लड़की को बड़ा किया है?"

"वह भी कोई लड़की है!" उसकी बीवी गुस्से से बोली। "गँवार है! पागल! ऐसी नमकहराम लड़की को तुमने जन्म कैसे दिया?" मेरी ओर पलटते हुए उसने पूछा।

माँ-बाप मेरी भर्त्सना में लगे थे और बेटियाँ ख़ीं-ख़ीं करके हँस रही थीं।

"तुम्हारी बेटी ने हमारे त्यौहार का मज़ा किरकिरा कर दिया!" मिखाक आगे बोला। "ऐसी बेटी न ही हो, वही अच्छा।"

"उसने तुम दोनों की बदनामी की है!" उसकी बीवी ने हाँ में हाँ मिलायी।

विक्टोरिया ने बेवकूफ़ी का काम किया है, दिल में यह मान लेने के बावजूद मैं ख़ामोश रही।

काफ़ी देर हो चुकी थी और मैं घबराने लगी थी। विक्टोरिया कहाँ रह सकती थी? आख़िर वह लौटी–पीली पड़ी, थकी और हाँफती।

"मेरी प्रतीक्षा न करो, आज रात मैं घर पर नहीं सोऊँगी," वह बोली।

"नहीं क्यों?"

"वे मुझे गिरफ़्तार करना चाहते हैं।"

"कौन?"

"सरकार।"

"किस लिए?"

"आज के मेरे भाषण के कारण।"

मेरे तो होश ही उड़ गये। मैं उसे फटकारना चाहती थी लेकिन वह बोल उठी, "मेरे पास तुम्हारी बातें सुनने का समय नहीं, मम्मी। तुम बात समझती प्रतीत नहीं होती... मुझे जाना है।"

"कहाँ?"

"मिल जायेगी एक जगह।"

"तुम कहाँ जा रही हो? तुम ठहरोगी कहाँ?"

वह चुप रही।

"अपनी माँ पर तरस खा। अगर तू मुझ पर नहीं तो और किस पर विश्वास करेगी?"

आखिर उसकी चिरौरी करके मैंने जान ही लिया।

"मैं अपनी बुआ के साथ रहूँगी लेकिन देखो, किसी को इसकी भनक भी न लगे।"

शहर के दूसरे छोर पर स्टेशन के पास ही मेरी ननद रहती थी।

"कब तक वहाँ ठहरोगी?"

"कह नहीं सकती।"

विक्टोरिया जल्दी-जल्दी अख़बारों, ख़तों और किताबों को समेट रही थी। उनका एक छोटा-सा बंडल बनाकर उसने झपटकर अपना गर्मियों का कोट उठाया और कमरे से बाहर। उसका चेहरा एकदम पीला पड़ा हुआ था। मैं उसे ननद के घर तक छोड़ आना चाहती थी लेकिन उसने विरोध किया। फिर भी मैं हाथ पर हाथ धरे बैठी नहीं रह सकी। उसके जाते ही मैं बाहर चली आयी और फाटक तक जा पहुँची। रात घुप अन्धेरी थी और मेरी आत्मा को चैन न था।

"हे भगवान," मैं प्रार्थना करने लगी, "मेरी भूली-भटकी बच्ची पर दया कर!"

३

मैं नहीं जानती, विक्टोरिया को गये एक, दो या पाँच घण्टे बीत चुके थे। ऊपर की मंज़िल पर मिखाक और उसके परिवार के लोग न जाने कब के सो चुके थे लेकिन मेरी आँखों से नीन्द उड़ी हुई थी। मैं जूड़ी-ताप की मरीज़-सी बिस्तरे पर पड़ी थी। अचानक मुझे सीढ़ियों से नीचे आती पद-चाप सुनाई दी। फिर किसीने दरवाज़े पर दस्तक दी। पहले तो ख़्याल हुआ कि सब कुछ ठीक-ठाक रहा और विक्टोरिया वापस लौट आयी है। फिर ज़ोर से खट-खट हुई। नहीं, यह उसकी हल्की-हल्की दस्तक न थी। और फिर, वह हमेशा साथ में "मम्मी" कहकर आवाज़ भी तो देती थी। नहीं, नहीं दरवाज़े पर ज़रूर ही कोई और खट-खट दे रहा था। मेरा दिल बैठ गया। कौन हो सकता है? लगभग आधी रात हो चुकी थी।

"कौन है?"

"दरवाज़ा खोलो!" पुरुष स्वर ने जवाब दिया।

जैसे-तैसे कपड़े डालकर मैं दरवाज़े के क़रीब ग्रा गयी।

"कौन हो तुम? क्या चाहिए तुम्हें?"

"गश्ती पुलिस। दरवाज़ा खोलो।"

मैं चुप रही। दरवाज़े के बाहर कई लोग खड़े थे। शायद लुटेरे हों। इधर हाल में लूट-पाट के कई मामले हो चुके थे। डाकू घर में घुस ग्राते या सड़कों पर लोगों को लूट लेते थे। भय ने मेरे दिल को जकड़ लिया।

"तुम्हें क्या चाहिए?"

"दरवाज़ा खोलो फिर ग्रपने ग्राप ही मालूम हो जायेगा..."

"नहीं, मैं नहीं खोल सकती। मैं ग्रकेली हूँ। ग्रौर देर भी हो चुकी है। तुम्हें चाहिए क्या?"

"मैं तुम्हें चेतावनी दे रहा हूँ–ग्रगर तुम दरवाज़ा नहीं खोलोगी, हम इसे तोड़ डालेंगे!"

फिर ऊपर से मिखाक के जागने की ग्रावाज़ सुनाई दी। वह खाँसा, उठा ग्रौर ऊपर-नीचे चहलक़दमी करने लगा। इससे मेरी हिम्मत बँधी।

"ग्रगर डाकू भी हुए तो ग्रब वह सुन ही लेगा," मैंने सोचा।

मैंने दरवाज़ा खोल दिया। कई सशस्त्र व्यक्ति ग्रन्दर घुस ग्राये।

"विक्टोरिया दनेलियान तुम्हारी कौन लगती है?"

"मेरी बेटी है। लेकिन इस समय यहाँ नहीं है।"

"कहाँ है वह?"

"मुझे नहीं मालूम। शाम को गयी सो ग्रभी तक नहीं लौटी है।"

"कहाँ जा सकती है वह?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"क्या मतलब है तुम्हारा?" उन सब का ग्रफ़सर-सा मालूम पड़ता ग्रादमी चीख़ा। "वह तुम्हारी बेटी है ग्रौर उसके बारे में जानना तुम्हारा काम है। हूँ? कहाँ है वह?"

"मुझे नहीं मालूम। भला मैं कैसे जान सकती हूँ? मैं क़सम खाती हूँ मुझे नहीं मालूम।"

"मैं इसे कभी नहीं मानूँगा।"

मुझे जवाब नहीं सूझ रहा था। तभी मिखाक ग्रा पहुँचा।

"यहाँ क्या हो रहा है?"

"हम विक्टोरिया दनेलियान के लिए आये हैं।"

वहाँ मिखाक की मौजूदगी से मुझे बेहतर महसूस हुआ। मैंने सोचा, वे घबराकर चले जायेंगे लेकिन उन्होंने तो कमरे की तलाशी लेनी शुरू कर दी। उन्होंने कोई भी कोना छोड़ा नहीं, हर चीज़ उलट-पलट कर दी, एक-एक बखिया उधेड़ कर रख दी। फिर भी वे विक्टोरिया को नहीं ढूँढ़ सके। जाते-जाते उन्होंने मुझे साथ ले जा रही पन्द्रह किताबों की रसीद पकड़ा दी। पहले उन्होंने उसपर दस्तख़त किये फिर मिखाक को भी दस्तख़त करने कहा।

"देख रही हो न, अन्ना? अब तुम जान गयी होगी कि मैंने क्यों तुम्हें अपनी बेटी पर लगाम रखने कहा था," उनके चले जाने के बाद वह बोला। "मैं उसका हश्र पहले ही जान गया था।"

"हाँ, यह तो एकदम सच है! लेकिन अब हमें क्या करना चाहिए? मैं अपनी बच्ची की रक्षा कैसे कर सकती हूँ? देह में जान तो है नहीं, डर से ही मर जायेगी।"

"अब तो चिड़िया खेत चुग गयी! आज के भाषण के बाद तो कोई उसकी मदद नहीं कर सकता।"

मुँह फेरकर वह चला गया। मैंने रात आँखों में ही काट दी। अंधेरा रहते ही मैं कमरा ठीक करने में जुट गयी। सब कुछ ठीक-ठाक करने में मुझे कई घंटे लग गये। पुलिस द्वारा कमरे की तलाशी की ख़बर सुनकर सुबह पड़ोसी आने लगे। सब जानना चाहते थे, क्या कहा गया, क्या पूछा गया। सूरजमुखी के बीज चबाती, हमेशा बाहर फाटक के पास बैठी मोजे बुनती बग़ल के मकानवाली युखाबेर को इधर-उधर की सारी ताज़ा-तरीन बातें मालूम रहती थीं। वह जब तब बात करने रुक जाती। वे विक्टोरिया की तलाश में आये थे, यह जानकर वह बोल उठी: "काश, मेरी आँखें फूट जातीं!" फिर बातों ही बातों में उसने बताया कि रात में कई बोल्शेविकों को गिरफ़्तार कर लिया गया था।

"विक्टोरिया से थोड़े दिनों के लिए छुप जाने कहो। लड़की जात जो ठहरी, कहीं उन्होंने गिरफ़्तार कर लिया तो बड़ी बदनामी होगी। अगर छुपने की कोई जगह नहीं मिल रही हो तो मेरे पास आने कहो, मैं छुपा दूंगी।"

वह कुछ इतने कोमल, करुण ढंग से बोली थी कि मैं उसे वत्सल-हृदया नारी समझ बैठी।

"धन्यवाद, धन्यवाद। वह ठीक-ठाक छुपी है।"

"कहाँ?" युखाबेर ने पूछा।

मैं मूरख, बोल गयी, "स्टेशन के पास अपनी बुआ के घर।"

"ओह," विचित्र स्वर में बोलकर उसने होंठ सिकोड़ लिये।

मैं तो बस ज़बान ही काटकर रह गयी। अगर उसने किसी से कह दिया, बात फैलते देर न लगेगी। मुँह से निकली बात और नवजात शिशु की आवाज़ दूर से ही सुनाई दे जाती है।

हुआ भी ठीक वैसा ही।

दो दिनों बाद विक्टोरिया को बुआ के घर से गिरफ़्तार कर लिया गया। "हाय, मैं यह क्या कर बैठी?" मैंने ख़ुद को कोसा। मैं सीधी युखाबेर के पास जा पहुँची।

"मेरी बेटी अपनी बुआ के घर से पकड़ी जा चुकी है। उसके बुआ के घर रहने की बात तुम्हारे अलावा किसी को मालूम न थी।"

"मैंने कभी किसी से कुछ नहीं कहा," वह बोली लेकिन उसका चेहरा लाल पड़ गया था और वह आँख मिलाने से कतरा रही थी।

मुझे बाद में पता चला, उसका एक भाई पुलिस का भेदिया था और उसी ने उसको मुझसे जानकारी पाने के लिए भेजा था।

क़िस्मत को कोसने से कोई फ़ायदा न था। विक्टोरिया के पकड़े जाने के लिए ज़िम्मेदार मैं थी, इसलिए उसे आज़ाद कराने के लिए भी मुझे सब कुछ करना चाहिए।

दूसरे दिन सुबह में मैं जेलख़ाने उसे देखने गयी। मैं जानना चाहती थी, वह ठीक-ठाक तो है क्योंकि मैंने सुना था, जेलवाले क़ैदियों को पीटते-पाटते भी थे। लेकिन जब मैं वहाँ पहुँची तो मुझे बताया गया, विक्टोरिया दनेलियान नाम की कोई क़ैदी जेल में है ही नहीं। शायद स्कूल में उसे रोक रखा गया हो। जेल भर जाने के कारण, नये क़ैदियों को स्कूल की इमारत में ले जाया जा रहा था।

"क्या विक्टोरिया दनेलियान यहाँ है?" मैंने पूछा।

"है।"

"मैं उससे मिल सकती हूँ?"

"नहीं।"

"लेकिन मैं तो उसकी माँ हूँ।"

"तो क्या? अगर तुम परमात्मा होती, तो भी नहीं। जाओ, पहले पास ले आओ, फिर हम तुम्हें अन्दर जाने देंगे।"

बड़े जेलर के यहाँ से मैं पास ले आयी। उन्होंने मुझे अन्दर जाने दिया फिर विक्टोरिया को लाने चले गये। अपना कोट उसने कन्धों पर डाल रखा था। वह गलियारे से आयी थी, अपने बॉब बालोंवाले सिर को ऊपर उठाये। उसके पीछे एक संतरी था। मुझे देखकर बोली, "तुम क्यों आयी हो, मम्मी?"

और वह इतनी शान्ति से बोली थी मानो कुछ हुआ ही न हो।

"मैं तुझे यहाँ से कैसे छुड़ा सकती हूँ, मेरी बच्ची? मैं किससे जाकर मिलूँ? किसके आगे मदद को हाथ फैलाऊँ?"

"किसी के आगे नहीं।"

"पागल हो गयी है," मैंने सोचा।

"मैं मिखाक के पास जाऊँगी। मैं उससे मदद करने कहूँगी।"

"मेहरबानी करके, ऐसा न करना। मैं दस साल यहीं बन्द रहना पसन्द करूँगी लेकिन उसकी मदद नहीं।"

"क्यों? उसने क्या किया है तुम्हें नुक़सान पहुँचाने के लिए?"

"मिखाक हमारा दुश्मन है।"

और वह बोलती ही गयी। पहरे का सिपाही एक-एक शब्द ध्यान से सुन रहा था। हम अकेले नहीं, यह जताने के लिए मैंने विक्टोरिया को आँख का इशारा किया लेकिन उसने कोई ध्यान न दिया।

"चाहे तू जो भी कह, मैं तुझे यहाँ से छुड़ाने के लिए सब कुछ करूँगी। मिखाक के अलावा मेरी मदद करनेवाला कोई भी नहीं। मैं उससे ज़रूर कहूँगी।"

"अगर मुझे पता चला कि उसकी गारंटी पर मुझे छोड़ा गया है, मैं सीधे जेलख़ाने लौट आऊँगी।"

मैंने उसकी उलटी-सीधी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। स्कूल से बाहर आते ही मैं सीधे मिखाक के पास जा पहुँची।

"बस सिर्फ़ तुम्हीं मेरी मदद कर सकते हो," मैं बोली। "मेहरबानी करके मेरी बेटी को छुड़ाने के लिए कुछ करो।"

"मेरा इससे कोई वास्ता नहीं। जाओ, पुलिस-चीफ़ से मिलो।"

और उसने मुझे दरवाज़ा दिखा दिया। मुझे पुलिस-चीफ़ के पास जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। उसकी जगह मैंने विभिन्न समितियों में काम करनेवालों, अपनी बेटी के परिचितों से मिलने का निश्चय किया। मैं विक्टोरिया के शिक्षक से मिलने गयी—जिस से उस दिन वह पुस्तकालय में बहस कर रही थी।

"मैं कुछ नहीं कर सकता," उसने कहा। "यह मेरा काम नहीं। मुझे कोई मतलब नहीं। तुम्हारी बेटी ने ऐसा घपला किया है कि मैं कोई ताल्लुक़ नहीं रख सकता।"

"लेकिन वह बच्ची जो ठहरी। जानती ही नहीं, क्या बोल रही है, क्या कर रही है।"

"तुम ग़लत कह रही हो। उसे ख़ूब अच्छी तरह मालूम था, वह क्या कर रही है। तुम्हारी बेटी अपने देश की ग़द्दार है। वह चाहती है, हम रूसी बोल्शेविक को बुलाकर अपने देश को बर्बाद करने की छूट दे दें।"

उससे कोई मदद मिलने की उम्मीद न देख, मैंने पादरी के यहाँ जाने का निश्चय किया। शायद वह मदद करे। वह बड़े-बड़ों को जानता था। लेकिन उसने भी वही बात कही।

"तुम्हारी बेटी देश की ग़द्दार है। मैं उसके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।"

"फ़ादर! धरम के नाम पर मैं आपसे मदद की विनती करती हूँ!"

मेरी ओर कोई ध्यान दिये बिना अपने झूलदार कुरते की जेबों में हाथ डाले, वह चहलक़दमी करता रहा। सारी याचना-अभ्यर्थना बेकार। फ़ादर बारसेग ने मेरे लिए कुछ भी करने से इनकार कर दिया।

"कैसा पादरी है," मैंने सोचा। "ग़रीबों की मदद की बात तो वह हमेशा करता है और जो मैं मुसीबत में पड़कर उसके पास आयी हूँ तो उसने पीठ फेर ली है। कैसा पाक-साफ़ आदमी है।"

मैं पस्त हो गयी थी। आख़िर मैंने उच्च अधिकारी के पास जाने का निश्चय किया। उससे मिलनेवालों की लम्बी लाइन लगी थी। मैं बैठ गयी और लोगों की बातें सुनने लगी। किसी की बेटी को तो किसी के बेटे को गिरफ़्तार किया गया था, किसी के पति को। लोग कह रहे थे, कोई अस्सी बोल्शेविकों को पकड़ा गया था। ऐसा भी हुआ था कि पुलिस

जिस ग्रादमी की तलाश में ग्रायी थी, उसके घर पर न मिलने पर उसके बाप को, भाई को या पत्नी को बंधक के रूप में पकड़ ले गयी थी फिर मकान की तलाशी ली थी। काले कपड़े पहने एक ग्रौरत मेरे पास ग्रा पहुँची। उसकी ग्राँखें गीली थीं।

"तुम विक्टोरिया दनेलियान की माँ हो?"

"हाँ। क्यों?"

"देखो, तुम्हारी बेटी ने मेरा क्या हाल कर दिया है! उसने मेरे घर पर दुख व मुसीबतों के पहाड़ तोड़ दिये हैं!"

ग्रौर वह फिर रोने लगी। मैं उसकी बात नहीं समझ पायी।

"लेकिन कैसे?"

"तुम्हारी बेटी ने मेरी ग्राशखेन को ग़ैर-क़ानूनी किताबें पढ़ने को दीं ग्रौर उसकी मति पलट दी। ग्रब पुलिस ने मेरी बेटी को गिरफ़्तार कर लिया है..."

बोलते-बोलते वह रोती जाती। बार-बार ग्राँखें पोंछते जाने के बावजूद ग्राँसू थमने को नहीं ग्रा रहे थे।

"वह मेरी इकलौती बेटी है ग्रौर ग्रब उन्होंने उसको मुझ से छीन लिया है।"

"बहन, मैं क्या कर सकती हूँ? तुम सोचती हो, मैंने ऐसा मनाया था?"

"तुम्हारी बेटी ने बहुत गड़बड़ी की है," मुझे दूसरी ग्रौरत कहती सुनाई दी। "ग्राशखेन बची भी कैसे रह सकती थी? विक्टोरिया किसी पर भी जादू कर दे सकती थी, वह बोलती ही थी इतने प्रभावशाली ढंग से कि कोई उसकी बात माने बिना नहीं रह सकता था। मेरा बेटा भी उनमें से एक था। ग्रौर ग्रब गिरफ़्तार है।"

फिर दूसरी ग्रौरतें भी मेरे पास ग्रायीं। लेकिन उन्होंने न तो मुझे, न विक्टोरिया को दोष दिया। उन्होंने मेरे प्रति सहानुभूति जतायी ग्रौर बच्चों को छुड़ाने के बारे में बातें कीं।

जब चीफ़ से मिलने की मेरी बारी ग्रायी, एक नौजवान मेरे पास ग्राकर बोला: "तुम समय जाया कर रही हो। तुम चाहे जैसे भी कहो, जो भी कहो, चीफ़ कुछ नहीं सुनेगा।"

"क्यों नहीं सुनेगा?"

"क्योंकि उसको मालूम है, तुम्हारी बेटी बोल्शेविक है। पुलिस को

उसके पास से कुछ कागज़ मिले हैं। वह ख़ुद को निर्दोष नहीं साबित कर पायेगी।"

"चाहे जो भी हो," मैंने सोचा, "कम से कम उसके ख़िलाफ़ जो बातें हैं, वे तो मालूम हो जायेंगी। मैं उसके लिए गिड़गिड़ाऊँगी, मिन्नतें करूँगी। मैं कहूँगी, उसने ग़लती की है, कम उम्र है, अब अपने रास्ते बदल डालेगी—अगर वे माफ़ कर दें। शायद मुझ पर तरस खाकर उसे छोड़ दें।"

उसके ऑफ़िस में जाते समय मैं यही सब सोच रही थी। मेज़ के पीछे एक लम्बे बालोंवाला नौजवान जिसकी मूँछें हाथ फेरी थीं, बैठा था। यही चीफ़ था। उसकी बग़ल में अटार्नी वगार्शाक बैठा था। हमेशा की तरह वह सजा-बजा था। सकुचाते-सकुचाते मैं उनके पास गयी और सिर झुकाया। उन्होंने मेरी ओर देखा।

"हूँ?" चीफ़ बोला।

"मैं अपनी बेटी के लिए याचना करने आयी हूँ।"

"कौन है वह? क्या नाम है उसका?"

"कल उसे गिरफ़्तार किया गया था। मेरा बेटा फ़ौज में गया था और लड़ाई में मारा गया। बेटी ही मेरे लिए सब कुछ है। और अब उसे भी गिरफ़्तार कर लिया गया है। मैं क्या करूँ? बताइये, मैं क्या कर सकती हूँ।"

"उसका नाम क्या है?"

"वही जो पुस्तकालय में काम करती थी, विक्टोरिया दनेलियान।"

चीफ़ ने वगार्शाक की ओर देखा, फिर फुत्कारा।

"तो वह तुम्हारी बेटी है? हूँ, तो तुम क्या चाहती हो?" उसकी आवाज़ कुछ-कुछ बदल गयी थी।

"मैं आपसे उसे छोड़ देने का अनुरोध करती हूँ। कच्ची उमर है, उसे कुछ भी हो जा सकता है। घर पर कोई नहीं... बस हम दो ही हैं... अब मेरे पास सिर्फ़ वही है... और छोटी उमर है। बड़ी भूल हुई है!"

"हुम्म! मुझे ख़ुशी है कि तुम ऐसा सोचती हो। तो तुम मानती हो न कि उसने ग़लती की, ठीक है न?"

उसकी और वकील की निगाहें मिलीं और दोनों हँस पड़े। मुझे अब और सहा नहीं गया, मैं वगार्शाक पर बरस पड़ी: "तुम हँस काहे को रहे हो? तुमने और मिखाक ने मेरे बेटे को फ़ौज में दाख़िल कराया और

वह मारा गया। और अब तुम मुझसे मेरी इकलौती बेटी भी छीन लेना चाहते हो!"

वह पीला पड़ गया।

"इस बात से उस बात का कोई सरोकार नहीं," नाक पर चश्मा ऊपर चढ़ाते हुए वह बोला।

"क्यों नहीं है? दोनों मेरे बच्चे हैं। मैंने ही दोनों को पाला-पोसा।"

"उसका इससे कोई मतलब नहीं क्योंकि उनमें से एक, तुम्हारा बेटा अपने देश से प्यार करता था और इसकी आज़ादी के लिए लड़ने गया जब कि तुम्हारी बेटी ग़द्दारों के गिरोह से जा मिली है।"

बड़ी ठसक से बोलकर वह उठ खड़ा हुआ।

मुझे ग़ुस्सा आ गया।

"पहली बात कि मेरे बेटे ने अपनी इच्छा से फ़ौज में जाना क़बूल नहीं किया था। तुमने उसे दाखिल कराया और मरने भेज दिया। तुमने मदद का वायदा किया था लेकिन कभी कानी कौड़ी भी न दी। अब बेटी की बात करते हो। उसे ग़द्दार क्यों समझा जाता है? क्योंकि उसने भाषण किया। लेकिन अभी उसकी उमर ही क्या है, बच्ची ही है, सो, क्या बोल रही है, वह जानती भी नहीं। क्या यह कोई ऐसी बात है जो उसे गिरफ़्तार कर लिया जाये?"

"उसके भाषण की बात कौन कर रहा है? इसकी तो बात ही नहीं। छुपे तौर पर तुम्हारी बेटी के बोल्शेविकों के साथ सम्पर्क थे। हमारी सरकार के ख़िलाफ़ इस्तेमाल के लिए उसे उनसे रुपये मिलते थे।"

"मेरी आँख फूटे जो ऐसी बात हो!" मैं बोली। "वेतन के अलावा कहीं से उसे कोई रुपये नहीं मिले। और वह हमेशा अपना वेतन मुझे दे देती थी। मेरी बेटी किसी तरह कुसूरवार नहीं। सब झूठ है।"

"नहीं, यह झूठ नहीं। वह मुखियों में एक थी। वह ग़द्दार है। उसने अपने देश को बेच दिया है।"

मेरा पारा आसमान पर चढ़ गया।

"ऐसे काम तुम्हीं करते हो! मेरी बेटी तुम जैसों से अच्छी है। वह निर्दोष है लेकिन तुम..."

चीफ़ ने कोई बटन दबाया और एक आदमी अन्दर आ पहुँचा।

"इस बुढ़िया चुड़ैल को निकाल बाहर करो!" उसने उससे कहा।

उस दिन मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर चुका था। अब भगवान का ही एक भरोसा रह गया था हालाँकि बेटे की मौत के बाद से मेरा उस पर भी विश्वास नहीं रहा था। लेकिन वही है न, डूबते को तिनके का सहारा। मैं सोचती, अगर ऊपरवाला मेरे लड़के पर नहीं तो मेरी बेटी पर दया करेगा, उसकी रक्षा करेगा। मैं हर रोज़ जेलख़ाने जाती। विक्टोरिया का यहाँ तबादला कर दिया गया था। मैं उसके लिए भोजन व साफ़ कपड़े ले जाती। अब मैं धुलाई का कोई काम नहीं करती थी क्योंकि उम्र भी हो गयी थी और ज़्यादा धुलाई करना मेरे लिए कठिन भी था। जब कभी किसी अमीर परिवार में दिन भर का काम मिल जाता, ग़द्दार लड़की पैदा करने के लिए उनकी झिड़कियाँ भी सुननी पड़तीं।

वे कहते, लड़की को आर्मीनिया में गड़बड़ी करने के लिए छुपे तौर पर धन मिलता था। और न जाने क्या-क्या! मेरे कई पड़ोसियों को हमसे हमदर्दी थी लेकिन दोस्ताना ताल्लुक़ात रखने से वे भय खाते थे।

जल्दी ही मेरे बचे-खुचे पैसे ख़त्म हो गये। तभी याद आया, विक्टोरिया ने पुस्तकालय से पिछले माह की तनख़्वाह नहीं ली थी। सो, मैंने वह ले आने का फ़ैसला किया।

"उसकी कोई पिछली तनख़्वाह बाक़ी नहीं," बड़े पुस्तकालयाध्यक्ष ने कहा।

"लेकिन उसने पिछले महीने की तनख़्वाह नहीं ली थी।"

"मुझसे कानी कौड़ी भी नहीं देने को कहा गया है।"

सो, मैं ख़ाली हाथ लौट आयी। खाना तो मैं फिर भी विक्टोरिया के लिए ले जाती रही लेकिन सस्ते ढंग के: कभी सलाद, कभी आलू। क़ीमे के समोसे वग़ैरह दो तीन बार ही बना पायी थी।

एक दिन जेलख़ाने के बाहर मुझे बड़ी-सी भीड़ दिखाई दी। सब की नज़र जेलख़ाने की दीवारों और प्रांगण पर टिकी थी। ज़मीन पर रोटी, पनीर, गोश्त, टूटे प्यालों व प्लेटों के टुकड़े बिखरे पड़े थे। जेलख़ाने के अन्दर से एक अजीब-सी भिनभिनाहट भरी आवाज़ सुनाई दे रही थी।

"क्या हुआ? किसने फेंक दिया यह सारा खाना?" मैंने पूछा।

"बोल्शेविक क़ैदियों ने।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आज एक क़ैदी की पिटाई की गयी थी, सो सबने अनशन शुरू कर दिया है।"

ज़ोरों से मेरा दिल धकधक करने लगा। साँस भारी लगने लगी। फ़ेल्ट हैट लगाये एक आदमी के पास जाकर मैंने उससे काँपती आवाज़ में पूछा,

"आप जानते हैं, किसे पीटा गया है, महाशय ?"

"किसी नौजवान को।"

उसकी बात सुनकर मुझे थोड़ी शान्ति मिली। विक्टोरिया के लिए मैंने खाना छोड़ जाना चाहा तो पहरेदार ने इनकार कर दिया।

"नहीं क्यों ?" मैंने पूछा।

"किसी से अब खाना न लेने का हुक्म है।"

"लेकिन क्यों ?"

"इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं।"

पहरेदारों में एक नौजवान कार्स का था—बड़ी-बड़ी आँखों और ललाट पर घाव के लम्बे-से निशानवाला। वह हमेशा मेरे साथ बड़े अच्छे ढंग से पेश आता था। मुझे "मम्मी" कहकर बुलाता। कभी मेरी बात से इनकार भी न करता। लेकिन उस दिन वहाँ पर वह था ही नहीं। इधर मैं पहरेदार से बात कर ही रही थी कि अन्दर क़ैदियों ने इंटरनेशनल गाना शुरू कर दिया। उनकी आवाज़ इतनी ज़ोरदार थी कि खिड़कियों के काँच खड़खड़ा उठे। मुझे विक्टोरिया की स्पष्ट, दूसरों से ऊपर उठती आवाज़ सुनाई दे रही थी। हर कोठरी से गाने की आवाज़ आ रही थी। उन्हें रोकने की बेकार कोशिश करते वॉर्डर इधर-उधर दौड़ रहे थे। डर से मेरी हालत बुरी थी। "सब को अब मार ही डालेंगे," मैंने सोचा। लेकिन गाना चलता रहा। विक्टोरिया की आवाज़ सबसे ऊपर गूँज रही थी। मैं अपने आँसू नहीं रोक सकी।

"मैं तेरी आवाज़ सुन रही हूँ, विक्टोरिया!" मैं ज़ोर से बोल उठी।

बड़ा वार्डर दौड़ता मेरे पास आया। "कौन हो तुम? क्या चीख़ रही हो तुम यहाँ?" उसने जवाब तलब किया।

"मैं विक्टोरिया दनेलियान की माँ हूँ। यह मेरी बेटी के ही गाने की आवाज़ है।"

मैंने सोचा था, वह कुछ नरम पड़ जायेगा लेकिन इससे वह और भी ज्यादा गरम हो उठा।

"भागो यहाँ से इससे पहले कि मैं! .."

तभी कार्स का मेरा परिचित नौजवान सन्तरी आ पहुँचा।

"आज तो बेकार है लेकिन कल कुछ खाने को ले आना," वह बोला और मेरे साथ-साथ फाटक तक आया।

"उन्होंने विक्टोरिया को तो नहीं पीटा है न?"

"नहीं, चिन्ता न करो। बस यही बात है कि क़ैदियों ने खाना लेने से इनकार कर दिया है।"

"लेकिन क्यों? क्या वे भूखे रहना चाहते हैं?" साथ ही मैं यह भी सोचती जा रही थी कि वे जरूर पागल हो गये हैं जो खाने से इनकार कर रहे हैं।

"वे नहीं मरेंगे। चिन्ता न करो!"

"तुम मुझे उससे मिला नहीं सकते? उसे समझाने की कोशिश करूँगी। आख़िर कच्ची उमर है न, सो समझती ही नहीं, क्या कर रही है।"

"कोई लाभ नहीं। अगर उसके कॉमरेड नहीं खायेंगे तो वह भी कुछ नहीं खायेगी।"

"शायद वे जेल का खाना खाने से डरते हों। जो मैं लायी हूँ, वह उन्हें खाने दो।"

"इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। और फिर, हम तुम्हारा लाया खाना नहीं ले सकते। उन्हें जेल का खाना जरूर खाना पड़ेगा..."

वह मुझे समझाता रहा कि यह भूख हड़ताल है, जेल में जो कुछ हो रहा है, उसके ख़िलाफ़ विरोध प्रकट करने का यह एक बोल्शेविक तरीक़ा है। ऐसी बेवकूफ़ी मुझे बेकार लगी।

घर लौटकर मुझसे भी कुछ नहीं खाया गया। और जब बेटी भूखी हो तो मैं खा भी कैसे सकती थी? उस रात मैं पल भर को भी नहीं सोयी।

उस दिन शाम को मिखाक के घर पार्टी थी। उसकी बीवी का जन्मदिन था। कोच पर घुड़मुड़ी-सी बैठी मैं ऊपर से आते संगीत और शोर, गाने और चिल्लाने की आवाज़ें सुनती रही। हर टोस्ट के साथ इसमें वृद्धि होती जाती। गाना बजाना सुबह होने तक चलता रहा। फिर मेरे

कुर्सियाँ हटाकर उन्होंने नाचना शुरू कर दिया। पैरों के धप-धप से छत बज उठी। मुझे तो लग रहा था, कहीं छत मेरे सिर न आ रहे...

रात भर आनन्द-उल्लास चलता रहा। आख़िर में, पौ फटने पर वे ऊपर टैरेस पर जाकर फिर से नाचने-गाने में लग गये। एक ओर अपनी पीड़ा और दूसरी ओर, ऊपर के गुलगपाड़े के कारण मैंने आंखों में रात काट दी।

सुबह होते ही विक्टोरिया के लिए कुछ अंडे और थोड़ा दूध उबालकर मैं दुबारा जेल की ओर रवाना हो गयी।

क़ैदियों ने अभी भी खाने से इनकार कर दिया है, यह कहकर उन्होंने अंडा और दूध लेने से मना कर दिया। तीन दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। हर दिन क़ैदी गाते और मेरी बेटी की आवाज़ साफ़ तौर पर सबसे ऊपर रहती।

चौथे दिन जब मैं फिर कुछ खाने को लेकर आयी तो मुझसे कहा गया कि अब और परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं।

"ऐसा क्यों?"

"क़ैदियों को येरेवान ले जाया जा रहा है।"

"क्यों?"

"तुम्हें जानने की ज़रूरत नहीं," कार्सवाले लड़के ने कहा। "दूसरों को तो मैं कुछ भी नहीं बताता लेकिन तुम्हारे लिए मुझे अफ़सोस है, इस लिए इतना बता दिया।"

मुझे लगा, दाल में कुछ काला है। मैंने क़ैदियों को चुपके-चुपके फाँसी पर चढ़ा देने की बात सुनी थी जब कि सन्तरी उनके लिए खाना लेते रहते थे मानो वे ज़िन्दा हों... इसी तरह तो मात्सो को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया था। हफ़्ते भर बाद कहीं उसके परिवारवालों को इसका पता चल पाया। मैंने लड़के से यह बताने की विनती की कि क़ैदियों को कब ले जाया जायेगा। मैं जवाब का इंतज़ार कर रही थी और इसके साथ ही मेरे घुटने भी काँप रहे थे।

"इससे ज़्यादा मैं तुम्हें कुछ भी नहीं बता सकता। जितना बता दिया, उसके लिए तुम्हें शुक्रगुज़ार होना चाहिए।"

"अरे, शुक्रिया, बहुत-बहुत शुक्रिया। लेकिन मेहरबानी करके मुझे

बता दो, मैं तुमसे विनती करती हूँ। अगर तुममें तनिक भी दया-माया है तो कृपा करके मुझे बता दो।"

"मैं तुमसे कह रहा हूँ न, मैं नहीं बता सकता। क्या तुम चाहती हो, मुझे गिरफ़्तार करके गोली मार दी जाये?"

"वे तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर पायेंगे। यहाँ हम ही दोनों तो हैं। भगवान ही सिर्फ़ हमारी बात सुन सकेगा। बस इतना बता दो, कितने बजे उन्हें ले जाया जायेगा। क्या रात में? या दिन में?"

आख़िर उसे मुझपर दया आ ही गयी। "आज आधी रात को," वह बोला "लेकिन अगर तुमने किसी से यह बात कही तो..."

"इसके लिए तो तुम कभी डरो ही मत। मेरा दिमाग़ नहीं फिर गया है।"

विक्टोरिया के लिए खाना तैयार करने मैं घर की ओर दौड़ पड़ी। मैंने कुछ अंडे और एक मुर्ग़ी उबालकर, पनीर के थोड़े टुकड़ों को एक बड़ी सी नान-रोटी में लपेट लिया। खाने, चादरों के जोड़े और एक पोशाक को लपेटकर मैंने एक छोटा-सा बंडल बना लिया। आठ बजने से पहले ही मैं स्टेशन की ओर रवाना हो गयी। "जल्दी पहुँच जाऊँ, यही ठीक रहेगा," मैंने सोचा। "कौन जाने, क़ैदियों को पहले ही ले जाने का फ़ैसला कर लें। घर में बैठने से अच्छा है, स्टेशन पर प्रतीक्षा करूँ।"

जब घर पर थी, मुझे लग रहा था, विक्टोरिया जा भी चुकी है और मैं उसे अब कभी भी नहीं देख पाऊँगी। इन विचारों से मुझे घुमटा आ रहा था। दुनिया में एक भी आदमी ऐसा न था जिसके पास मैं सान्त्वना पाने जा सकती थी। अपनी छोटी-सी पोटली उठाकर मैं चल पड़ी लेकिन कमज़ोरी के कारण चलना मुश्किल हो रहा था। सड़कें अन्धेरी, धूमिल-सी थीं, रात काली थी और आकाश में तारे थे। खैर, किसी तरह स्टेशन पहुँचकर आराम करने एक बेंच में धँस गयी। वहाँ ट्रेन की प्रतीक्षा में बहुत से लोग थे।

एक आदमी मेरे पास आया और बोला, "ख़ाला, आप कहाँ जा रही हैं?"

"कहीं नहीं। मेरी लड़की को यहाँ से ले जा रहे हैं, सो मैं उसे विदा देने आयी हूँ।"

"कौन ले जा रहा है? कहाँ ले जा रहा है?"

"हुक्काम। उन्होंने उसे गिरफ़्तार किया और अब वे उसे येरेवान ले जा रहे हैं।"

"उसे गिरफ़्तार काहे को किया?"

"कहते हैं, शायद वह बोल्शेविक है।"

आदमी चुप हो गया। फिर "हूँ" कहकर आगे बोला "तुम्हें उससे बात करने देंगे?"

"क्यों नहीं? आख़िर मैं उसकी माँ हूँ। दुनिया में विक्टोरिया ही तो मेरी सब कुछ है। क्या उसे मैं दुबारा देख पाऊँगी? और क्या कोई हमें आख़िरी बार कुछ बोल लेने से रोक सकेगा?"

वह आदमी सिर हिलाते हुए चला गया। मैंने उसके पीछे सैनिकों का एक झुंड देखा।

"रास्ता छोड़ो! रास्ता छोड़ो!" उन्होंने चिल्लाकर कहा और भीड़ तितर-बितर कर दी।

माजरा क्या है? ध्यान से देखा तो मुझे क़ैदी दिखाई दे गये।

मेरा दिल बुरी तरह धक-धक करने लगा। विक्टोरिया भी ज़रूर उनके बीच होगी। सैनिक भीड़ को धकिया रहे थे लेकिन विक्टोरिया की एक झलक पाने के लिए मैं आगे बढ़ ही गयी। आँखों पर ख़ूब ज़ोर डालने के बावजूद मैं कुछ भी न देख सकी। क़ैदियों के गिर्द सैनिकों ने मज़बूत घेरा बना रखा था, रात अन्धेरी थी, आँखों में आँसू भरे थे, सो, मैं कुछ भी न देख सकी।

तभी, अन्धेरे में, सैनिकों से घिरे क़ैदियों ने इंटरनेशनल गाना शुरू कर दिया। मैं उनके गाने का वर्णन नहीं कर सकती! सभी ओर से लोग उनकी तरफ़ दौड़े पड़ रहे थे। देखते-देखते बड़ी भीड़ जमा हो गयी। विक्टोरिया की आवाज़ मैंने फ़ौरन पहचान ली। अपनी बच्ची की आवाज़ सुनकर मैं ठीक उसी तरह चीख़ पड़ी जैसे जेल के बाहर चीख़ी थी:

"मैं तेरी आवाज़ सुन रही हूँ, विक्टोरिया!"

मैंने थोड़ा क़रीब जाने की कोशिश की लेकिन जैसे ही क़दम आगे रखा, एक सैनिक चिल्ला उठा: "पीछे! पीछे चलो!"

मैंने बददुआ दी, उसका गला रुँध जाये तो अच्छा।

फिर मैंने दूसरी ओर से क़रीब जाने की कोशिश की लेकिन तभी दूसरा सैनिक चिल्लाया, "पीछे हटो!"

मुझे इतने ज़ोरों से धकेल दिया गया कि मैं गिरते-गिरते बची।

क़ैदियों ने अपना गाना जारी रखा था।

मैं फिर चीख़ना चाहती थी जिससे विक्टोरिया मेरी उपस्थिति जान ले लेकिन इंजन की बड़ी ज़ोरदार आवाज़ हुई और धड़धड़ाती हुई ट्रेन स्टेशन पर आ पहुँची।

ट्रेन के रुकते ही क़ैदियों को पहले डिब्बे में ले जाया गया। जेलों की तरह उसकी खिड़कियों पर लोहे की छड़ें लगी थीं। अपनी छोटी-सी पोटली उठाये, मैं उनके पीछे-पीछे चल पड़ी। प्लेटफ़ॉर्म पर भयानक हलचल मची थी। क़ैदी तो मेरी नज़रों से लगभग ओझल ही हो गये लेकिन सैनिकों की बन्दूकों में लगी संगीनें मुझे दिखाई दे रही थीं। जब आख़िरी क़ैदी डिब्बे में चढ़ रहा था, मैं दौड़कर वहाँ जा पहुँची, सशस्त्र सैनिक ठीक उसके पीछे खड़े थे। क्या वे चले जायेंगे और मैं अपनी बच्ची की आख़िरी झलक भी नहीं देख पाऊँगी? चाहे जो भी हो, चाहे मेरे सीने में वे संगीन भोंक दें या गाड़ी के पहियों के नीचे मुझे डाल दें, मैं विक्टोरिया से आख़िरी बार दो-एक बात करके ही रहूँगी!

उनके डिब्बे के बाहर खड़ी होकर मैंने ज़ोर से चिल्लाकर कहा: "विक्टोरिया! विक्टोरिया!"

क़िस्मत से, मैं किसे आवाज़ दे रही थी, सैनिकों को नहीं मालूम था, सो, वे कुछ नहीं बोले। लेकिन विक्टोरिया ने मेरी आवाज़ सुन ली और छड़दार खिड़की के पीछे से बोली: "मम्मी! अलविदा, मम्मी!"

"मेरी लाड़ली, मैं तेरे लिए कुछ खाने और कपड़े लायी हूँ।"

लेकिन आगे कुछ कहने का मौक़ा मुझे नहीं मिल पाया क्योंकि एक वार्डर मेरा हाथ पकड़कर, मुझे खींचकर वहाँ से ले गया। "खिसको यहाँ से! क़ैदियों से बात करने की किसी को इजाज़त नहीं!"

"उसे यहाँ से निकाल बाहर करो! उसे यहाँ आने की इजाज़त नहीं!" बड़ा वार्डर चीख़कर बोला।

"नहीं क्यों? मेरी बेटी को कहाँ ले जा रहे हो, कमीनो? मेरी बेटी बोल्शेविक नहीं, मेरी बेटी..."

मैं चीख़ती और डिब्बे के पास पहुँचने की कोशिश करती रही लेकिन उन्होंने मेरा रास्ता रोक लिया था।

"परेशान न हो मम्मी! इन जेलरों से बात न करो। मैं बोल्शेविक

हूँ और चाहे वे जो भी करें, मुझे कोई परवाह नहीं!" विक्टोरिया चीख़कर बोली।

"चिन्ता न करो। घर लौट जाओ," उसके कॉमरेडों ने मुझे आवाज़ दी।

मैं भला चिन्ता कैसे नहीं करती? धकिया-मुकियाकर डिब्बे के पास पहुँचने की कोशिश करती, मैं रो पड़ी।

हमारे इर्द-गिर्द भीड़-सी जमा हो गयी थी। क़रीब पहुँच पाने की मेरी सारी कोशिश बेकार रही। तीसरी घंटी बज गयी।

"अलविदा, मम्मी!" विक्टोरिया चीख़कर बोली।

ट्रेन जैसे ही चली, क़ैदियों ने फिर गाना शुरू कर दिया। "विक्टोरिया! विक्टोरिया!" कहती मैं उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़ी।

ट्रेन तेज़ हो गयी थी लेकिन मैं फिर भी दौड़ती रही।

उसके बाद क्या हुआ, मुझे कुछ याद नहीं। मैं सुबह होश में आयी। मैं स्टेशन पर ही थी, बारमैन के कमरे में। सफ़ेद एप्रन में एक नौकरानी मेरे पास खड़ी थी। वह मेरी ओर चिन्तित दृष्टि से देख रही थी।

"आप कैसा महसूस कर रही हैं, ख़ाला जी?" उसने पूछा। और उसने मुझे बताया कि कैसे मैं बेहोश हो गयी थी और रेलवे के दो कर्मी मुझे उठाकर ले आये थे। उन्होंने डॉक्टर को बुलाया था, होश में लाने की दवा दी थी और फिर मैं गहरी नीन्द में सो गयी थी।

कुछ देर बाद रेलवे कर्मियों की पोशाकें पहने दो नौजवान मुझसे मिलने आये। पिछली रात मुझे उठाकर वही लोग लाये थे।

"आप कैसा महसूस कर रही हैं? आप सचमुच बहादुर महिला हैं। हमने आपको 'विक्टोरिया, विक्टोरिया' चीख़ते हुए, ट्रेन के पीछे-पीछे दौड़ते देखा था। आपका दिल किस चीज़ से बना है? विक्टोरिया कौन है?"

"मेरी बेटी।"

"यही हम लोगों ने भी सोचा था।"

उन्होंने बताया कि वे दोनों ही उससे परिचित थे। "वह हम लोगों की कॉमरेड है," उनमें से एक बोला। "आप चिन्ता न कीजिए, सब ठीक हो जायेगा।"

भगवान का शुक्रिया जो लड़के इतने भले थे। उन्होंने मुझे सान्त्वना

दी, मेरे आँसू पोंछे। फिर उन्होंने चाय पेश की और मुझे एक फिटन में बैठा दिया।

जब मैं अन्दर बैठ गयी, उनमें से एक झुककर धीमे-धीमे बोला, "अगर आपको कभी भी किसी चीज़ की ज़रूरत हो, हम लोगों के पास आ जाइये। विक्टोरिया हम लोगों की कॉमरेड है और इसका मतलब है, आप हम लोगों की भी माँ हैं। कभी भी कोई मदद लेनी हो, हमारे पास आने में संकोच नहीं करना। मेरा नाम पीटर है।"

उसकी बातों से मेरी हिम्मत बँधी। यानी दुनिया में अभी भी भले लोग थे।

अचानक मुझे अपनी पोटली की याद आयी। यह ग़ायब हो चुकी थी। मुझे रोटी, मुर्गी या अंडों की चिन्ता न थी लेकिन उस में विक्टोरिया के कपड़े भी तो थे।

मुझे फिटन में आते देख पड़ोसियों को हैरानी हुई। मुझे यक़ीन था, वे एक ही बात सोचते होंगे, "यह कैसे हुआ जो कपड़े धोनेवाली फिटन पर चढ़ी चली आ रही है!"

सच पूछिये तो इससे पहले जीवन भर में मैं सिर्फ़ दो ही बार फिटन में बैठी थी। एक बार तब जब मिखाक की बीवी बीमार पड़ी थी और उन लोगों ने मुझसे घोड़ा गाड़ी ढूँढ़कर लाने कहा था। तब गाड़ीवान बोला था, "आओ, बैठ जाओ!" दूसरी बार तब बैठी थी जब मैं अभी छोटी-सी बच्ची ही थी।

घर पहुँचकर मैंने लीज़ा को बालकनी में खड़ी पाया। व्यंग्य भरी हँसी के साथ वह बोली," ऊई! देखो तो अन्ना फिटन में बैठकर कैसी शानदार महिला बन गयी है!"

उसकी हँसी मेरे दिल में चाकू की तरह धँस गयी लेकिन मैं चुप रही।

"आहा, अन्ना!" वह चीख़ी।

मुझे ऐसा बुरा लगा कि मैंने नज़र उठाकर देखा तक नहीं।

"इधर आओ, मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ।"

"क्या?"

"ऊपर आकर फ़र्श साफ़ कर जाओ।"

"ज़िन्दगी तुम्हारे लिए हमेशा से तफ़रीह रही है। लेकिन मुझपर भरोसा न रखो।"

"क्यों नहीं? बात क्या है?"

"वे विक्टोरिया को येरेवान ले गये हैं।"

और जानते हैं, उसने क्या कहा? उसने कहा, "ठीक ही है, ग़द्दार के साथ ऐसा ही होना चाहिए। लेकिन तुम इस से क्यों परेशान हो रही हो? ऊपर आओ, अड़ो मत। मैं चाहती हूँ, तुम फ़र्श साफ़ कर दो।"

मुझे गुस्सा आ गया। "क्या तुम नहीं सोचती, मैं एक माँ हूँ और मुझे अपनी बच्ची के लिए अफ़सोस है? कुतिया को भी अपने पिल्लों की फ़िक्र होती है और क्या मैं उससे भी गयी-बीती हूँ? इस समय फ़र्श साफ़ करने की स्थिति में मैं नहीं हूँ।" यह कहकर मैं नीचे चली गयी।

तब से लीज़ा ने मुझसे बातचीत बन्द कर दी, कोई काम होने पर भी नहीं कहती। घर के काम के लिए उसने दूसरी औरत ढूँढ़ ली थी। लेकिन उस औरत को बारीक कपड़े धोने नहीं आते थे। वह इतने ज़ोरों से निचोड़ती कि कपड़े फट जाते और नील इतना अधिक डाल देती मानो सब नीले रंग में रँगे गये हों।

५

दो या तीन हफ़्ते गुज़र गये लेकिन विक्टोरिया की ओर से कोई ख़बर न मिली। मैं खिन्न और चिन्तित रहती, रातों को सो नहीं पाती। हर रोज़ डाकिये की राह ताका करती लेकिन बेकार। मैंने उससे कह रखा था कि अगर अन्ना दनेलियान के नाम का कोई ख़त हो और मैं घर पर न होऊँ तो खिड़की के टूटे शीशे से वह उसे अन्दर डाल जाये। मैं नहीं चाहती थी, विक्टोरिया का ख़त लीज़ा या उसकी बेटियों के हाथ पड़े। दूसरा महीना बीत गया, फिर भी ख़त नदारद। हर तरह के ख़्याल दिमाग़ में आते-जाते रहते। कहीं उसे प्राणदंड दे दिया गया हो तो? पीटर ने मुझे सांत्वना दी। "ख़त न मिलने से चिन्ता न करो," वह बोला। "इतना मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि वे येरेवान पहुँच गये हैं। और अच्छी तरह हैं।"

मैं कई बार उससे मिलने गयी और हर बार उसने मेरे भय को दूर करने की पूरी-पूरी कोशिश की। कितना भला लड़का था वह! यह बात

वह हमेशा कहता, "भूलियेगा मत, जब भी किसी चीज़ की ज़रूरत हो, मेरे पास आ जाइये। मैं आपके बेटे-सा हूँ और आप मेरी माँ की तरह हैं।"

लेकिन बहुत ज़रूरत में रहने पर भी मैंने कभी उससे मदद नहीं माँगी थी। मैं भला उससे पैसे कैसे माँग सकती थी?! एक महीना और फिर दूसरा हफ़्ता भी गुज़र गया। तब कहीं मुझे एक छोटा-सा रुक्का मिला। उसमें लिखा था, "प्यारी मम्मी, मैं अच्छी तरह हूँ। हिम्मत रखो, मेरे लिए परेशान न हो। विक्टोरिया।"

हाँ, ठीक यही तो लिखा था: "मेरे लिए परेशान न हो।" और तब जब मैं सोती-जागती उसी के लिए चिन्तित रहती थी।

कुछ ही समय बाद उसका एक और रुक्का मुझे मिला।

नवम्बर में जब छह महीने गुज़र चुके थे और चिन्ता के मारे मेरा बुरा हाल था, मैं ढाढ़स करके पीटर के पास जा पहुँची।

"मैं येरेवान जाकर विक्टोरिया को देखना चाहती हूँ, पीटर।"

"अब उसे कोई ख़तरा नहीं। आपके जाने का काई कारण नहीं दिखता। मुझे ख़बर मिली है, कॉमरेड विक्टोरिया अच्छी तरह हैं," उसने कहना शुरू किया।

"लेकिन मुझे जाना चाहिए। बस मैं उसे एक नज़र देख भर लेना चाहती हूँ।"

"क्या आपके पास गाड़ी का भाड़ा है?"

"नहीं। लेकिन मेरे पास एक कालीन है। मैं उसे बेच सकती हूँ।"

पीटर पल भर को चुप रहा।

"देखिये, अगर आपने सचमुच जाने का निश्चय कर लिया है तो भाड़े पर अपनी आख़िरी जमा-पूँजी ख़र्च करने की कोई ज़रूरत नहीं। बतौर अपनी माँ, मैं आपको गाड़ी पर बैठा दूँगा। मैं बिना भाड़ा दिये यात्रा कर सकता हूँ, मुझे ऐसा हक़ है।"

"ओह, शुक्रिया तुम्हें, बेटे। भगवान तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी करे।"

"यह तो मेरा फ़र्ज़ है। मैं कॉमरेड विक्टोरिया का बहुत ऋणी हूँ। लेकिन येरेवान पहुँचकर आप कहाँ ठहरने का इरादा रखती हैं?"

मैंने तो इस बारे में सोचा ही नहीं था। सड़कों पर तो सो नहीं सक-

तो और कोई परिचित भी न था। मौसम भी ठंडा हो गया था। पहाड़ों पर तो बर्फ़ गिरनी भी शुरू हो गयी थी।

"अरे, यह तो मुझे सचमुच नहीं मालूम, पीटर। येरेवान में तो मैं किसी को जानती भी नहीं। मैं पहले कभी वहाँ गयी भी नहीं। मैं तो जीवन में कभी ट्रेन पर भी नहीं चढ़ी हूँ।"

यह सच था। अपने शहर से बाहर मैं कभी नहीं गयी थी। हाँ, पहाड़ियों पर सारिगिउख की तीर्थयात्रा ज़रूर की थी लेकिन उसकी भला क्या गिनती।

मैं गर्मियों में लोगों को छोड़ने, डिब्बे में बक्से वग़ैरह ठीक से रखने में मदद करने स्टेशन तो अक्सर आती रहती थी लेकिन ख़ुद कभी भी कहीं नहीं जा सकी।

"किसी बात की चिन्ता न कीजिए। मैं अपने एक परिचित कंडक्टर से कह दूँगा। वह आपको आर्तुश के पास ले जायेगा। आर्तुश मेरा घनिष्ठ मित्र है, येरेवान में स्टेशन के पास ही रहता है।"

भला हो पीटर को, उसने वैसा ही किया।

एक पुराना स्कर्ट, स्वेटर और कुछेक मोज़े–जो कुछ विक्टोरिया के बचे-खुचे कपड़े थे, उन्हें बाँधकर मैंने एक छोटी-सी पोटली बना ली। दूसरी पोटली में थोड़ी खाने-पीने की चीज़ें रख लीं। फिर एक के ऊपर एक कई कपड़े पहनकर ऊपर से शॉल डाल ली। दरवाज़े पर ताला लगा दिया।

"इतनी दूर जा रही हूँ और कौन जाने कभी लौट भी पाऊँगी या नहीं। क्या मालूम क्या हो, सो, सच्चे दिल से इन लोगों से भी अलविदा कह देनी चाहिए। दरवाज़े में ताला तो लगा दिया है लेकिन फिर भी अपने कमरे पर एक नज़र रखने कह दूँगी। और फिर, मैं उनकी किरायेदार हूँ, मुझे अपने जाने के बारे में उन्हें बता देना चाहिए।" यही सब सोचती, सीढ़ियाँ तय करके मैं मिखाक के यहाँ गयी।

शाम के आठ बजने को थे। अन्धेरा हो चुका था। मिखाक-लीज़ा जैम के साथ चाय पी रहे थे। हमेशा की तरह उसने क़मीज़ के कॉलर के बटन खोल रखे थे। लीज़ा ने कश्मीरी शॉल ओढ़ रखी थी। कोने में रखे शीशे के सामने उनकी बेटियाँ अपनी नयी पोशाकों को निहारने में लगी थीं। ओह, उनकी बेटियाँ! मैं उन्हें पसन्द नहीं करती थी। चेहरे पर पावडर

पोतकर, होंठों को रँगकर वे निकल पड़तीं और स्टेशन तक सड़क पर इधर से उधर मटरगश्ती करती फिरतीं। बस यही उनका रोजाना काम था। घर पर वे हमेशा एक-दूसरे को कच्चा चबा जाने को तैयार रहतीं या माँ के साथ छीछा-लेदर में लगी रहतीं लेकिन घर से बाहर निकलते ही "अन्ना प्यारी" और "सोनिया प्यारी हो" जातीं! जैसे दोनों बड़ी अच्छी सहेलियाँ हों। घर पर वे एक-दूसरे से घृणा करतीं लेकिन बाहर कबूतरी के जोड़ों-सी गुटरगूँ करती फिरतीं।

हालाँकि मैं तो अनपढ़ औरत थी और ज्यादा कुछ जानती भी न थी, लड़कियों व औरतों का आचरण कैसा होना चाहिए, मुझे मालूम था।

लड़कियों की नज़र जैसे ही मुझपर पड़ी, वे एक-दूसरे की ओर देखकर खीं-खीं करके हँस पड़ीं।

"ज़रा देखो तो कौन चली आयी हैं!" वे बोल उठीं।

उन्होंने शायद सोचा था, मैं पैसे माँगने आयी हूँ। लेकिन मैंने उनकी मखौल भरी नज़रों पर कोई ध्यान नहीं दिया। दरवाज़े के पास अपनी पोटलियाँ रखकर, जूते उतारकर, बाँह पर शॉल डाल कर मैं मेज़ के पास जा पहुँची। मैंने झुककर कहा, "नमस्ते।"

लीज़ा ने मुँह फेर लिया और मिखाक की त्योरी चढ़ आयी। खा जानेवाली आँखों से देखते हुए वह बड़बड़ाया, "नमस्ते। क्या ऐसी कोई ख़ास बात थी जो यहाँ चली आयी?" वह बड़ी अनिच्छा से बोलता प्रतीत हुआ।

"नहीं, महाशय। मैं आशा करती हूँ, आप लोग कुशल-मंगल से होंगे। मैं येरेवान जा रही हूँ।"

शब्द मुँह से निकले नहीं कि लीज़ा बिफर पड़ी,

"तुम आयी किस लिए हो? भाड़े के पैसों के लिए? तो अब ज़रूरत पड़ने पर हमारी याद आयी है तुम्हें? तो बेकार तकलीफ़ की। उनसे जाकर उधार माँगो, जिनका तुम काम करती हो। मैंने काफ़ी देख लिया! सोचो, कितने साल हम लोगों ने तुम्हारी मदद की! 'मैं येरेवान जा रही हूँ!' तुम अपने को कुछ समझती हो न! सोचती होगी, तुम्हारे लिए हम घोड़ा-गाड़ी सजाकर तैयार रखें और उस निकम्मी बेटी से मिलने जाने के लिए तुम्हें भाड़ा दें?"

जवाब में मुझे कोई भी शब्द कहने का मौक़ा न देकर वह टप-टप बक-

ती चली गयी। मुझको दोष देने में उसने कुछ भी बाक़ी नहीं छोड़ा: नयी औरत ने कपड़े ख़राब कर दिये थे, फ़र्श कितना गन्दा पड़ा था। वह ग़ुस्से से फटी पड़ रही थी। "तो तुम येरेवान चल दीं? ज़रा क़रीब तो आओ, मैं तुम्हें मज़ा तो चखा दूं, नमकहराम, जानवर कहीं की!"

वह बक-बक बन्द करे, इसकी प्रतीक्षा में मैं अब तक चुप रही थी। मैं जानती थी, उसे नुक़सान सहना पड़ रहा था। लेकिन जब उसने "नमकहराम जानवर" कहा तो मेरा धैर्य जवाब दे गया।

"तुम ख़ुद नमकहराम हो! मुझे तुम्हारे पैसों या रोटी-पानी की कोई ज़रूरत नहीं। तुम्हारी कोई चीज़ मैं छूऊँगी भी नहीं। मैं तो अलविदा कहने आयी हूँ, पैसे उधार माँगने नहीं।"

मैं इस तरह आपे से बाहर हो उठी थी कि मुझे मिखाक के सुन लेने की भी कोई परवाह न रही थी और न ही मैंने उसकी लड़कियों की ओर कोई ध्यान दिया, जिनके पेट में हँसते-हँसते बल पड़ रहे थे।

"तुम काहे को हँस रही हो, जरठ कुमारियो? हँसी तो तुम लोगों पर आनी चाहिए। कोई आदमी गुज़र तो जाये तुम्हारे प्रेम-निवेदन बिना! किसी को लटके में फाँस लेने हर रोज़ स्टेशन की ओर निकल पड़ती हो।"

इस पर उनकी हँसी रुक गयी।

"चुप रहो! मेरे घर में इस तरह बोलने की हिम्मत न करो, नहीं तो मैं तुम्हें गिरफ़्तार करा दूंगा!" मेज़ पर घूँसा मारते हुए मिखाक गरज पड़ा।

"किस बात के लिए?"

"जो कुछ तुम बोली हो, उसी के लिए।"

"तो फिर अपनी बीवी को गिरफ़्तार क्यों नहीं करा देते? उसकी बात तो कहीं ज़्यादा घटिया थी।"

"चुप रहो!"

"इसे निकाल बाहर कर दीजिए, पापा! पागल है। जब से इसकी लड़की को गिरफ़्तार किया गया है, यह पागल हो गयी है।"

"पागल तो तुम लोग हो! बेशर्म! तुम सब को मेरी बददुआ लगे!"

जूते पहन, बंडल उठाकर मैं वहाँ से चल पड़ी। मुझे अपने दिल से एक बोझ-सा उतर गया महसूस हो रहा था। अपनी बात कह डालने की मुझे ख़ुशी थी। मुझे विक्टोरिया की याद हो आयी जो कहा करती थी,

अमीरों का कोई ज़मीर नहीं होता, वे तभी तक नेकदिली दिखाते हैं जब तक कोई आदमी उनके लिए उपयोगी होता है, अपना स्थान जानता है। हूबहू ऐसा ही हुआ था। दरवाज़े पर एक और ताला लगाकर मैं स्टेशन की ओर रवाना हो गयी। पीटर को मैंने भीड़ में अपनी प्रतीक्षा में खड़ा देखा। उसने एक ओवरकोट पहन रखा था, हाथ में एक लालटेन थी।

"आपको देर क्यों हुई?"

"कुछ कारण हो गया था," जो कुछ हुआ था, मैं उसे बताना नहीं चाहती थी।

हम सीधे डिब्बे में चले गये। पीटर ने कंडक्टर से मेरा परिचय कराया।

"समझो मेरी माँ ही हैं। मैं चाहता हूँ, तुम इन्हें येरेवान ले जाओ। वहाँ पहले कभी नहीं गयी हैं। ध्यान रखना, इन्हें कोई तकलीफ़ न हो।"

कंडक्टर एक लम्बा नौजवान था। उसके काले कोट से एक सीटी लटक रही थी। पीटर की बातों पर वह हँस पड़ा। "फ़िक्र न करो। अगर गाड़ी रुक भी गयी तो मैं इन्हें अपने कंधों पर रखकर वहाँ ले जाऊँगा। मेरे डिब्बे के सब लोगों को देख रहे हो। तुम सोचते हो, सब को तो मैं येरेवान ले जाऊँगा लेकिन इन्हें पीछे ही छोड़ दूँगा?"

"मैं जानता हूँ, तुम ऐसा नहीं करोगे। लेकिन मैं चाहता हूँ, सफ़र में इन्हें कोई तकलीफ़ न हो। वहाँ पहुँचने के बाद इनको आर्तुश के यहाँ ले जाना। इनको अकेली मत छोड़ना। किसी बड़े शहर में पहली बार जा रही हैं।"

"ठीक है।"

तीसरी घंटी बजी और गाड़ी स्टेशन से चल पड़ी। भीड़ भरे डिब्बे में बड़ा दमघोंट-सा लग रहा था। खिड़कियाँ भी कसकर बन्द कर दी गयी थीं। अधिकांश लोग सैनिक या स्वयंसेवक थे। वे कार्स जा रहे थे। वहाँ ज़बर्दस्त लड़ाई चल रही थी। वे लड़ाई के बारे में, ऊँची क़ीमतों और नये काग़ज़ी नोटों के बारे में बातें कर रहे थे। और सब के सब लड़ाई लम्बी खिंच जाने की शिकायत कर रहे थे। घर पर रह गये लोगों को भी बड़े कठिन समय का, भुखमरी का सामना करना पड़ रहा था। मर्द वर्षों से घर से दूर थे और लड़ाई का कोई अंत ही नहीं दिखता था।

सस्ते तम्बाकू की बू से मेरे सिर में दर्द होने लगा था। धुआँ के कारण

ग्राँखें दुखने लगी थीं। लेकिन मैं चुपचाप सहती रही क्योंकि घर-परिवार से बिछुड़े इन लोगों के प्रति मुझे अफ़सोस महसूस हो रहा था। उनमें से हरेक की बीवी होगी, शायद छोटे-छोटे बच्चे भी हों और माँ-बाप भी। मैंने सोचा, कड़े तम्बाकू का सेवन भी शायद वे इसीलिए करते हैं जिससे कि पल भर के लिए बुरे ख़्यालों से पिंड छुड़ा सकें। लड़ाई का मैदान आगे था। चाहे आप किसी से भी पूछिये, "कहाँ जा रहे हो, बेटे?" जवाब मिलेगा, "मोर्चे पर। कार्स।"

"हाय! तुम्हारी माताओं का क्या हाल होगा, हाय!" उनकी ओर देखते हुए मैं ख़ुद अपने लड़के के बारे में सोचने लगी थी।

इस तरह हम आगे बढ़ते रहे। कंडक्टर जिसका नाम सेद्राक था, इधर से उधर टिकटों की जाँच करता आता-जाता रहा। आख़िर मेरे पास आया और बग़ल में बैठकर बोला: "आप कैसा महसूस कर रही हैं? आपको ट्रेन की सवारी पसन्द आयी?"

बोरियत या परेशानी से बचाये रखने के लिए वह पूरी यात्रा के दौरान मुझ से बातचीत और हँसी मज़ाक़ करता रहा। बड़ा ही अच्छा नौजवान था। पहले कभी ऐसे नौजवान को मैंने नहीं देखा था।

दूसरे दिन, सुबह में अपनी पोटली खोलकर मैंने उसे दो अंडे, मुर्ग़ी की टाँग और नान-रोटी खाने को दी।

"लो सेद्राक, मुझे तो तुम अपने ही बेटे लगते हो।"

"शुक्रिया। लेकिन येरेवान पहुँचकर तुम मुझे क्या दोगी?" वह बोला और हँस पड़ा।

सैनिक अलेक्सान्द्रोपोल में उतर गये। हम दिन भर डिब्बे में ही रहे। आधी रात को ट्रेन येरेवान पहुँची। उन दिनों ट्रेनें समय पर नहीं चल रही थीं। लोगों का कहना था, कोयले की कमी थी और रेल-मार्गों की मरम्मत भी होनी थी। येरेवान में प्लेटफ़ॉर्म पर कोई रोशनी न थी। प्रतीक्षालय में बस टिमटिमाती-सी रोशनी हो रही थी। सभी मुसाफ़िरों के चले जाने के बाद सेद्राक मुझे आर्तुश के मकान ले गया।

आर्तुश भी रेलवे में ही काम करता था। वह पास ही में एक पत्थर के मकान में रहता था। उसकी बीवी रूसी थी। उसके भूरे बालों और नीली आँखोंवाले दो बच्चे थे। मैं पीटर की परिचिता हूँ, यह मालूम होने पर

उसने सच्चे दिल से मेरा स्वागत किया। मैं उसकी और उसकी बीवी की बड़ी शुक्रगुज़ार हूँ।

जब मैं सुबह में जागी, उसकी बीवी समोवर गर्म करके मेज़ सजा चुकी थी। मैंने काम में हाथ बँटाना चाहा तो वह सुनी-अनसुनी करके बोल उठी, "नहीं, नानीमाँ, तुम काफ़ी लम्बा सफ़र तय करके आयी हो। जाओ, थोड़ी देर और सो लो।"

लेकिन मैं येरेवान क्या सोने आयी थी? विक्टोरिया को देखने के लिए मैं तड़प रही थी। जब मैं कपड़े वगैरह बदल चुकी थी, आर्तुश आया। उसकी बीवी ने आमलेट बना लिया जिसे हम लोगों ने जैम और चीनीवाली चाय के साथ खाया। अब तक की घटना के बारे में नाश्ते के दौरान उसे बताकर मैं बोली, "अब मुझे क्या करना चाहिए, आर्तुश? विक्टोरिया से मैं ज़रूर मिलना चाहती हूँ।"

"मेरे ख़्याल से, इसका इन्तज़ाम हो सकता है। हम उन लोगों से तुम्हारे बहुत दूर से आने की बात कहेंगे और उससे मिलने की इजाज़त माँगेंगे।"

नाश्ते के बाद मैं आर्तुश के साथ घर से चल पड़ी। मुझसे पोटली लेकर, वह आगे-आगे चल रहा था। जेलख़ाने पहुँचकर हमने मुलाक़ात कराने का अनुरोध किया। क़िस्मत से यह मुलाक़ात का दिन था और मुझे इजाज़त मिल गयी।

उन्होंने मुझसे मिलनेवाले क़ैदी का नाम पूछा तो मैंने बता दिया, "मेरी बेटी, विक्टोरिया दनेलियान।"

अधिकारी ने एक वार्डर को बुलाकर विक्टोरिया दनेलियान को ले आने कहा।

मुझे और आर्तुश को एक दूसरे कमरे में ले जाया गया। थोड़ी ही देर बाद कॉरीडोर में आवाज़ सुनाई दी:

"विक्टोरिया दनेलियान!"

मेरा दिल पंखकटे पक्षी-सा तड़प रहा था। विक्टोरिया कैसी होगी? क्या वह ठीक-ठाक थी? क्या अब भी उसकी पोशाकें पहनने लायक रह गयी थीं?

मैं इन्हीं सब ख़्यालों में इतनी खोयी रह गयी कि मुझे जालीदार पर्दे के पीछे पुरुषों का जैकट पहने आती लड़की दिखाई ही नहीं दी। यह विक्टोरिया थी। उसका चेहरा पीला था और वह बहुत दुबली-पतली हो गयी

थी लेकिन आँखें हमेशा की तरह ही चमक रही थीं। उसके कटे बाल बढ़-कर अब कन्धों को छूने लगे थे। पर्दे के पास आकर पल भर को वह मेरी ओर देखती रह गयी। मैंने महसूस कर लिया, उसे मेरे इतनी दूर येरे-वान तक चले आने की कोई उम्मीद न थी।

"मम्मी!"

पिछले छह महीनों से मैंने उसकी आवाज़ नहीं सुनी थी।

"हाँ, मेरी लाड़ली, यह मैं ही हूँ।" बहुत कोशिश करने के बाव-जूद मैं अपने आँसुओं को नहीं रोक पायी।

"मत रोओ, मम्मी। तुम यहाँ इसलिए नहीं आयी हो। कुछ नयी ख़बर सुनाओ। तुम कैसी हो?"

हम इधर-उधर की बातें करते रहे, फिर मैंने पूछा, "तुम्हें छोड़ेंगे कब? तुम घर कब वापस आओगी?"

"जल्दी ही, मम्मी। जल्दी ही हम लोगों को रिहा कर दिया जाये-गा।" यह कहते हुए उसने पहरेदार की ओर देखा।

"ओह, इसका मतलब है, तुम्हारे मामले पर विचार किया जा चुका है!" मैं चीख़ पड़ी।

"हमें बिना किसी मुक़दमे के रिहा कर दिया जायेगा। हमारे कॉमरेड, हमको जल्दी ही आज़ाद करा देंगे।"

इस पर पहरेदार चिल्ला पड़ा, "ऐसी चीज़ों पर बात करने की तुम्हें इजाज़त नहीं! कुछ और बातें करो।"

मैं थोड़ी देर और रुकी रही। विदा होते समय मैंने दूसरे दिन घर लौट जाने का वायदा किया।

आर्तुश के घर लौटने पर मालूम हुआ तुर्कों ने अलेक्सान्द्रोपोल पर कब्ज़ा कर सभी मार्गों की नाकेबन्दी कर दी थी।

और इस तरह मैं आर्तुश के घर, येरेवान में ही टिकी रही। मैं ख़ुद को एक ग़रीब परिवार पर बोझ-सा महसूस करती लेकिन वह बोला, "इसके बारे में तो सोचना भी मत। तुम हम लोगों की माँ जैसी हो। हम चाहते हैं, तुम इसे अपना ही घर समझो। और खाने-पीने की भी चिन्ता न करो।"

"हाँ, सब कुछ ठीक-ठाक हो जायेगा," उसकी बीवी बोली।

कई दिन बीत गये। विक्टोरिया के बारे में सोच-सोचकर मैं परेशान

रहती। क्या कभी उसे रिहा करेंगे भी? "अब ज्यादा दिन इन्तजार नहीं करना पड़ेगा," मुझे दिलासा देने के लिए आर्तुश बोला।

दो दिन बाद शहर में काफ़ी परिवर्तन दिखाई देने लगा। रेलवे स्टेशन पर यह परिवर्तन ख़ास तौर से दिखाई दिया। किसी चीज़ पर विचार-विमर्श करने मजदूर ग्रुपों में एकत्र हो जाते। न जाने क्या कुछ हो रहा था। जब आर्तुश घर आया, उसने कहा, "चलो जेलख़ाने चलते हैं!"

"क्यों, आर्तुश?"

"हमारे कॉमरेडों को आज रिहा किया जायेगा। विक्टोरिया को भी।"

"यह सब कैसे हुआ?"

"सरकार बदल गयी है। सत्ता अब हम लोगों के हाथों में है।"

तभी मुझे पता चला कि मेरी बेटी की तरह वह भी एक बोल्शेविक है।

हम साथ-साथ चल पड़े। सड़कों पर छायी हँसी-ख़ुशी के आलम का मैं बयान नहीं कर सकती। जेलख़ाने के बाहर पताकाएँ लिये भीड़ खड़ी थी। एक आदमी किसी पेटी पर खड़ा होकर जेल से बाहर निकलनेवाले क़ैदियों को सम्बोधित करके भाषण कर रहा था।

"कॉमरेडो! आप लोगों को बड़ी पीड़ा व यातना झेलनी पड़ी..."

वह बोल रहा था और मेरी नज़रें विक्टोरिया को ढूँढ़ रही थीं। लेकिन ऐसी भीड़ में भला मैं उसे कहाँ ढूँढ़ सकती थी? वह कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। तभी जब वह आदमी अपना भाषण समाप्त कर चुका, पुरुषोंवाले उसी जैकेट में मुझे पेटी पर खड़ी होती विक्टोरिया दिखाई दी। वह बोली: "जिसकी हमें इतने समय से प्रतीक्षा थी, वह आख़िर साकार हो गया!"

वह कुछ देर बोलती रही और उसके पूरे भाषण के दौरान मैं रोती रही। लेकिन यह ख़ुशी के आँसू थे। जब उसका भाषण ख़त्म हुआ, भीड़ के बीच से रास्ता तय करके मैं उसकी ओर बढ़ गयी।

"विक्टोरिया!" उसका हाथ पकड़कर मैं चीख़ पड़ी।

"मम्मी!"

"मेरी लाड़ली... मैं..." हमने गले मिलकर एक-दूसरे को चूम लिया लेकिन मेरे आँसू थमते ही नहीं थे।

विक्टोरिया येरेवान में ही रुक गयी थी। मैं डेढ़ महीने तक उसी के साथ रही क्योंकि तुर्कों ने अलेक्सान्द्रोपोल पर क़ब्ज़ा कर रखा था और मैं घर वापस नहीं जा सकती थी। येरेवान में मुझे बेचैनी महसूस होती थी। पहली बात थी कि यह अनजाना शहर था और फिर मुझे अपने घर की चिन्ता भी सताती रहती थी। क्या पता, वहाँ कुछ हो-हवा हो गया हो? कहीं सामान लूट ही ले गये हों? हम एक कैफ़े में खाना खाते थे, फिर विक्टोरिया काम पर चली जाती और घर के लिए चिन्ता करती मैं कमरे में अकेली रह जाती। मैं बेसब्री से ट्रेनों के दुबारा चलने की बाट जोहती रही।

जनवरी ख़त्म होने को था जब एक दिन हमें मालूम हुआ कि कोई गाड़ी तिफ़लिस को जा रही है और उसपर कोई कमीसार होगा। विक्टोरिया ने किसी से बातचीत की और मुझे गाड़ी पर सवार करा दिया। मध्य जाड़े में मैं घर पहुँची। पाले के कारण ट्रेन का डिब्बा बुरी तरह ठंडा था और सब के सब हड्डियों तक कँपकँपा गये थे। स्टेशन पर पीटर मुझे मिल गया।

"हलो, मम्मी!" वह ज़ोरों से चिल्ला उठा।

"भगवान तुम्हारा भला करे, पीटर!"

"मुझे अपनी यात्रा का हाल बताओ। कॉमरेड विक्टोरिया कैसी हैं?"

वह सब कुछ जानना चाहता था। मैंने उसे येरेवान में अपने ठहरने के बारे में बताया और विक्टोरिया की ओर से नमस्ते कहा। वास्तव में मेरे प्रति पीटर की सहृदयता की विक्टोरिया ने ख़ास तौर से याद दिलायी थी। तभी मेरी नज़र उसके सीने के लाल फीते पर पड़ी।

"क्या तुम भी बोल्शेविक हो, पीटर?"

"जी। कॉमरेड विक्टोरिया की बदौलत।"

तो यह बात थी। तभी विक्टोरिया के बारे में उसने इतने आदर से बात की थी और मेरे प्रति इतनी सहृदयता दिखाई थी।

एक फिटन बुलाकर मुझे पोटलियों सहित उसने बैठा दिया। रास्ते में मैं घर के बारे में सोचती रही।

फिटन पर मुझे देखकर अब मेरे पड़ोसियों को कोई हैरानी नहीं होती थी। लीज़ा फाटक के पास खड़ी थी। मुझे देखकर वह ख़ुशी से चहक उठी: "अन्ना! कितनी अच्छी बात है जो तुम लौट आयी! हम सोच

रहे थे, कहीं तुम्हें कुछ हो न गया हो। क्या तुम सही सलामत आयीं, रास्ते में बीमार नहीं पड़ीं?"

मैं कुछ न बोली।

"तुम्हारी प्रतीक्षा में सड़क देखते-देखते, सच पूछो तो हमारी आँखें दुखने लगीं। हम इतने चिन्तित थे कि क्या कहें," वह आगे बोलती गयी। फिर उसने चाय पीने के लिए मुझे ऊपर चलने को आमंत्रित किया। "आओ, आओ! मैं जानती हूँ, यात्रा के कारण थकी और ठंड से परेशान हो। एक प्याला गरम चाय पीओगी, बस सब ठीक हो जायेगा। समोवर अभी तक गर्म है।"

हम प्रांगण में चले आये। मिखाक हम लोगों की ओर बढ़ आया।

"अरे, यह तुम हो, अन्ना? मुझे तो अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा। तुम्हारे साथ क्या हुआ, क्या नहीं, यह सोच-सोचकर मैं परेशान हो रहा था।" उसने भी मुझे चाय पीने का निमंत्रण दिया। "ऊपर चली आओ। ठंड से तो तुम जम ही गयी होगी। आ जाओ, ऊपर आ जाओ।"

लेकिन उससे भी मैं कुछ न बोली। मैं धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर नीचे उतरने लगी। उसने मुझे आवाज़ दी, "ठहर जाओ! सुनती हो, मैं क्या कह रहा हूँ? आओ, हमारे साथ थोड़ी चाय पीओ।"

उसे शुक्रिया कहकर मैं नीचे उतरती चली गयी। मेरे दरवाज़े पर एक नया ताला लगा था। मुझे तो ऐसा लगा जैसे किसी ने जान ही काढ़ ली हो। मेरे घुटने काँपने लगे। मैं स्तब्ध रह गयी। तो किसी ने आख़िर हमें लूट ही लिया था! तो इसी कारण मुझे अपने साथ चाय पीने को प्रोत्साहित कर रहे थे जिससे मैं सदमा सहन कर सकूँ।

"यह क्या है? यह किसका ताला है?"

"ऊपर आ भी जाओ। यह हम लोगों का ताला है। चाबी हम लोगों के पास है," लीज़ा बोली।

"क्या हुआ था? किसी ने तोड़ डाला था क्या?"

"नहीं। ऊपर तो आओ। हम तुम्हें सारी बात बता देंगे।"

"ऊपर काहे को? मुझे चाबी दो और मैं देखूँ तो मुझे क्या-क्या नुक़सान सहना होगा।"

"कोई नुक़सान नहीं हुआ है। चिन्ता न करो। हम तुम्हारे दुश्मन

नहीं। हम कभी किसी को तुम्हें लूटने नहीं देंगे!" मेरे प्रति दोस्ती दिखाने की कोशिश करते हुए लीज़ा बोली। "आ जाओ। हमारे साथ चाय पीओ और हम तुम्हें सारी बात भी बता देंगे।"

छह हफ़्ते पहले तो उसने घर से बाहर निकाल फेंकने में थोड़ी ही कसर रखी थी... अब क्या हो गया था जो वे सब के सब इतने बदल गये थे? ज़िद छोड़कर मैं ऊपर चली आयी। उनके बैठकख़ाने की हालत देखकर तो मैं हक्का-बक्का ही रह गयी। कालीन, परदे, मेज़पोश कहाँ चले गये थे? वहाँ कुछ भी न था। कमरे में कई पुरानी कुर्सियाँ पड़ी थीं और कोच पर एक सादा कपड़ा बिछा था। ऐसा लग रहा था जैसे लूटा उन्हें गया था। और उन दोनों ने पहले की तरह शानदार नहीं बल्कि फटेहाल कपड़े पहन रखे थे।

बग़लवाले कमरे से उनकी बेटियाँ भी निकल आयीं।

"हलो, अन्ना! येरेवान तुम्हें कैसा लगा?"

"बुरा नहीं। दूसरे शहरों जैसा ही है।"

दोनों ने पुराने कपड़े पहन रखे थे। और उनकी पहले की उद्दंडता भी बाक़ी न थी। कोई गंभीर घटना हुई थी। या तो उनके यहाँ डाका पड़ा था या बोल्शेविकों ने उनकी क़ीमती चीज़ें जब्त कर ली थीं।

"माजरा क्या है? तुम लोगों की सारी चीज़ें कहाँ गयीं?" मैंने पूछा।

"तहख़ाने में," लीज़ा बोली।

तो वे बोल्शेविकों से भयभीत थे!

"मेरा ताला क्यों खोल लिया?"

"उसकी चिन्ता न करो। हमारा ताला बड़ा और कहीं ज़्यादा अच्छा है।"

"फिर मुझे चाबी दो। मैं जाऊँ और अपनी चीज़ों पर एक नज़र डाल लूँ। मैं चूहों को खदेड़ दूँ।"

"चूहों की फ़िक्र न करो। हमने वहाँ एक बिल्ली छोड़ रखी है।"

"हे भगवान! बिल्ली? अगर उसने मेरी प्लेटें तोड़ दीं तो?"

"नहीं तोड़ेगी। हमने सारी चीज़ें अच्छी तरह अलग रख दी हैं," लीज़ा बोली।

"कहाँ?"

"ग्रालमारी में।"

"कैसी ग्रालमारी? मेरे पास तो कोई ग्रालमारी नहीं।"

"हमने ग्रपनी ग्रालमारी में रख दिया है।"

"मेरे कमरे में तुम्हारी ग्रालमारी का क्या काम? वहाँ कैसे जा पहुँची?"

"हमने वहाँ रख दी है।"

"क्यों?"

"शायद दूसरे उसे ले जाते। सो, हमने सोचा, हमारी ग्रन्ना को किसी दूसरे से इसके इस्तेमाल की कहीं ज्यादा जरूरत है," लीज़ा बोली।

"वहाँ दूसरी चीजें भी हैं, ग्रन्ना। तुम चाहो तो उनका भी इस्तेमाल कर सकती हो," उसकी बेटियाँ बोलीं।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं! हमारी ग्रन्ना उनका इस्तेमाल करे, यही ग्रच्छा रहेगा," मिखाक बोला।

ग्रब हद हो गयी थी।

"मैं कुछ भी समझ नहीं पा रही हूँ। मेहरबानी करके मुझे चाबी दे दीजिए। मैं देखना चाहती हूँ, मेरे यहाँ न रहते, ग्रापने क्या-क्या किया है।"

"हम साथ-साथ नीचे चलेंगे," लीज़ा बोली। "ख़ास क़िस्म का ताला लगा है, तुम कभी नहीं खोल पाग्रोगी।"

जब उसने दरवाज़ा खोला, मुझे ग्रपनी ग्राँखों पर विश्वास न हो सका।

कमरा तो मेरा ही था लेकिन एकदम ग्रनजाना-सा।

दीवार से लगी ग्रालमारी खड़ी थी—प्लेटों से भरी। उनके क़ालीनों में से एक कोच पर ग्रौर एक फ़र्श पर बिछा था। म्याऊँ-म्याऊँ करती उनकी बिल्ली ग्रकड़ती चाल से हम लोगों ग्रोर बढ़ ग्रायी। उनकी शानदार कुर्सियाँ दीवार के साथ लाइन में लगी थीं, गोलमेज़ बीच में पड़ी थी। उसके ऊपर भारी भरकम मेज़पोश बिछा था। मेरी मेज़ को हटाकर एक कोने में कर दिया गया था। उनके तहियाये पर्दे इस समय उस पर ग्रटे पड़े थे। काँसे के भारी चौखटों में उनकी पेंटिंगें दीवारों पर टँगी थीं। मुझे तो ग्रपना कमरा पहचान में ही नहीं ग्राया क्योंकि वह किसी ग्रमीर ग्रादमी के मकान का कमरा प्रतीत हो रहा था। एक दूसरे कोने में निकेल की पॉलिशवाला उनका चमकदार समोवर सजा-धजा खड़ा था। ईंटवाली

अँगीठी के पास एक बड़ा-सा ट्रंक पड़ा था। मैं अन्दर झाँककर देखना चाहती थी लेकिन उसमें ताला लगा था।

"इसमें क्या है?"

"हमारे कपड़े हैं। तुम दूसरी चीज़ों का तो इस्तेमाल कर सकती हो, अन्ना, लेकिन ट्रंक को न छूना। तुम्हारी बेटी बोल्शेविक है और वे लोग तुम्हें परेशान नहीं करेंगे।"

सब कुछ स्पष्ट हो चुका था।

"नहीं, आप लोगों का बहुत-बहुत शुक्रिया। मुझे इन सारी चीज़ों की कोई ज़रूरत नहीं। जितना कुछ मेरे पास है, मैं उसी से सन्तुष्ट हूँ। इसलिए अच्छा हो, अगर इन सब को अब यहाँ से उठाना शुरू कर दें।"

"कुछ समय तक इन चीज़ों को यहाँ रहने भी दो। जो जी में आये, इस्तेमाल करना," मिखाक बोला, लीज़ा ने हामी में सिर हिला दिया।

"मुझे इनकी ज़रूरत ही नहीं। मुझे किसी से कुछ भी नहीं चाहिए। इन्हें ले जाइये!"

उन्होंने मुझ से अनुरोध शुरू कर दिया लेकिन मैंने उनकी बातें सुनीं ही नहीं। तो फिर माँ-बाप और बेटियाँ, सब मिलकर चीज़ें ऊपर उठा ले जाने में लग गये। पहले का समय होता तो उनमें से किसी ने अँगुली हिलाने की भी तकलीफ़ न की होती। लेकिन इस समय उनकी फुर्ती देखकर आप चकित रह जाते!

"जैसे हमारी चीज़ें तुम्हारी राह में बाधा बन जातीं," वे बड़बड़ाते जा रहे थे लेकिन पल भर को भी काम करने से नहीं रुके।

जब उन्होंने सब कुछ निबटा लिया, कमरे को बुहार कर मैं आराम करने बैठ गयी।

मैं और दो महीने तक शहर में रही। फिर मुझे विक्टोरिया का ख़त मिला। उसने मुझसे येरेवान आकर साथ रहने का अनुरोध किया था। मैंने अपनी सारी चीज़ें बटोरीं और कुछ को बेचकर, बाक़ी के साथ येरेवान रवाना हो गयी।

तब से दो साल गुज़र चुके हैं। मेरी बेटी काम करती है और मेरा खाना-पीना चलाती है। अब मैं किसी के लिए भी कपड़े नहीं धोती। अब

मैं अपना पूरा समय विक्टोरिया की देख-भाल में, उसके लिए खाना पकाने और घर चलाने में लगाती हूँ।

विक्टोरिया अभी भी सभाओं में जाती है। कभी-कभी वह गाँवों में जाकर महिलाओं को संगठित करती है, उन्हें लिखना और पढ़ना सिखाती है।

मुझे फिर कभी लीज़ा और उसके पति की झिड़कियाँ नहीं सुननी पड़ेंगी। अब कोई भी मुझ पर ताव नहीं दिखायेगा, जूते चमकाने, कमरे बुहारने या फ़र्श धोने नहीं कहेगा। बेटा तो ज़रूर मैं गँवा चुकी हूँ लेकिन विक्टोरिया जो है! अब मुझे कभी किसी चीज़ का अभाव नहीं सतायेगा।

और यही है मेरी कहानी।

१९२५

सुरेन ऐवाज़ियन

अन्धेरे-उजाले

बाहर से उल्लासभरी हँसी के ठहाकों और किसी किशोर की गूँजती आवाज़ आ रही थी। ट्रॉमों, यातायातों की ठन-ठन, घनघन आवाज़ें भी थीं।

अध्ययन कक्ष में एक आदमी कीलाक्षर शिलालेखों के अध्ययन में जुटा था। खिड़कियाँ पूरी खुली थीं। हल्की-हल्की बयार से उसके सफ़ेद बाल उड़ रहे थे, काग़ज़ फड़फड़ कर रहे थे लेकिन अध्येता को मानो बयार और सड़क के शोरगुल की कोई सुधि ही न थी...

लेकिन शायद कहानी की शुरुआत दूसरे ढंग से होनी चाहिए थी?

क्योंकि उल्लासभरी हँसी के यह ठहाके, किशोर, गूँजती आवाज़ और कीलाक्षर शिलालेखों को पढ़नेवाला कोई भी अध्येता न होता अगर...

बेशक, कहानी की शुरुआत दूसरे ढंग से होनी चाहिए...

* * *

अन्धेरे से जूझती, तड़पड़ाती ढिबरी की हल्की रोशनी में नौजवान औरत के चेहरे की झलक भर दिखाई दे रही थी। वह फ़र्श पर उकड़ूँ बैठी थी; पालने पर हाथ चलने का आभास होता था। काली-काली मूँछोंवाला एक आदमी सामने बैठा था। हल्की रोशनी में उसकी दाढ़ी अधिक काली और घनी लग रही थी। उसकी अवसन्न, चिन्तातुर आँखें टिमटिमाती लौ पर टिकी थीं।

मानो लौ से तादात्म्य स्थापित करती एक दराँती कोने में दमक रही

थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो ढिबरी से नहीं बल्कि उस दराँती से फ़र्श पर पड़ी टोकरी का पेंदा, दीवार से टिकी नाँद और क़िरमिज़ी किनारेवाली विशालकाय सुराही रोशन हो रही थी। पालने की चरमराहट लयपूर्वक निस्तब्धता भंग कर रही थी और कोने की ख़ाली सुराही खोखली आवाज़ में उस ध्वनि को प्रतिध्वनित कर रही थी। चट्टान में तराशी कमरे की हज़ारों साल पुरानी दीवारें ख़ामोशी की पुरज़ोर पहरुवे थीं।

और बाहर...

दूर में तेज़ गोलीबारी की आवाज़ हो रही थी। यह गोलीबारी सँकरी घाटियों में प्रतिध्वनित होती और काली अंधेरी रात में उज्ज्वल द्युतियों के रूप में दमक उठती। घरों की रोशनियाँ कब की गुल की जा चुकी थीं लेकिन चमकती, चौंकी-सी आँख की तरह एक खिड़की अभी भी अंधेरे में बाहर को झाँक रही थी।

यह दश्नाक* का मुख्यालय था। लाल सेना की ग्यारहवीं टुकड़ी की अग्रिम इकाइयाँ अगारा नदी के बायें तट पर पहुँच चुकी थीं; बस अगला प्रहार हुआ और वह आख़िरी व्यूह धराशायी हो जायेगा जिसे दश्नाक पर्वतीय आर्मीनिया कहते थे।

दश्नाक मुख्यालय के अन्तरंग कक्ष में लेफ़्टिनेंट गुलामबारोव एक किसान को फ़र्श पर पटककर उस पर कोड़े बरसा रहा था। किसान मुँह से एक भी शब्द नहीं निकाल रहा था, उसकी पत्थर-सी ख़ामोशी से लेफ़्टिनेन्ट का ग़ुस्सा और भी बढ़ता जाता। वह हर बार पहले से अधिक ज़ोरदार प्रहार करता और अधिकाधिक उत्तेजित स्वर में बोलता जाता: "तो तुम कम्युनिस्टों से नहीं लड़ना चाहते? इसी कारण तुम ख़ुद को बीमार बताते हो, क्यों?"

अन्दर चीफ़ ऑफ़ स्टॉफ़ कप्तान एनोक अगामियन एक कुर्सी पर पेटेंट चमड़े का बूट पहने ही पैर रखे, घुटने पर कोहनी टिकाये, अँगुली से नयी माउज़र पिस्तौल से खिलवाड़ करते टेलीफ़ोन पर गरजा:

"मैंने कहा, कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ तुमने कितने आदमियों को भेजा है? चुप, गधे कहीं के!" मेज़ पर अपनी पिस्तौल पटककर वह अपनी

---

* दश्नाक़ – एक आर्मीनियाई पूँजीवादी-जातीयतावादी, प्रतिक्रान्तिकारी पार्टी।

भूरी मूँछों पर ताव देने लगा। "क्या? यह न सोचना, तुम किसी तरह बच निकलोगे! घंटे भर में लेफ्टिनेन्ट गुलामबारोव वहाँ पहुँच जायेगा। अगर कोई भी हाथ-पैर से सही-सलामत आदमी वहाँ दिख जाये तो मैं उसे तुम्हारी तोंद चाक करने कह दूँगा!"

उसने रिसीवर पटककर फिर फ़ौरन ही उठा लिया।

"क्या यह स्विचबोर्ड है? खानतसाख से लाइन मिलाओ। अरे, यह तुम हो, बरख़ुरदार? क्या तुमने रसद सहित गाड़ी रवाना कर दी है? क्या?" एनोक पिस्तौल लेकर फ़ोन के क़रीब यूँ हिलाने लगा मानो आदमी को गोली मार देने की धमकी दे रहा हो। "क्या पागल हुए हो? 'असंभव है,' से तुम्हारा क्या मतलब?! क्या तुम वहाँ हाथ पर हाथ धरे बोल्शेविकों की राह देख रहे हो? मेरी बात सुनो, तुम मुसीबत बुला रहे हो। बोल्शेविक नहीं बल्कि मैं तुम्हें गोली मार दूँगा! सुन रहे हो न? मैं ख़ुद तुम्हारी ख़बर लूँगा। पौ फटने से पहले दस गाड़ी रसद हम लोगों के लिए रवाना कर दो। दूसरी बात–ग़रीब किसानों को गोली मार दो। अमीर तो ख़ुद ही ख़ुशी-ख़ुशी अपना सारा कुछ ले आयेंगे। बस!"

रिसीवर रखकर वह मूँछों पर ताव देने लगा। पहाड़ी धूप व हवा से स्पर्श-विहीन उसके गाल फूल-पिचक रहे थे।

फ़ोन की घंटी बज उठी। एनोक ने रिसीवर उठा लिया।

"चीफ़ ऑफ़ स्टॉफ़ बोल रहा हूँ... जी हाँ, जी हाँ, जनरल," वह अत्यन्त विनीत स्वर में बोला। कुर्सी से पैर हटाकर वह अटेंशन की मुद्रा में हो गया। "महामहिम, अब मैं आपको यह रिपोर्ट कर सकता हूँ कि हमारी गौरवशाली सेनाओं ने गुरिल्लों की उस टोली को नष्ट कर दिया है जिसने हमारी टुकड़ी के दायें बाज़ू पर हमला करने की कोशिश की थी। जी, जी हाँ... सारनाख़बियुर, खानतसाख़ तथा दूसरे गाँवों के बहुत से किसानों ने कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए ख़ुद को स्वयंसेवक के रूप में प्रस्तुत किया है। आपने क्या कहा, महाशय? हमारे हिस्से में रसद वग़ैरह पहुँचने में कोई देर नहीं हो रही, महाशय। घृणित दुश्मन को नेस्तनाबूत देखने के लिए किसान किसी चीज की कोताही नहीं कर रहे।"

कप्तान का पैर अनजाने ही कुर्सी पर चला गया लेकिन उसने उसे फ़ौरन हटा लिया और फिर दुबारा वह अटेंशन की मुद्रा में सीधा खड़ा हो गया।

"जी महामहिम!"

उसने बड़ी एहतियात से रिसीवर रख दिया मानो यह टूट-बिखर जा सकता है। फिर इधर-उधर चहलक़दमी करते हुए मन ही मन बोला:

"यह तो महा झूठ था, एनोक! लेकिन कहता भी तो क्या? कुत्ते ने मुझे ही गोली मरवा दी होती... उन कम्युनिस्ट हरामियों ने तो सारी दुनिया ही उलट-पलटकर रख दी है!"

"कप्तान, महाशय!" तेज़ी से दौड़कर अन्दर आते हुए गुलामबारोव चिल्लाया; अपना कोड़ा हिलाता, वह सरपट दौड़ के बाद किसी घोड़े की तरह हाँफ़ रहा था। "वे आ रहे हैं।"

एनोक ने बिस्तरे पर लोट-पोट हो अपना सिर तकिये में छुपा लिया। काश, वह भुला पाता, कभी याद न कर पाता कि बोल्शेविक अगारा पर पहुँच चुके हैं, कि किसानों में भयानक नफ़रत थी, कि वे दश्नाक को क़तई मदद देना नहीं चाहते थे, कि जनरल से वह झूठ बोला था और उसकी मर्ज़ी का आर्मोनिया अब सपनों में ही हो रहा था... फिर वह पैरों पर उछल खड़ा हुआ। "तुम कहना क्या चाहते हो?"

गुलामबारोव कुछ भी न बोला। मुँह फाड़े उसने पैर बदला—बस।

अन्तरंग कक्ष में किसान कराह उठा। फिर सिर उठाकर दरवाज़े के पीछे से आती आवाज़ों को सुनने लगा।

ढिबरी की लौ टें बोल गयी। टोकरी और नाँद को अन्धेरे ने लील लिया, हाँ, कोने की दराँती ज़रूर हल्के-हल्के दमकती रही। सुराही का क़िरमिज़ी किनारा तो गुम हो गया लेकिन सुराही आवाज़ों को पहले की तरह प्रतिध्वनित करती रही।

"मैं अब जाऊँगा, नज़ान!"

पुरुष हाथ पालने पर स्त्री के कोमल हाथ पर टिक गया।

"आधी रात का समय है! तुम कहाँ जा रहे हो, स्तेपान?!"

"मैं देखना चाहता हूँ, लोगों का यह कहना कहाँ तक सच है कि बोल्शेविक हम जैसे लोगों की रक्षा कर रहे हैं..."

कमरे में छाये घुप अन्धेरे में सुराही के पास से गुप्त स्थान से स्तेपान ने अपनी बन्दूक निकाल ली।

उसका हाथ पकड़कर नज़ान भय से चिल्ला पड़ी। बच्चा तेज़ क्रन्दन करता जाग उठा। स्तेपान बीवी को एक ओर खिसकाकर घुटने के बल पालने के पास बैठ गया। उसने नज़ान को दुबारा ढिबरी जलाने कहा, फिर धीमे से चादर हटाकर वह अपने एक साल के बेटे को स्नेहपूर्वक निहारने लगा।

"डेविड," मेहनत-मशक़्क़त से कड़ी पड़ी अँगुली से बच्चे की कोमल, गरम ठुड्डी को सहलाते हुए वह बुदबुदाकर बोला। "मैं तुम्हारे ही भले के लिए जा रहा हूँ, बेटे। अगर बोल्शेविक सचमुच अच्छे और न्यायप्रिय लोग हैं, भविष्य में तुम्हारा जीवन सुन्दर, सुखद होगा। फिर मेरे ज़िन्दा लौटने या न लौटने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।"

बच्चे का हाथ चूमकर वह कमरे से बाहर जाने लगा।

"स्तेपान!" नंगे पाँव पत्थर की दहलीज़ पर खड़ी हो, अन्धेरे में झाँकते हुए नज़ान ने चिन्ता भरी आवाज़ दी।

"अभी मैं वापस आ जाऊँगा!" अन्धेरे में स्तेपान की आवाज़ सुनाई दी। उसके जाते क़दमों की आहट धीरे-धीरे हल्की होती गयी।

हक्का-बक्का, भयभीत नज़ान वहाँ देर तक खड़ी रही। वह दूर से आती गोलीबारी की धूम-धड़ाम आवाज़ों को सुनती रही जो घाटियों में गूँजती और पहाड़ों से प्रतिध्वनित हो भीगी रात के अन्धेरे को विदीर्ण करती प्रतीत होती थीं। उसके इर्द-गिर्द हर चीज़ काले, भीगे भय से लिपटी थी... अकेला बच्चा कमरे में ज़ोरों से रो उठा।

पौ फटते ही लाल सेना के आदमियों ने दुबारा हमला किया लेकिन वे असफल रहे। दश्नाक ऊपर पहाड़ों पर मोर्चा बनाये थे और वहाँ से घाटी पर गोली-बारी किये जा रहे थे। अगारा वादी में पहुँचने का कोई दूसरा रास्ता न था। पिछले ग्यारह दिनों से लाल सेना की टुकड़ियाँ इस मोर्चे को फ़तह कर आगे बढ़ने की निष्फल कोशिश में लगी थीं।

जून की धूप भरी सुबह थी। अगारा घाटी की चोटियाँ नीले कुहरे के आवरण में थीं। सहसा अत्स्वासारा यानी उक़ाब पर्वत का उतुंग शृंग सूर्य की पहली सुर्ख़ किरण से दमक उठा।

स्तेपान उक़ाब पर्वत की घास पर लेटा था। सारी की सारी पर्वत श्रेणी उसके नीचे फैली थी। बायें तट पर मशीनगनें घड़घड़ा रही थीं।

किसी तोप के गोले के धमाके ने गोलीबारी की सारी आवाज़ें ख़ुद में समेट लीं। दश्नाकों के पास भारी तोपें न थीं, इसलिए जवाब में वे मशीन-गनों से आग बरसा रहे थे।

सूर्य कुछ और ऊपर उठ आया मानो वादी के किनारे की चोटियों को सुनहले मधु से आप्लावित कर देना चाहता हो। वहीं कम्युनिस्टों की ख़ंदक़ें बनी थीं। धूप भरी, खिलती वादी की ओर निहारते हुए स्तेपान कम्युनिस्टों के बारे में सोच रहा था।

जिस जगह वह लेटा था, वहाँ से दश्नाकों की भी सारी मोर्चाबन्दी साफ़-साफ़ दिखाई दे रही थी लेकिन वह उनके बारे में नहीं सोचना चाहता था। स्तेपान उनसे अच्छी तरह परिचित था... भेड़ की खाल का भूरा टोप लगाये एक दश्नाक मशीनगन के पीछे जा पहुँचा और मशीनगन ने आग उगलनी शुरू कर दी। उस के कारण लाल सेना के आदमी ख़ंदकों में छुपे रहने को मजबूर थे, वे दूसरा हमला नहीं कर पा रहे थे। कम्युनिस्टों ने भारी तोप से चोटियों पर गोले की मार की; घाटियाँ थर्रा उठीं और कमरे की ख़ाली सुराही की तरह ज़ोरदार आवाज़ गूँज उठी; सब कुछ गेरुई रंग की धूल के बादल से आच्छादित हो गया। जब धूल ग़ायब हुई, दश्नाकों का अछूता मोर्चा फिर से दिखाई देने लगा, मशीनगन फिर से आग उगलने लगी—लाल सेना के सैनिक सिर भी ऊपर नहीं उठा पा रहे थे।

"डेविड का जीवन और भविष्य वहाँ, नीचे उस धूप भरी खिली वादी में है। वहाँ बायें तट पर नीचे..." स्तेपान मन ही मन बोल रहा था। "इसका मतलब है, दश्नाक मेरे बच्चे पर भी गोली बरसा रहे हैं..."

भेड़ की खालवाला टोप उसने बन्दूक के नीचे रखकर सावधानीपूर्वक निशाना लिया। फिर साँस रोक, तोप चलने की प्रतीक्षा करने लगा जिस-से तोप की आवाज़ में उसकी गोली की आवाज़ दश्नाकों को सुनाई न दे।

तोप गरजी और स्तेपान ने गोली दाग दी। भेड़ की खाल का भूरा टोप पहने दश्नाक मशीनगन पर धड़ाम-से गिर पड़ा...

अपने आदमियों की हिम्मत बढ़ाता, सैनिक ठिकानों की जाँच करता दश्नाक का कमांडर तरख़ान पास ही घोड़े पर सवार था। मशीनगन के पीछे घोड़े को ले जाकर वह नीचे उतर पड़ा। सिर झटककर घोड़ा हिनहि-

नाया मानो उसे ख़तरे की बू मिल गयी हो। पिस्तौल को एक ओर खिसकाकर तरख़ान मृत व्यक्ति पर झुक पड़ा और तुरन्त झटके से उठ खड़ा हुआ तथा दूरबीन से पहाड़ की चोटियों का निरीक्षण करने लगा। वह जान गया था, मशीनगन चलानेवाले को पीछे की ओर से गोली मारी गयी थी।

एक-दूसरी से गुँथी अंगुलियों पर ठुड्डी टिकाकर स्तेपान लाल सेना के आदमियों को ख़ंदकों से निकल, घाटी की ओर दौड़कर बढ़ते देख रहा था। दूर में कहीं कोई मशीनगन चली और ख़ामोश मशीनगन भी दुबारा आग उगलने लगी।

इस बार स्तेपान ने तोप के गरजने की प्रतीक्षा नहीं की। उसने गोली दाग दी और मशीनगन ख़ामोश हो गयी।

तरख़ान की दूरबीन उक़ाब पर्वत पर ही टिकी थी। स्तेपान पल भर को हिचकिचाया, फिर उसने दुबारा गोली चला दी। इस बार उसने दश्नाक के कमांडर का निशाना लिया था। निशाना चूक जाने के लिए उसने ख़ुद को धीमे-धीमे कोसा। दश्नाकों ने उसे देख लिया था और चारों ओर से गोली की बौछार उस पर कर दी थी। उसके कन्धे में एक धमाका हुआ और पूरे शरीर में तेज़ दर्द की लहर फैल गयी।

हरी सैनिक कमीज़ोंवाले लोगों के तुमुल कोलाहल से घाटी प्रतिध्वनित हो उठी थी। वे पहाड़ी वादी के मोर्चे को तोड़कर लाल पताका के साथ दौड़े चले आ रहे थे। पहाड़ों के ऊपर उदित होते सूर्य के रंग की पताका उन्होंने सिर से ऊपर फहरा रखी थी।

स्तेपान की ताक़त जवाब दे रही थी। किसी सपने की तरह उसे दूर से आती गोलीबारी और तुमुल कोलाहल की पहाड़ों द्वारा प्रतिध्वनित आवाज़ें सुनाई दे रही थीं... सब कुछ धूमिल पड़ता जा रहा था। उक़ाब पर्वत की घास पर धीमे-धीमे बहता ख़ून उसे उगते सूर्य का रंग प्रदान कर रहा था।

"हलो! हलो! क्या यह स्विचबोर्ड है?" कप्तान फ़ोन पर दहाड़ा, फिर फूँक मारते हुए रिसीवर को वापस पटक दिया। "लाइन काट दी गयी है!" फिर वह पास ही खड़े गुलामबारोव की ओर मुड़ गया। वह अभी अपना कोड़ा लिये था। भयभीत कुत्ते की पूँछ की तरह उसका कोड़ा फड़क रहा था।

"क्या हुआ?" लेफ़्टिनेंट ने इस तरह पूछा जैसे कुछ कहना था, सो कह दिया।

कप्तान ने उसे झिड़ककर एक ओर हटा दिया।

"वे आ रहे हैं! कम्युनिस्ट आ रहे हैं!" खिड़की के बाहर कोई हर्षातिरेक से चिल्लाया और एनोक के कलेजे में तीर-सा चुभ गया।

"आप ख़ुशियाँ मना रहे हैं, क्या?" दाँत पीसता एनोक बाहर उस ओर दौड़ पड़ा जहाँ उसका कसा घोड़ा उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। उसने रक़ाब पर पैर रखा लेकिन घोड़े पर सवार न हो सका क्योंकि गुलामबारोव ने उसे गोली मार दी थी। एनोक ने लेफ़्टिनेंट की ओर ग़ुस्से से देखते हुए अपनी पिस्तौल निकालने की कोशिश की लेकिन उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया और अचानक ही सारी धरती लड़खड़ा उठी...

अपने कमांडर के घोड़े पर गुलामबारोव गाँव का रास्ता तय करता आगे बढ़ रहा था। सहसा एक गोली चली। सवारविहीन घोड़ा पीछे मुड़ गया। बन्दूक लिये जा रहे एक किसान ने घोड़े को पकड़ने की कोशिश की लेकिन गुलामबारोव के कोड़ों की मार से दुखते बदन के कारण यह उसके वश में न था!

लाल सेना के सैनिक गाँव में दाख़िल हो चुके थे। वे धूल भरे और थके लेकिन ख़ुश थे। मर्दों, औरतों और बच्चों के झुंड ने उन्हें घेर लिया था। वे सैनिकों से गले मिल रहे थे, हाथ मिला रहे थे और औरतें उन्हें सुराही भर-भरकर ठंडा दूध पेश कर रही थीं।

अपने पत्थरवाले कमरे की दहलीज़ पर नंगे पाँव खड़ी नज़ान, बेटे को बाँह में लिये स्तेपान को देख पाने के लिए लाल सेना के आदमियों को चिन्ता भरी निगाहों से देख रही थी।

काले आकाश में तारे जड़े थे। ऊपर और नीचे दूर-दूर तक तारे थे। वह कहाँ है, स्तेपान समझ नहीं पा रहा था। कहाँ था यह काला आकाश और कहाँ थे यह ठंडे तारे?! उसने अपनी स्थिति जाननी चाही लेकिन उसे अपनी भारी पलकें बन्द होती महसूस हुईं। उसने जान लिया था, अगर पलकें बन्द हो जाने दीं तो फिर कभी न खुलेंगी। दायीं बाँह वह हिला नहीं सकता था। वह बेजान हो गयी थी। बायें हाथ से थोड़े ओस कण बटोरकर वह तपते होंठों और जलते ललाट व आँखों तक ले गया। ऊपर छाये असीम अन्धेरे को वह घूरता रहा जहाँ अनगिनत सफ़ेद

रोशनियाँ जल तो रही थीं लेकिन रात के अन्धेरे को दूर करने में असमर्थ थीं। हर चीज़ धीरे-धीरे काली व अन्धेरी होती जा रही थी, सफ़ेद रोशनियाँ मन्द हो रही थीं; अब वे टिमटिमाकर पहाड़ी मकानों की ढिबरियों की छोटी पीली लौ-सी हो गयी थीं। स्तेपान को लगा, अब वह उक़ाब पर्वत पर नहीं बल्कि अपने घर में था। खुले दरवाज़े से वह अपनी बस्ती की रोशनियाँ देख सकता था। हर घर में पीली टिमटिमाती लौ थी और इस टिमटिमाहट में चिन्ता व अपरिचित भय व्याप्त था। वह डेविड के ज़ोर से रोने, नज़ान का जागकर छोड़ा गया मीठा, परिचित निःश्वास और फिर पालने के लयपूर्वक झूलने की आवाज़ सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था...

ज्यों-ज्यों उसकी बोझिल पलकें बन्द होती गयीं, पीले-पीले जुगनूँ मन्द होते-होते एक-एक करके लुप्त हो गये। एक बार फिर ओस कण बटोरकर स्तेपान ने अपने जलते ललाट और झुलसते-से होंठों को तर किया; मस्तिष्क में छायी धुन्ध छँट गयी। रात की रोशनियाँ एक बार फिर से चकमक जल उठीं। अचानक स्तेपान को महसूस हो आया कि वे तारे हैं और वह पहाड़ की एकदम ऊँची चोटी पर पड़ा है। उसने याद करने की कोशिश की और वह सफल भी रहा: अपनी बन्दूक को, उस निशाने को जो उसने धूप भरी हरी वादी पर आग उगलती मशीनगन का मुँह बन्द करने के लिए लिया था; अपने उस दूसरे निशाने की भी उसे याद आयी जिसने मशीनगन को ख़ामोश कर दिया था और लाल सेना के सैनिक खंदक़ों से उछलकर घाटी की ओर दौड़ पड़े थे। फिर उसने दश्नाक कमांडर का भी निशाना लिया था लेकिन चूक गया था। लाल सेना के लोग वादी में पहुँच गये थे। धूप में अपनी शक्तिशाली लाल पताका चमकाते वे विस्तृत पंक्ति के रूप में दौड़ते आगे बढ़ रहे थे...

"काश, वे सच्चे... दयालु हुए... तो मेरा लड़का सुख से रह पायगा..."

लेकिन उसकी बोझिल पलकें एक बार फिर बन्द हो गयीं। प्यास से उसके तपते होंठ जल रहे थे, सीने को जैसे आग में झोंक दिया गया था।

पहाड़ी घास और रात में खिलते फूलों को तर करता ख़ून अभी भी बून्द-बून्द उसकी बेजान बाँह से रिस रहा था। स्तेपान विपुल, स्याह रात में असहाय डूब गया...

* * *

बाहर से उल्लासभरी हँसी के ठहाकों और किसी किशोर की गूँजती आवाज़ आ रही थी। ट्रामों, यातायातों की ठन-ठन, घनघन की आवाज़ें भी थीं।

अध्ययन कक्ष में अधेड़ आयु का एक अध्येता किसी कीलाक्षर शिलालेख के अध्ययन में डूबा था। खिड़कियाँ पूरी खुली थीं। हल्की-हल्की बयार से उसके सफ़ेद बाल उड़ रहे थे, काग़ज़ फड़-फड़ कर रहे थे लेकिन अध्येता को न तो बयार की और न तो सड़क से आते शोरगुल की कोई सुध थी। वह सुदूर अतीत में खोया था, उस अतीत में जब मोटरें वगैरह न थीं और इनसान उड़ने का सिर्फ़ सपना ही देख सकता था, जब नगर दुर्गों से घिरे होते थे और उनकी दीवारों की ईंटों पर कीलाक्षर खुदे रहते। इन कीलाक्षरों का अर्थ हल करने में वह इस तरह परिश्रमपूर्वक डूबा था कि उसके ऊंचे ललाट पर पसीने की छोटी-छोटी बून्दें चुहचुहा आयी थीं।

सप्ताह पर सप्ताह बीतते गये। सिगरेट की राख के ढेर पर ढेर लगते गये, उसके बाल भी ज़्यादा सफ़ेद होने लगे। लेकिन वह हार माननेवाला न था। अतीत के इस दुर्दम्य अवशेष का रहस्य वह जानकर ही रहेगा!

उसके अध्ययन कक्ष का दरवाज़ा धड़ाम से खुला और एक लड़का चीखता, अन्दर दौड़ता आ पहुँचा,

"पापा!"

उस किशोर, कूजती आवाज़ से वर्तमान में लौट आये अध्येता ने अपना सिर ऊपर उठाया।

"आओ, इधर आओ, स्तेपान," उसके पिता ने कहा और अपनी एक बाँह उसके कन्धे के गिर्द डाल दी।

"इन पुराने पत्थरों को देखते रहने में आप इतना अधिक समय क्यों लगाते हैं, पापा?"

"इसलिए, भई, कि मैं चाहता हूँ, तुम अपने पूर्वजों के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जान सको, उन्होंने क्या किया, वे कैसे रहते थे..."

लड़का मुस्कराकर पत्थरों पर झुक गया। पिता अपनी कुर्सी पर पीठ की ओर टिक गये। सड़क से आता शोरगुल एक बार फिर मन्द पड़ गया। कुर्सी के हत्थे पर टिके अपने हाथ की ओर वह विचारपूर्वक देखने लगे

उसमें वृद्धावस्था के कुछ चिह्न से दिखाई देने लगे थे—शायद इधर हाल फिलहाल से ही... उसे अपनी युवावस्था की याद हो आयी। एक बार फिर से उसे अपने पिता के बारे में जानने की उत्सुकता हो आयी—वह उनके बारे में कभी भी, कुछ भी तो नहीं जान पाया था... इस धरती पर उसके पिता कोई एक भी चिह्न तो नहीं छोड़ गये थे। कोई फ़ोटो भी नहीं... माँ ने बताया था कि एक काली रात में गुप्त स्थान से उन्होंने अपनी बन्दूक उठायी थी और यह कहते हुए वह घर से चले गये थे, "मैं लौट आऊँगा!" लेकिन वह कभी नहीं लौटे थे...

अध्येता यह रहस्य नहीं जान पाया। वह नहीं जानता कि उसके पिता के अवशेष उक़ाब पर्वत के उत्तुंग शिखर पर पड़े हैं, कि उसके पिता की बहादुरी, उसके पिता की मौत ने उसके जीवन में आशा के दीप जला दिये थे, अतीत और भविष्य का अन्वेषण करनेवाला अध्येता बनना संभव कर दिया था...

मोवसेस अराज़ी

कायापलट

१

हर चीज़ बदलती थी, सिर्फ़ मुकुच नहीं बदलता।

पिछले दस वर्षों से वह चर्मशोधनालय में पहरेदार का काम कर रहा है। इस अवधि में शासन में दो बार तब्दीली आयी और चर्मशोधनालय में पाँच बार प्रबन्धक बदले गये। इसके बावजूद, मुकुच पर इन सब बातों का कोई भी प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर न होता। चाहे आप किसी से पूछें, जवाब एक ही होगा: हमेशा की तरह फटा-चीटा पहने मुकुच जहाँ पहले था, वहीं है।

जो भी नया प्रबन्धक आता, पहले दिन ही निरीक्षण के दौरान मुकुच को देखता। और हर बार, औपचारिकताएँ पूरी करने के बाद नया प्रबन्धक बड़ी अर्थपूर्ण आवाज़ में मुकुच को सम्बोधित करता,

"ठीक है, मेरे निर्देश तक अपनी जगह पर बरक़रार रहो।"

मगर ऐसा निर्देश कभी नहीं आता और मुकुच अपने स्थान पर बरक़रार रहता—उन शब्दों का अर्थ उसकी समझ के बाहर था। फिर उसे एकदम भुला दिया जाता या दूसरे शब्दों में उसकी उपस्थिति नज़र अन्दाज़ कर दी जाती। कुछ ही दिनों में नया प्रबन्धक उसे देखते रहने का यूँ आदी हो जाता कि उसे कारख़ाने का अभिन्न अंग समझने लगता।

मुकुच की शकल-सूरत में भी कोई फेर-बदल नहीं दिखाई देता। वह अधेड़ उम्र का था और इस अवस्था में लोग लम्बे समय तक ज्यों के त्यों ही लगते हैं। चौड़ी नाक और घनी दाढ़ीवाला उसका भोंडा चेहरा सूजा सूजा लगता। ध्यान से देखने पर ही उसकी बड़ी-बड़ी स्थिर आँखों में अनवरत चिन्ता व दुख के भाव देखे जा सकते थे।

जाड़ा हो या गरमी, मुकुच गंदले धूसर रंग के एक ही कपड़े हमेशा पहने रहता। सेना के ओवरकोट के चिथड़ों से बना उसका जैकेट समय बीतने के साथ अपना वास्तविक रँग गँवा चुका था। तुर्रा यह कि उसके नीचे इतनी सारी गुदड़ियाँ होतीं कि मुकुच दूर से किसी चलती-फिरती बोरी की तरह दिखाई देता। भेड़ की खालवाला ख़स्ताहाल उसका काला टोप तो ऐसा लगता मानो उसके सिर से उग आया हो, क्योंकि बालों से उसकी कोई भिन्नता न रह गयी थी।

लेकिन मुकुच के जूते, कुछ न पूछिये—उसके पूरे स्वरूप के सबसे लाजवाब पहलू थे। किसी ज़माने में वे सेना के बूट थे। अपने मालिक की सेवा पूरी कर वे मुकुच के पास आ गये थे। उस पर इतने पैवन्द, इतनी पिच्चियाँ थीं कि असली शकल की पहचान असंभव थी। पिच्चियों को यथास्थान ताँत, कीलों या तार से जोड़ रखा गया था!

हर नया प्रबन्धक पहले दिन काम पर आते ही गोल-माल हालत देखता: चर्मशोधनालय का पहरेदार ऐसे गये-गुज़रे जूते पहने है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। और हर बार नया प्रबन्धक उसके जूतों के लिए चमड़ा दिये जाने का आदेश देता। लेकिन कुछ दिन बाद मुकुच उस चमड़े को बेचकर आटा ख़रीद लेता—पुराने जूते ज्यों के त्यों उसके पैरों में चस्पाँ रहते।

सच कहा जाये तो मुकुच को इससे ज्यादा निराशा भी न होती थी। उसने यह सचाई गाँठ बाँध रखी थी कि चमड़े से नया जूता बना लेने पर भी वह दूसरे जूतों की तरह घिस जायेगा, नष्ट हो जायेगा जबकि पुराना हमेशा-हमेशा बरक़रार रहेगा।

२

पहली बार मिलने पर कोई भी मुकुच को रेफ़ूजी कहेगा। और अगर आपने उससे पूछा तो वह बतायेगा कि बचपन में वह अपने पिता के साथ फलाँ-फलाँ गाँव गया—कभी यहाँ कभी वहाँ। इस प्रकार, इस घुमन्तू आर्मीनियाई के असली ठिकाने के बारे में कोई कुछ नहीं बता सकता।

मुकुच का रेफ़ूजीपन इस बात से और भी बढ़ जाता कि उसकी मिल्कियत बस एक गुदड़ीदार बिस्तर और एक पुराना-सा काँसे का लोटा था—वह जहाँ भी जाता इन दोनों को अपने साथ रखता। मुकुच के लिए यह ठीक ही

था क्योंकि वह ऐसे ज़माने में रह रहा था जब अधिकांश आर्मीनियाई रेफ़्यूजी ही माने जाते थे।

"जब तक रोटी मुयस्सर है, किसी दूसरी चीज़ की कोई भी फ़िकर नहीं," यह उसका तकियाकलाम बन गया था।

मुकुच मय बीवी व चार बच्चों के चर्मशोधनालय के पास ही एक टूटे फूटे मकान में टिक गया था। अगर यह बिन बुलाये मेहमान न आते तो वह मकान शायद हमेशा भाँयँ-भाँयँ ही करता रहता। बायीं ओर की छत कुछ इस अन्दाज़ से धंस गयी थी कि अब या तब गिरने का भय होता।

बच्चों में सबसे बड़ा सात साल का था। वे दिन भर यूँ मेमियाते-पेंपियाते रहते कि मार्जार-शिशुओं के म्याऊँ-म्याऊँ का भ्रम होता। मुकुच इस विचित्र आवाज़ का आदी कब का हो चुका था। इसका मतलब था:

"भूख लगी है, रोटी दो!"

इसलिए जब-जब शासन में तब्दीली आती, मुकुच के दिमाग़ में बस एक ही सवाल अहम होता–रोटी का सवाल। न जाने कितने लोगों से वह दिन भर पूछता रहता: "क्या यह सच है? लोगों का कहना है, अब रोटी की क़ीमत कम हो गयी है।"

किसने कहा था वैसा? कहाँ? सच तो यह था कि किसी ने कुछ भी नहीं कहा था। बस प्रचंड लालसा के वशीभूत मुकुच ऐसी ख़बरें फैलाने को विवश होता।

सोवियत सत्ता की स्थापना के पहले वर्ष, जब उसे कारख़ाने में रोटी लाकर देने का काम सौंपा गया तो उत्तेजना के कारण वह बहुत ज़्यादा बक-बक करने लगा। कोई देखे तो यही सोचे कि सारी राशन की रोटियाँ उसी के लिए थीं। जो मिलता, उसी को रोककर वह कहता,

"मैं मज़दूरों को रोटी लाकर दूँगा।"

इस काम में उसका उत्साह देखते बनता! कन्धे पर रोटियों का बोरा उठाये वह खाद्य डिपो से कारख़ाने के चक्कर लगाता दौड़ता रहता। रोटी की निकटता और उसकी मादक ख़ुशबू इतनी प्रलोभनकारी थी कि वह बोरे से चेहरा सटाकर ज़ोरों की साँस लेने से ख़ुद को नहीं रोक पाता। वह सपना देखा करता कि एक दिन वे उसे एक बड़ी-सी रोटी देकर कहेंगे,

"लो, यह लो मुकुच!"

लेकिन राशन बँट जाने और बोरे के ख़ाली हो जाने के बाद उसके

सपने भी ग़ायब हो जाते। कड़ाई से राशन में मिलती रोटी का बहुत थोड़ा-सा हिस्सा ही उसके पेट में पहुँच पाता।

किसी ऐसे दिन जब बेकरी में रोटी तैयार होने में देर हो जाती और खाद्य डिपो में मुकुच को घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती, उसके प्राण सूखने लगते। उसे लगता, अब कोई बाहर आयेगा और कह देगा,

"रोटी ख़त्म हो गयी। अब प्रतीक्षा करने से कोई लाभ नहीं।"

लेकिन फिर ख़ुद ही अपने-आप से कहता, चर्मशोधनालय के मज़दूर और प्रबन्धक दोनों ही अपने राशन यहाँ से पाते हैं। इसलिए, स्वभावतया, कोई भी प्रबन्धकों को बिना रोटी के रखने की हिम्मत नहीं करेगा। हाँ, अगर सब मुकुच जैसे ग़रीब लोग होते तो फिर कोई उम्मीद न थी लेकिन चूँकि प्रबन्धक और उस जैसे महत्वपूर्ण लोग भी कारख़ाने में काम करते हैं, उन्हें खाद्य डिपोवाले रोटी का राशन नहीं रोक पायेंगे।

मुकुच दिन में कई बार घर आता। हर बार मुकुच और उसकी बीवी के बीच बड़ी गड़बड़ी मचती: पेट की भूख इस उम्मीद में उसे घर ले आती कि शायद बीवी ने सब्ज़ियों से कुछ खाने को तैयार किया हो और, दूसरी ओर, उसकी बीवी सोचती, शायद शौहर रोटी लाने में सफल रहा है।

निराशा चिड़चिड़ी बीवी की जिह्वा पर चढ़कर बोल उठती, उसका रोज़ का झगड़ा शुरू हो जाता,

"तो जनाब, घर आ गये हैं, क्यों? बहुत ख़ूब! यूँ ख़ाली हाथ दौड़े चले आते हैं मानो जनाब को मालूम ही न हो कि उनका भी कोई परिवार है!"

उसकी आवाज़ ऊँची ही उठती जाती और मुकुच के कानों में भिनभिनाहट होने लगती। धीरजवाला होने के बावजूद वह चीख़ पड़ता:

"अपनी ज़बान फिर चलानी शुरू कर दी! बहुत हुआ!" फिर जल्दी-जल्दी बाहर निकल जाता और उसके पीछे-पीछे, कारख़ाने तक बीवी की कोसती आवाज़ें चली आतीं।

३

सोवियत सत्ता की स्थापना से सब पर बड़ा असर पड़ा। कुछ ने ख़ुशियाँ मनायीं और जिनकी सम्पदाएँ व सामाजिक प्रतिष्ठा छिन गयी थीं, उन्होंने इसे लानतें भेजीं।

नयी सरकार के पहले दिनों की गहमागहमी, जोशीले भाषणों और लाल पताका लिए मार्च करते लोगों ने मुकुच को भी आकृष्ट किया। वह इस तरह के कई मार्चों में गया, कई सभाओं में शामिल हुआ। वह सबसे आख़िर में खड़ा होता और दत्त-चित्त सुनता रहता। कभी-कभी उसे ऐसा लगता मानो जो कुछ कहा जा रहा है, सब उसकी समझ में आनेवाली बातें हैं– आख़िर वे लोग उसी जैसे ग़रीबों के हक़ों के बारे में तो बोल रहे थे।

बहुत सारे दिन गुज़र गये। फिर रोटी की तंगी उसे पीड़ित करने लगी। उसके विचार उलझकर रह गये। सुने गये भाषण उसे समझ में न आनेवाले प्रतीत हुए।

और इस प्रकार नयी सरकार के दिनों पुराना सवाल फिर से उभरकर सामने आने लगा और मुकुच यह कहने का मौक़ा कभी नहीं चूकता,

"क्या यह सच है? सुना है, रोटी का राशन बढ़नेवाला है।"

किसने कहा था ऐसा? किससे यह बात कही गयी थी? पहले की तरह यह अब भी रहस्य बना था।

रोटी के अलावा हर बात को, सारे भाषणों को मुकुच बेकार की बकवास समझता। उसके मुताबिक़ ये सारी चीज़ें "ऊँचे ओहदे" वालों के लिए अच्छे भोजन के बाद मनबहलाव के अच्छे साधन थीं।

उसके मुताबिक़ "ऊँचे ओहदे" वाले वे लोग थे जो शहरी कपड़े पहनते थे और थोड़ा बहुत पढ़ सकते थे। सोवियत कार्यालय अधिकारियों को वह इसी तरह अभिहित करता। हालाँकि उसकी आँखों के सामने ही उन्हें रोटी व खाने-पीने के सामानों का राशन मिलता था, तनख़्वाह भी उन्हें उसकी मौजूदगी में मिलती थी लेकिन मुकुच को पूरा यक़ीन था कि उन्हें कहीं दूसरी जगह अतिरिक्त तनख़्वाह व राशन की अदायगी की जाती थी।

"ग़रीब लोग खाये बिना रह सकते हैं लेकिन ऊँचे ओहदेवालों को फाकामस्ती की आदत नहीं," मुकुच अपने मन में कहता।

बचपन से ही मुकुच इन सारी दुनियावी बातों का आदी हो चुका था और इन पुरानी धारणाओं ने उसके मन में गहरी जड़ें जमा ली थीं। उन्हें दूर करना कठिन था।

फिर भी दुनिया कितनी बदल गयी थी! मुकुच की बहुत सारी आँखों देखी और कानों सुनी बातें थीं। जो पहले राजे बने थे, अब रंक हो गये थे और ऊँचे ओहदों पर अब नीचे तबक़ों के लोग आ गये थे। चाहे जो भी हो, हर चीज़ के बारे में मुकुच की अपनी ही राय थी।

"इसमें तो कोई सवाल ही नहीं उठता," वह मन ही मन कहता। "सब का एक-दूसरे को 'कॉमरेड' कहना, सुनने में अच्छा लगता है।" यह शब्द मुकुच को पसन्द था। लेकिन फिर सब उसे पहले की तरह सिर्फ़ मुकुच कहने पर क्यों आमादा थे? कोई भी उसे इस तरह पुकारने में तनिक भी अनुचित नहीं महसूस करता: "क्या हाल है, मुकुच?"

बेशक, इस बात से उसे कोई शिकायत न थी क्योंकि कारख़ाने में सबका व्यवहार उसके प्रति अच्छा था लेकिन चूँकि यही रिवाज चल पड़ा था, उसे भी "कॉमरेड" कहकर बुलाया जाना चाहिए। मुकुच के दिल को ठेस लगी थी।

फिर कारख़ाने का हज्जाम हमेशा उससे पिण्ड छुड़ाने की कोशिश में क्यों लगा रहता है? जब भी वह उसकी दुकान में दाढ़ी बनाने और बाल कटाने जाता, उसे बस यही सुनने को मिलता:

"तुम बाद में क्यों नहीं आते, मुकुच? इन सब के बाल काट लेने के बाद तुम्हारे लिए ज्यादा समय मिल जायेगा।"

न जाने कितनी बार वह उसकी दुकान के पास आकर रुका था और हर बार उसे यही शब्द सुनने को मिले थे। आख़िरकार, पूरी तरह निराश होकर, उसने वहाँ जाना ही छोड़ दिया था। झाड़ू जैसी उसकी दाढ़ी उसके आधे चेहरे पर फैली थी।

मुकुच भली-भाँति जान चुका था, हज्जाम उसकी दाढ़ी बनाने की ज़हमत नहीं करना चाहता। लेकिन मुकुच अन्धा न था। वह जानता था, यह चोर हज्जाम पुराने, घिसे उस्तरों को नयों से बदल रहा था। तौलियों व एप्रनों के लिए मिले नये कपड़ों को चुरा रहा था, वह भी ऐसी महँगाई के समय में। जैसे मुकुच जानता ही न हो कि उजड्ड चोर ने कारख़ाने की नाई-दुकान में जल्दी से जल्दी पैसे बनाने के लिए नौकरी की थी जिससे वह ख़ुद अपनी दुकान खोल ले।

मुकुच यह सब जानता था लेकिन कुछ बोलता न था क्योंकि वह बुरा आदमी बनकर हज्जाम की रोटी का टुकड़ा छीन नहीं लेना चाहता था। लेकिन अगर मुकुच को उसके बारे में फ़ैसला करने का मौक़ा दिया जाता तो वह जानता था, इस बेशर्म चोर से कैसे पेश आया जाये, जिसने उसे अपमानित किया था।

ज़ाहिर था, मुकुच को लोगों की बातों में कोई भी अच्छाई नज़र नहीं आती थी। आती भी कैसे, अगर हज्जाम जैसे लोगों को टाँग अड़ाने का मौक़ा मिला हुआ था। मुकुच ग़रीब है और ग़रीब रहेगा। दुनिया में कोई तब्दीली नहीं आयी है।

लेकिन सचमुच, मुकुच के अलावा सब कुछ बदल रहा था।

५

मुकुच के सिर सनीचर ही चढ़ा था!

अब एक नये प्रबन्धक ने कार्यभार संभाला था। वह नाटा, दुबला-पतला, चश्माधारी और ज़िद्दी आदमी था। दूसरे प्रबन्धकों के विपरीत, वह हमेशा मुकुच पर ध्यान रखता और हर दिन किसी न किसी चीज़ के लिए उसे फटकार बताता। वह हमेशा इधर-उधर दौड़ता फिरता, कोने कोने में झाँकता। मुकुच उसकी नीति तनिक नहीं समझ पाता था। परेशानी के मारे उसे पता ही नहीं लग रहा था, इस आदमी की कृपादृष्टि पाये तो कैसे। पूरा एक महीना इसी तरह बीत गया और मुकुच निराश हो चला। उसने मन में तय कर लिया, बस और कोई बात नहीं, प्रबन्धक उसे निकाल बाहर करने का बहाना भर ढूँढ़ रहा है।

फिर भी, सब कुछ सहन कर लेनेवाला मुकुच शायद इस परीक्षा से भी, सही-सलामत निकल आता लेकिन बदक़िस्मती को क्या कहिये! एक दिन सुबह में ओसारे से एक गट्ठर चमड़े की चोरी का पता चला। मुकुच की हालत उस समय कैसी रही होगी, यह बताने की ज़रूरत नहीं। प्रबन्धक दिन भर उससे पूछ-ताछ करता रहा। फिर उसे पुलिस में ले जाया गया। वहाँ भी उससे खोद-खोदकर पूछा गया। हर बार प्रबन्धक यही कहता, "तुम पहरेदार हो, यानी दोष तुम्हारा है।"

सनीचर पर साढ़ेसाती। बीवी उसके पीछे पड़ गयी।

"किसी निर्दोष आदमी को इस तरह बेइज्जत करके उसके परिवार का सत्यानाश करते कभी किसी ने सुना है! क्या इस बदक़िस्मती से बचानेवाला, हमारी हिफ़ाज़त करनेवाला कोई भी नहीं! क्या उन्हें दिखाई नहीं देता, यह सब गढ़ी-गढ़ायी बात है, चालबाज़ी है?"

"तुम किस लिए इधर-उधर चीख़े फिर रही हो?" अपने मर्दाने ढंग से उसे सान्त्वना देते हुए मुकुच ने कहा। "ज़रा मेरे बारे में भी सोचो। तुम्हारे ख़्याल से मुझे कैसा महसूस हो रहा होगा?"

लेकिन उसकी बीवी ने अपनी क़िस्मत का रोना जारी रखा। वह ख़ुद पर नियंत्रण न रख सकी। रोती रही, पड़ोसनों की दुहाई दी और उसे इस हालत में देखकर बच्चे भय से ज़ोर-शोर से क्रन्दन कर उठते।

झुटपुटा होने को था। दुख से मुकुच का दिल भी बैठा था।

कारख़ाने के अहाते में बने सीलन भरे, खिड़की रहित ओसारे में वह घुसा। एक शिलाखण्ड पर बैठकर वह ज़मीन की ओर घूरने लगा।

"तो, मेरा ख़ात्मा हुआ," वह सोचने लगा। "ज़रूर ही मुझे गिरफ़्तार किया जायेगा... वे लोग मुझे छोड़ने को नहीं... और फिर मेरा बचाव भी कौन करेगा? ठीक है, मान लो वे मुझे गिरफ़्तार कर लेते हैं। लेकिन बच्चों का क्या होगा? चमड़े को चुराया किसने? सच कहा जाये तो यह काम बस वही हरामज़ादा हज्जाम कर सकता है। क़िस्मत की ही बात है! वैसी स्थिति आ गयी है: उस जैसे झूठे इनसान की बात सुनने को प्रबन्धक तक तैयार है, मैं जानता हूँ, उसी ने प्रबन्धक से कहा होगा, चोरी पहरेदार ने की है।"

दिन रात में बदल रहा था और मुकुच के हृदय में भी अंधेरा छाता जा रहा था।

सहसा उसे अपने पीछे से एक आवाज़ सुनाई दी:

"तुम कहाँ हो, मुकुच?"

मुकुच उठ खड़ा हुआ और रास्ता टटोलता बाहर निकल आया।

यह मार्गार था, मज़दूरों में एक।

"तुम कहाँ थे, मुकुच? मैं घंटे भर से तुम्हें ढूँढ़ रहा हूँ। चले आओ।"

मुकुच ख़ामोशी से उसके पीछे चल पड़ा।

"अब शायद कुछ और भी गढ़ लिया है," मुकुच ने सोचा। तिस पर क़िस्मत की मार, मार्गार ने उसे अगली क़तार में बैठा दिया था। ज़ाहिरी तौर पर मार्गार पहले से ही ऐसी व्यवस्था कर डालना चाहता था जिससे सब उसे देखें, अपमानित करें।

कितने सारे लोग थे वहाँ! और सब के सब क्रुद्ध थे। इन सब की हँसी का पात्र बनने से तो अच्छा होता कि वह मर जाता या ज़मीन फट पड़ती और वह उसमें समा जाता।

लाल मेज़पोशवाली मेज़ मंच पर रख दी गयी थी। मेज़ के साथ छह लोग बैठे थे। वह उन सब को जानता था लेकिन इस समय वे सब उसे अजनबी लग रहे थे। काश, उनसे कोई यह कहनेवाला तो होता, "मुकुच ने आपका क्या बिगाड़ा है जो उसे इतनी नफ़रत भरी नज़रों से देख रहे हैं?"

वह डरा था और शर्मिन्दा भी हुआ। मुकुच ख़ुद को जहन्नुम में महसूस कर रहा था। बाहर ख़ुशगवार वसन्त की शाम थी लेकिन उसकी हड्डी तक ठिठुर गयी थी।

बग़ल में बैठे मज़दूरों ने उससे बातें कीं, उन्होंने उस को ढाढ़स देने की कोशिश की लेकिन उसे उनके शब्द ही नहीं सुनाई दे रहे थे। उसके ख़्यालात कोसों दूर भटक रहे थे।

यही बात थी... उसका ख़ात्मा... इतने लोगों से ख़ुद को बचाने के लिए वह क्या कर सकता था और फिर, इनमें से हरेक कितनी आसानी से, कितनी विद्वता से बोल सकता था। स्वाभाविक रूप से वे प्रबन्धक के पक्ष में बोलेंगे। आख़िर वह ऊँचे ओहदेवाला था, मुकुच की तरह कोई मामूली आदमी नहीं। ज़रा देखो तो उसकी ओर, वहाँ बैठा है, चश्मे के नीचे नाक-भौंह चढ़ाये।

और मुकुच क्या कह सकता था? जैसे, "मैं एक ग़रीब आदमी हूँ और मैं क्या जानूँ, किसने चोरी की? मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं क़सम खाकर कहता हूँ, मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं मालूम।"

मुकुच की आँखें दीवार पर टँगी लेनिन की एक बड़ी-सी तस्वीर पर टिक गयीं।

"लोग उसे भला आदमी बताते हैं। काश, वह यहाँ होता तो मैं कभी ऐसे गड़बड़झाला में न पड़ता।"

बैठक की शुरुआत के लिए एक घंटी बजी। लोग उठ-उठकर बोलने को जा रहे थे लेकिन मुकुच उनकी बातें नहीं समझ पाया। वह उस समय चौंका जब साम्राक नामक एक मज़दूर बोलने आया। साम्राक की आवाज़ ऊँची थी और उसके शब्द समझने में आसान थे। आज वह कितने गुस्से में था। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वह आग उगल रहा हो। ज़रूर ही मुकुच से क्रुद्ध था... फिर भी यह बात कितनी अजीब थी: साम्राक अभी अभी बोला था, "कॉमरेड मुकुच।" अगर वह उस पर क्रुद्ध था तो फिर उसे "कॉमरेड मुकुच" कहकर क्यों सम्बोधित कर रहा था? यह तो एक आदरणीय शब्द था।

एक बात और, साम्राक जब तक बोलता रहा, प्रबन्धक को जैसे बिच्छू काटते रहे थे। वह बार-बार उठ खड़ा होता, जवाब देने के लिए अपने हाथ ऊपर उठाता और जब उससे नहीं रहा गया, तमतमाये चेहरे से वह अपने आप से बड़बड़ाता, बाहर चला गया। हालाँकि अभी साम्राक ने अपना भाषण ख़त्म भी नहीं किया था।

सब कोई उसे जाते देखते रहे। मुकुच की ठीक बग़ल में बैठे मज़दूर सेर्गो ने उस के कानों में कहा,

"देखा मुकुच, कैसे प्रबन्धक की सिट्टी-पिट्टी गुम कर दी है?"

उलझन के मारे मुकुच को कोई जवाब ही नहीं सूझा।

हालात अप्रत्याशित मोड़ ले रहे थे... अब फिर किसी ने उसे "कॉमरेड मुकुच" के नाम से पुकारा था। हाँ, वे लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे। "भूख और ठंड के बावजूद, मुकुच अपने काम पर हमेशा डटा रहा, मोर्चे के सैनिक की तरह... अगर प्रबन्धक तनिक भी भला आदमी होता तो कम से कम मुकुच के ठौर-ठिकाने के बारे में उससे कभी कुछ पूछता तो..."

नहीं, सन्देह की कोई गुंजाइश न थी। वे सब उसकी मदद कर रहे थे, वे सब उसकी रक्षा कर रहे थे! दिल से पत्थर हट गया। इमारत के अन्दर आते समय वह अपनी बेबसी पर जड़ीभूत हो रहा था लेकिन अब उत्साह से भर उठा था।

साँस रोककर वह हर वक्ता की बातें सुनता, उत्तेजित-सा इधर-उधर

देख रहा था। बड़ी अजीब बात थी, अब हर कही बात उसे समझ में आ रही थी। वह अपनी जगह से उठकर दिल में दबी हर चीज़ उंड़ेल डालना चाहता था।

अचानक मार्गार ने उसकी आस्तीन खींची।

"अगला वक्ता, कॉमरेड मुकुच हैं," अध्यक्ष ने दुहराया।

"जो दिल में है उन्हें सब कुछ बता डालो," मार्गार फुसफुसाया।

उलझन में पड़ा मुकुच उठ खड़ा हुआ। हिम्मत बटोरता, वह कुछ पलों तक ख़ामोश रहा, फिर हल्के से मोटी आवाज़ में बोलना शुरू किया। सब चुप थे। वे उसकी बातें ध्यान से सुन रहे थे।

"कॉमरेडो, हालाँकि मैं ग़रीब आदमी हूँ, मैं कभी अपनी इज़्ज़त नहीं बेचूँगा। मुझे इस चोरी के बारे में कुछ भी नहीं मालूम... मैं बस इतना ही कह सकता हूँ, मुझे फँसाया गया है। मैं आपसे, आपके ज़मीर से मदद का अनुरोध करता हूँ।"

बोलते समय वह भारी-भारी साँसें ले रहा था। अध्यक्ष ने कुछ और शब्द कहे, फिर दो-तीन अन्य व्यक्तियों ने संक्षेप में भाषण दिया। इसके बाद बैठक ख़त्म कर दी गयी।

मज़दूरों ने उसे घेर लिया।

"चिन्ता न करो, कॉमरेड मुकुच, हम तुम्हें शर्मिन्दा नहीं होने देंगे!"

वे उसकी पीठ थपथपाते, उससे बातें कर रहे थे। हर कोई उसे "कॉमरेड" कहकर सम्बोधित कर रहा था...

मुकुच बाहर सड़क पर आ गया। भावावेश के मारे उसे पता ही नहीं लग रहा था, वह आ रहा है या जा रहा है। दौड़ता हुआ घर चल पड़े या कारख़ाने में ही रह जाये, वह निर्णय नहीं कर पा रहा था। कितने सारे लोग उसके पक्ष में उठ खड़े हुए थे! और ऐसा भी हो सकता है, कभी वह महसूस कैसे नहीं कर पाया था? ऐसा प्रतीत हुआ था जैसे हज़ारों आवाज़ें एक होकर बोल रही थीं, सब कह रही थीं, "कॉमरेड मुकुच..." मुकुच का दिल इस तरह भर उठा कि हमेशा बना रहनेवाला रोटी का ख़्याल भी जाता रहा। अब अगर उसे ज़िन्दगी भी देनी पड़ी तो वह ख़ुशी-ख़ुशी दे देगा।

तीन साल बाद मैं अपने शहर लौटा।

एक दिन शाम को मज़दूरों की एक बैठक में शामिल हुआ। मैं वक्ताओं को सुन रहा था और मेरी आँखें चुस्त क़तारों पर भटक रही थीं। अनचाहे मैं इन सब की तुलना निकट अतीत से कर रहा था। कितना परिवर्तन हो चुका था!

तीसरे वक्ता के बैठने के बाद मैंने अध्यक्ष साम्राक की आवाज़ सुनी;

"अब कॉमरेड मुकुच भाषण देंगे।"

सुथरे ढंग से बाल कटाये, सफ़ाचट दाढ़ीवाला एक मज़दूर मंच पर आया। थोड़ा झेंपता-सा वह कुछ पलों तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर ऐसी भावावेशपूर्ण आवाज़ में बोलना शुरू किया जो क्रान्ति के प्रेमी मज़दूरों की ख़ासियत थी।

"कॉमरेडो, हमारे दुश्मन हमें बहुत वर्षों तक घेरे रहे हैं और अब वे हमारा गला घोंट देना चाहते हैं। भुखमरी से वे हमारा दम तोड़ डालना चाहते थे लेकिन वैसा कुछ भी न हुआ, वे नाकामयाब रहे। बलपूर्वक उन्होंने ऐसा करना चाहा लेकिन उसमें भी असफल रहे... हमारे दुश्मनों ने महसूस कर लिया है, वे दिन अब लद चुके हैं। हम अपनी आस-पास की स्थिति समझने लगे हैं। हमारी आँखें खुल चुकी हैं। और अब हमें किसी भी बात का कोई डर नहीं।"

हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। वक्ता का चेहरा मुझे जाना-पहचाना-सा लगा। बग़ल में बैठे मज़दूर से मैं पूछना ही चाहता था कि वह बोल उठा,

"तुम जानते हो, यह कौन है? यह हमारा मुकुच है।"

"नहीं! उसके ऐतिहासिक जूते और बेतरतीब दाढ़ी कहाँ हैं?"

मार्गार हँस पड़ा।

"पुराने शासन के कपड़े वह उतार चुका है। उसके जूतों और रोटी के बोरे को हम संग्रहालय रवाना कर चुके हैं। और जैसा कि तुम देख ही रहे हो, उसकी दाढ़ी उस्तरे का शिकार बन गयी है। अगर बीवी न मना करती, वह अपनी मूँछें भी सफ़ाचट करा चुका होता।"

"चोरी गये चमड़े के मामले का क्या बना?"

"भला हम लोग अपने मुकुच को किसी के जाल में फँसने छोड़ देते?"

सफ़ाचट दाढ़ी और नये जूतों व कपड़ों में मुकुच को देखकर मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न था। लेकिन सबसे ज्यादा आश्चर्य उसे मंच से बोलते देखकर हुआ! मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था, कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा।

विचारों में खोया मैं घर लौट रहा था। मैं अतीत की याद में लगा था। मैं सोच रहा था, हमारे मशहूर मुकुच का, जीवित स्मारक का, हमारे शहर की जीती-जागती प्रतिमा का क्या से क्या हो गया था। मैं चलते-चलते अतीत के बारे में सोच रहा था और साम्राक की आवाज़ मेरे कानों में लगातार गूँज रही थी: "अब कॉमरेड मुकुच बोलेंगे।"

राचिया कोचर

प्यास

धीमे-धीमे उसने पलकें ऊपर उठायीं, बिना धुन्ध ग्राँखों से देखा–हालाँकि अभी तक वह पूरी तरह होश में नहीं आ पाया था। उसका शरीर सुन्न था, चीड़ के जंगल के भीतरी हिस्सों से लगातार आ रही विस्फोटों की आवाज़ें उसे नहीं सुनाई दे रही थीं। उस दिन शीशे-सी पारदर्शी बर्फ़ की दमकती परत ने ठंडे पानी को पहली बार ढँक रखा था; मैदानों की सूखी घास, सूरजमुखी के ठूँठ और पेड़ के पत्ते–सब के सब पाले से आच्छादित थे। यह पास आते जाड़े के पहले उच्छ्वास थे।

धूप की एक किरण उसकी आँख से जा टकरायी, हल्की पीड़ा से उसकी कनपटियाँ व सिर का पिछला हिस्सा धमक उठा। धीरे-धीरे, विस्मृति की अनिश्चितता से आस-पास की चीज़ें वास्तविक आकार ग्रहण करने लगीं। यह रहा एक मकान, ढलवाँ छतवाला, जीवित प्राणी की उत्तप्त साँस की तरह पास की पहाड़ी से भाप उठ रहा था और आस-पास कुछेक वृक्ष थे। लेकिन पत्ते सफ़ेद क्यों थे? उसकी श्रवण-शक्ति भी धीरे-धीरे सजग होती जा रही थी, पहले उसे कहीं बहुत दूर से निस्तब्धता भंग करती गर्जना और बाद में पास में ही, बहुत क़रीब में मैगपाइयों की आवाज़ें सुनाई दीं।

बिना सोचे-समझे, उसने उठने की कोशिश की लेकिन फ़ौरन ही धप से गिर पड़ा किसी जीर्ण-शीर्ण छत की तरह। उसे अपने शरीर की एक-एक हड्डी ज़ोरदार चरमराती आवाज़ के साथ टूटती महसूस हुई... इससे उसे थोड़ी सान्त्वना महसूस हुई यानी इसका मतलब था–उसका दिमाग़ काम कर रहा है, वह ज़िन्दा है।

उसका मस्तिष्क धीरे-धीरे जीवन्त होता रहा। उसे याद आया, उसका नाम मिकाएल था। उसके कानों में अपना नाम गूँज उठा। जंगल के शोर में भी उसे यह सुनाई दे रहा था।

अंधेरा छंटता जा रहा था। रोशनी होने लगी थी। सूर्य उदय हो रहा था। ऐसा प्रतीत हुआ मानो सूरज उस पर जमी अपनी निगाह नहीं हटा सकेगा। अब वह अपने शरीर को महसूस कर सकता था, उसकी समय व परिवेश की चेतना लौट आयी थी... बड़ी तोपों की गरज और मशीनगनों की धड़-धड़ अधिक साफ़, अधिक क़रीब आती सुनाई देने लगी थी।

वह कितनी देर वहाँ पड़ा रहा था? उस घटना के कितने घण्टे बीत गये जब गोला-बारूद के गोदाम पर उसने जलती नलकी उछाल फेंकी थी और धरती महाभीषण विस्फोट से गूँज उठी थी, धूम्रउर्मियों ने सब कुछ अन्धेरे में छुपा दिया था? उसे अपने कॉमरेडों और भारी भरकम व शक्तिशाली शरीरवाले जनरल की जानी-पहचानी आकृति अन्धेरे से निकलती दिखाई दी। उससे विदा लेते हुए जनरल ने गले लगाकर सफलता की कामना की थी।

सारी शक्ति बटोरकर वह पट हो गया और रेंगने लगा। कष्टपूर्वक साँस लेते हुए, वह उगते सूरज की दिशा में रेंग रहा था। उसका सिर घूम रहा था, पाँव बेजान हो गये थे। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता जाता, आराम के लिए घास में, सोतों के सूखे किनारों पर ज्यादा जल्दी-जल्दी रुकना पड़ता। वह बन्दूकों की आवाज़ सुनता और अक्सर अपनी दिशा बदल देता। अब उसे बच जाने की उम्मीद हो आयी थी।

वह सारा दिन, सारी रात रेंगता रहा, कभी वह नदी के किनारे की ओर क़रीब पहुँच जाता यानी मुक्ति की ओर, कभी उससे दूर। तीसरे दिन सुबह में उसका सामना एक घुड़सवार गश्ती टुकड़ी से हो गया।

"मुझे जनरल पनफ़ीलोव के पास ले चलो," वह बोला और बेहोश हो गया। समय व स्थान की उसकी चेतना जाती रही थी।

सैनिक किसी तरह चेष्टापूर्वक उसके होंठ खोलकर थोड़ी वोद्का उसके गले में डालने में सफल रहे थे। उसके पूरे शरीर में एक आनन्ददायी गर्मी की लहर फैल गयी। अभी-अभी उड़नछू हो जानेवाली दुनिया में घायल आदमी फिर लौट आया था। फिर उसके मुँह में रोटी का एक टुकड़ा भी

किसी तरह अन्दर सरका दिया गया। उसने टुकड़े को दाँतों से काटा और उसे अपनी सारी शक्ति जवाब देती महसूस हुई।

एक बार फिर परिचित चेहरे उसकी आँखों के सामने तैर गये लेकिन अब वे वास्तविक थे, किसी थके, धुन्धग्रस्त दिमाग़ की कल्पना नहीं।

"तीख़ोन!" अपनी सारी शक्ति बटोरकर वह चिल्ला पड़ा। इस प्रयास से उसका चेहरा लाल पड़ गया था।

माथे पर एक स्नेहपूर्ण हाथ टिक गया। नहीं, वह कोई सपना नहीं देख रहा था, वास्तव में वह जनरल पनफ़ीलोव था।

"परेशान न होओ, बेटे, परेशान न होओ।"

यह वही चिन्ता भरी आवाज़ थी जिसने तीन दिन पहले कहा था:

"जाओ। हमें तुम पर विश्वास है।"

उसने जनरल को कहते सुना,

"इसे एक गिलास और दो।"

मिकाएल ने ख़ुद अपने हाथों से वोद्का पी, जनरल के पास खड़े सैनिक को गिलास पकड़ा दिया।

"हमने तो तुम्हें मरा ही सोच लिया था," पनफ़ीलोव बोला और मुस्कराया। "हमने तो तुम्हारी स्मृति में बैठक भी कर ली थी ... और देखो तुम लौट आये। तुम्हें देखकर हमें कितनी ख़ुशी हुई है, मैं इसका वर्णन शब्दों में नहीं कर सकता..."

उनके शब्दों का मतलब, उनकी आश्चर्यभरी, सुखद मुस्कानों को समझकर मिकाएल ने हैरानी से जनरल और उसे घेरकर खड़े लोगों की ओर देखा। अब उसे हर चीज़ प्यारी लग रही थी: लोग, पतझड़कालीन जंगल और युद्ध के आग-गोलों के बीच अपनी ज़िन्दगी।

"मरने से क्या फ़ायदा? मैं जीना चाहता हूँ।"

"बिलकुल ठीक!" जनरल बोला। "मरने में भी कभी देर होती है। और उसके लिए अधिक दिमाग़ खपाने की भी जरूरत नहीं।"

मिकाएल का मस्तिष्क धुन्ध से मुक्त हो चुका था, हर चीज़ रोशनी में आ रही थी।

"नाज़ियों को पराजित देखने के लिए मैं विजय दिवस तक जीवित रहना चाहता हूँ। वह दिन देख लेने के बाद मुझे मरने से कोई दुख न होगा।"

जनरल हँस पड़ा। फिर अपनी बग़ल में खड़े सैनिक की ओर मुड़कर बोला,

"तीख़ोन, तुम मेरे गवाह हो: विजय दिवस अवश्य आयेगा लेकिन तब मिकाएल मृत्यु की इच्छा नहीं कर पायेगा।"

यह समय अक्तूबर १९४१ का था।

धरती तोपों की गरज से काँप रही थी।

दिन बीते, हफ़्ते बीते। ज़मीन लाशों से पट गयी। जनरल पनफ़ीलोव लड़ाई में खेत रहे। पनफ़ीलोव डिवीजन के वीर, मिकाएल पेत्रोसियान के २८ कॉमरेड मास्को जानेवाले मार्गों पर मारे गये और उनके नाम इतिहास में अंकित हो चुके हैं। बर्फ़ीला जाड़ा बीत गया। पिछले साल बहे ख़ून के चिह्नों को पिघलती बर्फ़ अब धो-पोंछकर धरती में समा जा रही थी।

एक बार फिर वसन्त आ पहुँचा था। खेत-बाग़ हरे हो उठे, मृत सैनिकों की क़ब्रों पर पहले दूर्वादल उग आये थे। वसन्त ग्रीष्म में बदल गया।

दक्षिण में दुश्मन दोन नदी तक बढ़ आये थे। फिर इसे पारकर वे वोल्गा और काकेशस की ओर बढ़ रहे थे।

एक और पतझड़ आ गयी। फिर बर्फ़ीला उत्तरीय जाड़ा। ऐसा प्रतीत होता मानो लड़ाई कभी ख़त्म ही नहीं होगी। और इस दौरान, सारे समय मिकाएल अपने प्रति ईमानदार रहा—हमेशा प्रचण्ड समरोदधि में कूदता। कभी कभी वह सोचने लगता कि उसके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़नेवाले लोग वस्तुत: तोप के गोलों से उठनेवाले धुएँ और तोपों की गर्जन के बीच ही पैदा हुए थे, लड़ाई से अलग न तो कभी जीवन रहा था, न रहेगा।

आख़िर चिर-प्रतीक्षित घड़ी आ पहुँची... सोवियत सेना का प्रचण्ड आक्रमण शुरू हुआ जिसे दुनिया की कोई भी ताक़त नहीं रोक सकती थी।

मिकाएल व उसके कॉमरेडों को साथ लिये सेनाएँ आगे बढ़ चलीं। मिकाएल की आँखों के सामने से लाखों-लाख चेहरे गुज़र गये और उसे वे सब परिचित से प्रतीत हुए थे: पीले भूरे बाल और स्लाव जातिवाले सफ़ेद नाक-नक़्श, कोयले-सी काली काकेशियाई भौंहें और बड़ी-बड़ी नाकें।

मिकाएल को महसूस होता, वह हमेशा से इन लोगों के साथ रहा था और वह कभी उनसे अलग नहीं होगा।

और तभी एक दिन उसे मृत्यु अपरिहार्य महसूस हुई। दो अन्य कॉमरेडों के साथ मिकाएल को ख़ुफ़ियागिरी के लिए दुश्मनों के पृष्ठ भाग में भेजा गया। हफ़्ते भर वे जंगली राहों पर भटकते रहे थे, दिन में वे कुंजों-झाड़ियों में छुप जाते और रात में अपने फ़ौजी अड्डों में लौट आने के लिए रास्तों की तलाश करते। उनमें से एक घायल हो गया था। बाक़ी दोनों उसे बारी-बारी से ढो रहे थे। रात में भबूकों व राकेटों से अन्धेरा रोशन हो उठता। अधमरे कॉमरेड का शरीर उनके कन्धे तोड़े डाल रहा था। "दुश्मनों की अग्रिम सुरक्षा पंक्ति" के नाम से अभिहित स्थान को पार करते हुए, वे एक दलदल में जा पहुँचे। बर्फ़ीले पानी से उनके पैर जमने लगे। चिपचिपी दलदल उनके सीने तक पहुँच रही थी और तभी दुश्मन के गोले नैशान्ध नभ में विद्वेषपूर्वक फट पड़े।

घायल व्यक्ति का गरम-गरम ख़ून मिकाएल की गर्दन पर से चू पड़ा। "मौत का इलाक़ा" पार करते ही उन्होंने अपने मरे कॉमरेड को ज़मीन पर लेटा दिया।

यह घटना पिछले दिन हुई थी। और आज वे दोनों घनी हरी घास से होकर जंगल पार कर रहे थे। वृक्ष सुवासित थे। मिकाएल ज़ख़्मी टाँग से लँगड़ाता चल रहा था—सहारे के लिए उसने तीख़ोन का कन्धा पकड़ रखा था। पैरों तले घास मर्मर ध्वनि कर रही थी। साफ़ नीले आकाश में बादल का नामोनिशान भी न था। लेकिन जंगल के परे गोलीबारी की दीवार ने अपनी यूनिट से मिलने का उनका रास्ता अलग कर रखा था।

कुछ याद करके तीख़ोन दबी हँसी हँस पड़ा।

"याद है, आक्रमणात्मक कार्रवाई की तुम्हारी कितनी दिली इच्छा थी? तुमने कहा था, काश उस दिन तक जीवित रहा तो मरने का ग़म नहीं। यही बात तुमने जनरल से कही थी, क्यों ठीक है न? तो मेरे ख़्याल से अब वह समय आ गया है।"

"तुम्हारा मतलब मरने से है? अपने जीवन के बारे में! जब लड़ाई आधी ही जीती गयी हो, मरने की इच्छा कौन करता है? तुम्हारा मतलब है, मैं अपने देश को आज़ाद नहीं देख पाऊँगा? ओह, नहीं!

लेकिन जब हम अपनी सीमा पर पहुँच जाते हैं और पीछे मुड़कर अपने आज़ाद मुल्क को देख लेते हैं, तब अगर कोई गोली मेरा काम तमाम कर दे तो मुझे कोई परवाह नहीं। तब मैं शान्ति से मर सकूँगा, मुझे कोई अफ़सोस नहीं होगा।"

लड़ाई अविराम चलती रही। वसन्त तेज़ी से बीत गया। जंगली गेहूँ की बालियाँ भारी-भारी थीं। यह लड़ाई का चौथा ग्रीष्म था। सड़कों की धूल आदमियों के चेहरों पर, उनकी राइफ़लों व गनों पर, तोपों पर, गाड़ियों, घोड़ों की अयालों व जंगल की घास पर जम गयी थी। हर विस्फोट पर मिट्टी के फव्वारे ऊपर उछल पड़ते और श्रैप्नेल बमों की वर्षा-सी हो जाती। धरती मानो पीड़ा से कराह रही थी। शहरों और गाँवों में, जहाँ से लड़ते हुए सैनिक गुज़रे थे, सड़कों की दोनों ओर छोटे-छोटे ढूहों के रूप में नयी क़ब्रें खड़ी होती जा रही थीं। गर्मी असह्य थी। उसके बाद ज़ोरदार वर्षा हुई। गिरते पत्तों व नयी लड़ाइयों वाली एक नयी पतझड़ आयी।

एक दिन किसी उजाड़ मकान में सुविधाजनक स्थान से मिकाएल अपनी तोपों का निशाना ठीक कर रहा था। मोर्चे के इस भाग में जर्मनों द्वारा नये जवाबी हमले के हर संकेत थे। नाज़ी उसके छिपने के स्थान की ओर बढ़ रहे थे। जान ख़तरे में डालकर मिकाएल ने अपने आदमियों को छुपाव स्थल की ओर गोलाबारी का आदेश दिया। उसके आदेशानुसार गोलों की बौछार हुई।

मिकाएल की चेतना जाती रही। जब पहली बार वह सोचने की स्थिति में आया तो उसे महसूस हुआ, कोई बड़ी ही कड़वी चीज़ उसे पीनी पड़ी थी। क़रीब ही से एक आवाज़ सुनाई दी, "ख़ुशक़िस्मत है। एक खरोंच तक नहीं आयी।"

उसी शाम दुनिया के कोने-कोने में प्रत्येक भाषा में ख़बर फैल गयी: सोवियत सेना सीमा पर पहुँच गयी है।

"तुमने फिर मौत को धोखा दे दिया," तीख़ोन ने कहा और उसकी ओर देखकर मुस्करा दिया।

आर्द्र खाई में दोनों अग़ल-बग़ल पड़े थे। छिटपुट वर्षा हो रही थी। मिकाएल अपने साथी के कन्धों पर बाँहें रखकर बोल उठा, "मेरे प्यारे दोस्त, मैं अभी भी क़ाफ़ी समय तक जीने की उम्मीद रखता हूँ!"

एक और पतझड़ बीत गयी, दूसरा जाड़ा आ पहुँचा और फिर वसन्त। मिकाएल की कम्पनी व रेजीमेंट दुश्मनों के शहरों और गाँवों से गुज़र रही थी। परायी धरती की धूल उसके बूटों पर छायी थी और सिर पर अनजाना आकाश। गुलाब की झाड़ियों में कलियाँ खिल रही थीं लेकिन तोपें गरजती रहीं। सारी दुनिया लड़ाई की ख़बरों पर चिन्ता के साथ कान लगाये थी।

पोट्सडम में मिकाएल ऑपरेशन की मेज़ पर पड़ा था। उसके ज़ख़्मी शरीर का पोर-पोर जल रहा था।

मौत की छाया एक बार फिर उस पर पड़ रही थी। सर्जन उस पर झुका था। एक बार उसकी चेतना लौट आयी और वह फिर बेहोश हो गया। सर्जन के चाकू ने उसके सीने को चीर डाला था।

उस दिन एक बार फिर मिकाएल ने मौत को पराजित कर दिया।

लोग विजय-दिवस समारोह के उपलक्ष्य में आतिशबाज़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस शाम मिकाएल ने तोप छूटने की आवाज़ें सुनीं और पराये, काले आकाश को विजय की रोशनियों से चमक उठते देखा।

हरी-भरी पहाड़ी ढलानों व गहरे महाखड्डों वाली उसकी मातृभूमि वहाँ से बहुत-बहुत दूर थी। उसका बचपन, उसकी जादुई कथाएँ व अपना गाँव –सब के सब विहस उठे। मास्को भी बहुत दूर था। वहाँ राजधानी के पहुँच मार्गों पर उसने पहली बार अपनी वीरता का प्रदर्शन किया था। उसके उस उद्भट सेनापति की क़ब्र हज़ारों किलोमीटर दूर थी जिसे अपने आदमियों पर और अपनी जीत पर पूरा यक़ीन था।

दूसरे दिन सुबह में तीख़ोन उससे मिलने आया।

"तो भई, तुमने एक बार फिर मौत को छल दिया! निश्चित रूप से तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगे क्योंकि अब तो यह पक्की बात है, तुम मरना नहीं चाहोगे।"

मिकाएल ख़ुश होकर मुस्कराया।

"तुम ठीक कहते हो। हमें अभी घर भी तो लौटना है। अभी वहाँ जीवन में बहुत कुछ देखना बाक़ी है। और फिर मैं जीना चाहता हूँ! .."

"सिर्फ़ तुम ही नहीं! इसी के लिए तो हम सब लड़ रहे थे, मेरे दोस्त। जीने के लिए।" तीख़ोन ने जवाब दिया।

यह समय था मई, १९४५ का।

विगेन ख़ेचुमियाँ

सेतु

राजमिस्तरी नवसरद की नज़रें सड़क पर टिकी थीं। वह अपने इकलौते बेटे आर्मेनाक की राह देख रहा था। अपने नये पुल को वह उसी के साथ मिलकर पूरा करने की योजना बना रहा था। हालाँकि पुल पानी से ऊपर ऊँचे, धनुषाकार उठ चुका था, निर्माण पूरे ज़ोर-शोर से चल रहा था लेकिन अब तक उसका बेटा वापस नहीं लौटा था। यद्यपि उसने जर्मनी से जल्दी ही सेना से विघटित हो जाने के बारे में लिखा था।

हर वसन्त में वेगवती पहाड़ी नदी छोटे से लकड़ी के पुल के किसी न किसी हिस्से को बहा ले जाती और लेर्नाशेन गाँव के वासी बाक़ी दुनिया से कई हफ़्तों तक कट-से जाते। फिर वसन्त की बाढ़ जब उतर जाती, वे किसी तरह उसकी मरम्मत कर देते। लेकिन इस साल नदी पुल को पूरी तरह ही बहा ले गयी थी, उसका कोई चिह्न तक नहीं बचा था और लेर्नाशेन के लोगों ने माहिर पुल-निर्माता नवसरद से एक पत्थर का पुल बनाने के लिए कहा था। इसी कारण उस वृद्ध ने अपने बेटे के लौट आने से पहले ही नये पुल का काम शुरू कर दिया था।

नये पुल के निर्माण-स्थल को नवसरद बचपन से जानता था। वह नदी के उदगम और उसके लम्बे रास्ते को अच्छी तरह जानता था। नदी की निम्न विस्तृतियों में चार स्तंभोंवाला ख़ूबसूरत पुल खड़ा है जिसे उसके दादा लुनकियानोस ने बनाया था।

दोनों ओर से विशालकाय चट्टानों से घिरे एक गहरे महाखड्ड से अपना रास्ता तय करती नदी पहाड़ों से नीचे की ओर आती थी। लगता था पानी अनन्त पथरीले जंगल से होकर बह रहा था।

उसके किनारे जंगली अखरोट के पेड़ों, काँटेदार झाड़ियों और नाजुक टहनियों को पानी में डुबो रखनेवाले बेंदों से पटे थे जबकि खड्ड असंख्य चमकीले फूलों से सुशोभित रहता था।

जुलाई की सबसे तेज़ धूप ने वसन्त की हरियाली को कहीं-कहीं झुलसाकर रख दिया था और अब इन जगहों पर चौड़े, नुकीले पत्तोंवाली घास उग आयी थी। सुबह की हवा में यह खड़-खड़ कर उठती।

सुबह से शाम तक काम में व्यस्त रहने के कारण नवसरद ग्रीष्म द्वारा मुक्त हृदय से लाये इन उपहारों को नहीं देख पाया था।

रात बिताने के लिए कारीगर शाम के समय लेर्नाशेन चले जाते लेकिन वह जब उस दिन का आख़िरी पत्थर अपनी जगह पर बैठाया जा चुका होता, अपने तम्बू में सोचने के लिए चला जाता जो सेतु के पास ही था। अपनी दृष्टि-सीमा के अन्दर हर चीज़ का जायज़ा उसकी गहरी, विदग्ध आँखें ले लेतीं।

अधूरे पुल की छाया पानी को पार करती दूसरे किनारे तक पहुँच जाती थी मानो पुल को पूरा कर डालना चाहती हो। नवसरद को इसे देखना बड़ा अच्छा लगता था। जब तक अन्धेरा नहीं घिर आता और रात सारी परछाइयों को निगल नहीं लेती, वह मन ही मन बचे कंगूरों व रेलिंगों को ख़ाली जगह में भरता रहता।

सोने से पहले अपने पुरखों की याद करना उसे बड़ा रास आता था। वे सब के सब पुल-निर्माता थे।

उसके दादा लुनकियानोस ने पत्थर के सेतुओं का निर्माण किया था। अनुशासनप्रिय व परम्पराओं के पालनकर्त्ता उसके पिता खाचातुर ने भी उन्हीं का अनुसरण किया था। अपनी जवानी के दिनों में ही ख़ुद नवसरद पिता का व्यवसाय सीखा था और उसी तरह उसके बेटे आर्मेनाक ने भी उसके साथ-साथ काम किया था।

"इस बात के पचहत्तर साल तो ज़रूर बीत गये होंगे जब हमारे परिवार के लोगों ने आर्मीनिया की उन्मत्त नदियों पर सेतु बनाने का काम शुरू किया था। पचहत्तर ही क्यों, सच पूछो तो शताब्दी हो गयी," नवसरद सोच-विचार करता। "और कौन कह सकता है, पूर्वजों ने उससे पहले यही व्यवसाय नहीं अपनाया हो? सब कहीं इस बात के प्रमाण ही प्रमाण हैं: सौ, नहीं सौ साल क्यों, हज़ार साल पहले से निर्मित छोटे

बड़े सैकड़ों सेतु? पन्द्रह या बीस पीढ़ियाँ अधिक नहीं लगतीं लेकिन ज़रा सोचो, उनमें एक हज़ार या पन्द्रह सौ साल जुड़े हुए हैं..."

जो सब किया जा चुका था उनकी और अपने परिवार के श्रम के "साक्षी" पुराने पत्थरों की याद करते हुए नवसरद सोच-विचार में डूबा रहा। इस तरह सोचता-विचारता वह अपने मुख्य विचार पर आ पहुँचा: "आदि काल से मेरे पूर्वज आर्मीनिया की नदियों पर सेतुओं का निर्माण करते रहे हैं। अभी भी हम उनका निर्माण कर रहे हैं। मेरी आनेवाली पीढ़ी भी मेरे इस काम को जारी रखेगी।" और फिर उसने अपने इर्द-गिर्द यूँ देखा मानो बातचीत करनेवाला कोई परिचित व्यक्ति पास में मौ-जूद हो।

मन की आँखों से उसने अपने बेटे को देखा लेकिन बूढ़े को ऐसा प्रतीत हुआ मानो आर्मेनाक उसकी बातों पर आपत्ति प्रकट कर रहा था, उसे उन पर सन्देह था। घबराकर नवसरद ने जल्दी से बात साफ़ की,

"ठीक ऐसी ही बात है, मेरे बेटे। हमारी धरती छोटी-सी है और उन दिनों यहाँ बहुत थोड़े से लोग रहा करते थे। बहुत से लोगों द्वारा इस व्यवसाय के अपनाने की कोई ज़रूरत नहीं थी, सो, यह काम एक ही ख़ानदान को सौंप दिया गया। हमारा कुल पूरे आर्मीनिया में फैला था... दादा लुनकियानोस ने बताया था, वह येर्ज़िन्का के रहनेवाले थे, स्व० खाचातुर का जन्म मुस वादी में हुआ था। फिर वे कई वर्षों तक सासुन पहाड़ियों में रहने चले गये। तुम्हारी दादी दियारबेकिर की थीं। फिर हम दोनों—तुम और मैं, आरक्स नदी पार करके यहाँ रहने आ गये।"

नवसरद ख़ामोश हो गया। उसके फटे होंठ एकदम चिपक गये थे। उसके मन में एक सन्देह उठ खड़ा हुआ था: क्या आर्मेनाक अपनी मातृ-भूमि लौट आयेगा और लौटने के बाद, क्या अपने पिता के पुराने व्यव-साय को अपनायेगा?

"बेटे, मुझे सच-सच बता दो जिससे मैं जान सकूँ, मुझे क्या करना है," बूढ़ा बुदबुदाया। उसकी आँखें अधूरे पुल पर टिकी थीं। अन्धेरे में उसे न जाने क्यों महसूस हुआ पुल भहराकर टूट गया है।

कोई जवाब न पाकर बूढ़ा फिर ख़ामोश हो गया और रात में होनेवा-ली बहुत-सी आवाज़ें सुनने लगा।

चट्टानों की दरारों में नदी से आनेवाली बयार सनसना रही थी; घासों से किसी कीड़े के रेंगकर चलने के कारण सर-सर की आवाज़ हो रही थी; चट्टान से उखड़ा कोई पत्थर धड़ाम से लुढ़ककर गिरा; फिर कहीं छपाका हुआ और तुरन्त सब जगह ख़ामोशी छा गयी।

नवसरद रात के इन शोर-शराबों से कहीं दूर था। वहीं बैठे-बैठे नये विचारों की एक लहर उसके मस्तिष्क को बेटे व उससे सम्बन्धित आशंकाओं से, चाहे थोड़ी ही देर के लिए सही कहीं दूर बहा ले गयी। वह मुस्कराता वहाँ बैठा या रात में अदृश्य किसी चीज़ पर अपनी आँखें टिकाने में लगा था मानो सुदूर की और न जाने कब की भूली-बिसरी किसी आकृति ने अन्धेरे में अचानक रूप धारण कर लिया हो। अपनी आँखें बन्द करके वह उन लोगों से, ऐसे लोगों से जो कभी उसके क़रीब रहे थे और अपनी बहुत-सी मधुर स्मृतियाँ छोड़ गये थे, बातें शुरू कर देता जो बहुत पहले ही परलोक सिधार चुके थे।

एक दिन शाम को नवसरद ने सैनिकों के एक जत्थे को सड़क पर जाते देखा। तब अपने बेटे के प्रति उसकी उत्कट लालसा हो आयी। सैनिक तो जल्दी ही वहाँ से गुज़र गये लेकिन बूढ़ा अपनी मन पसन्द जगह पर रात में काफ़ी देर तक बैठा-बैठा चिन्तन भरी मुद्रा में नदी के दूसरे किनारे व लेनाशिन की टिमटिमाती बत्तियों की ओर घूरता रहा...

दिन में सवेरे वह एक कारीगर से पत्थर उठाकर दीवार पर रखने में मदद देने के लिए कहना चाहता था लेकिन आत्माभिमानवश वह ऐसा नहीं कह पाया। अब इस समय उसकी दायीं बाँह दुख रही थी और उसके चिन्तन में बाधा पहुँचा रही थी। बाँह रगड़कर उसने दर्द भूलने की कोशिश की।

धीरे-धीरे अब उसकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी। लेकिन एक समय था जब पत्थरों को वह सीने तक उठाकर जहाँ चाहे ले जा सकता था। अब पत्थरों को वह बड़ी मुश्किल से घुटने तक ही उठा सकता था।

"दर्द ठीक हो जायेगा," वह ज़ोरों से बोला। "मैं इसके बारे में सोचूँगा ही नहीं। अगर दर्द के बारे में सोचते रहा जाये, वह कभी जायेगा ही नहीं!"

नवसरद ने अक्षरशः ऐसा ही किया। उसने आँखें बन्द कर लीं और न जाने कब के मर चुके लोगों की प्रिय स्मृतियाँ एक बार फिर उसके मस्तिष्क में लौट आयीं।

"दादा लुनकियानोस, आपने कहा था, माहिर शिल्पी के हाथों बने सेतु की मरम्मत की ज़रूरत कभी नहीं होगी, वह अनन्त काल तक बना रहेगा। आपने ठीक ही कहा था, दादा जी। लेकिन आपके बेटे खाचातुर को, उनकी आत्मा को शान्ति मिले, सानैन के उत्तुंग सेतु की एक बार मरम्मत करनी पड़ी थी। कुछ पत्थर पुश्ते से बाहर खिसक गये थे और उन्हें फिर से ठीक जगह पर लगाना पड़ा था। फिर बारह साल बाद, उसी जगह से दुबारा पत्थर गिर पड़े। मैंने उन्हें उनकी जगह दुबारा बैठा दिया और वे अब तक अपनी जगह पर बरकरार हैं। मैं आपको इसका रहस्य बताऊँ? पत्थरों को धातु के शंकुओं से बैठाया गया। स्व. खाचातुर ने कहा था कि शंकुओं की कोई ज़रूरत नहीं, पत्थर उनके बिना भी मज़बूती से बैठ जायेंगे। लेकिन नहीं। यदि हमारे ख़ानदान के किसी माहिर शिल्पी ने हज़ार साल पहले धातु के शंकुओं का इस्तेमाल किया था तो इसके पीछे ज़रूर ही पक्का कारण भी रहा होगा। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे..."

नवसरद कुछ और भी कहनेवाला था लेकिन तभी एकाएक अपनी बाँह पकड़कर वह कराह उठा।

"मेरे ख़्याल से, शायद यह मेरे हाथों बना अन्तिम सेतु होगा..." किसी तरह ख़ुद पर काबू पाने के बाद वह धीमे से बुदबुदाया।

आज से पहले बूढ़े ने कभी मौत के बारे में नहीं सोचा था। बाँह की पीड़ा उसे इस समय ऐसा सोचने को बाध्य कर रही थी। बहरहाल, इस ख़्याल ने जड़ जमा ली थी और बूढ़ा इसे दिमाग़ से हटा नहीं पा रहा था।

वह उठकर नदी किनारे चला गया। सेतु की नींव के पत्थरों को छूकर देखने के लिए उसने अपनी बाँह पानी में डुबो दी। पंकिल पत्थर फिसलन भरे थे।

"समय ने अपना काम पूरा कर दिखाया है," उसने कहा और सन्तोष की साँस ली। "अब यह मात्र पत्थर नहीं, ज़मीन में धँसे अंगद के पाँव हैं। अपनी बाँहों व टाँगों की शक्ति का एक अंश मैंने इन्हें प्रदान कर दिया है। अब वे बल प्राप्त कर रहे हैं और मैं अपनी शक्ति खो रहा हूँ..."

बाहु-पीड़ा के कारण नवसरद कई बार रात में जाग पड़ा था। वह करवटें बदलता, तड़पता रहा और अन्त में जब उससे रहा नहीं गया तो उठ बैठा और भोर की बाट जोहता पूरब की ओर अपनी आँखें टिका दीं।

रात काली थी। दर्रे के किनारे सड़क पर दौड़ती, नुकीली चट्टानों को रोशन करती, अखरोट वृक्षों के शिखरों पर फिसलती और एक उभरी चोटी के पीछे पल भर को ग़ायब होती उसने प्रकाश की एक बड़ी किरण देखी।

थोड़ी देर बाद उसे किसी इंजन की आवाज़ सुनाई दी। कार मुख्य मार्ग से मुड़कर सेतु के पास रुक गया। मुसाफ़िर उतर पड़े।

"हमें पैदल चलना है," एक भारी आवाज़ सुनाई दी।

"क्या घाट यहाँ से दूर है?" दूसरे आदमी ने पूछा।

"वहाँ सोते से नीचे थोड़ा आगे, उसी आवाज़ ने जवाब दिया। "अगर वहाँ मिस्तरी होगा तो उससे पूछ लूँगा।"

पैरों तले कंकड़ बज उठे।

उठने के लिए नवसरद दायें हाथ के सहारे झुका तो बाँह में तीव्र पीड़ा कसक उठी।

"शायद ठण्ड लगने से दर्द हुआ है," वह बोला। "मैंने काफ़ी देर तक इसे ठण्डे पानी में रखा था।"

"कोई है भाई?" उसने किसी को कहते सुना।

नवसरद के चेहरे पर विकृत मुस्कराहट आ गयी। तीव्र पीड़ा उसकी जान लिये जा रही थी। न वह बोल सका, न उठ सका।

"क्या बात है, बुढ़ऊ?.. तुझे अपना अन्तिम सेतु पूरा करना है। उठो, जागो!" कठिनाई से खड़ा होते हुए वह अपने-आप से बड़बड़ाया।

बाहर माचिस जलाकर किसी ने तम्बू के अन्दर सिर करके झाँका।

"घाट थोड़ी ही दूर है... यहाँ से चालीस या पचास फुट," क्षीण आवाज़ में नवसरद बोला और बिस्तरे पर गिर पड़ा।

"जल्दी करो! बुज़ुर्ग बीमार हैं!" अजनबी ज़ोरों से बोला।

"यह कुछ भी नहीं," नवसरद ने बुदबुदाकर कहा और अपनी आँखें बन्द कर लीं।

बस उसे इतना ही याद रहा था।

जब उसने दुबारा आँखें खोलीं, सूरज पहाड़ की चोटी पर पहुँच चुका था और तट पर अधूरे पुल की परछाईं चट्टानों के ढेर की तरह आकारहीन व अनजानी थी।

न तो कार ही दिखाई दे रही थी, न उसके मुसाफ़िर। केवल तम्बू के बाहर चिन्तित कारीगरों का एक झुण्ड ही खड़ा था।

"वह होश में आ गये हैं!" हैरानी से नज़र दौड़ाते नवसरद को देखकर कोई बोल उठा।

"लोग डॉक्टर को बुलाने गये हैं। बस जल्दी ही आते होंगे," दूसरा आदमी बोला।

नवसरद ने सवाली दृष्टि उन पर डाली और दायें हाथ पर झुककर वह उठ बैठा। दर्द जा चुका था।

"यहाँ किस लिए चक्कर काट रहे हो? तुम लोग काम क्यों नहीं कर रहे?" वह कठोरता से बोला। "मुशेग, क्या कंगूरों के लिए पत्थर तुमने काट-छाँट लिये? मैं उठ रहा हूँ," वह बड़बड़ाया और सचमुच थोड़ी देर बाद ही वह अपने दृढ़ क़दमों पर खड़ा था।

"सच तो यह है कि आपको बिस्तरे पर ही लेटे रहना चाहिए। जल्दी ही यहाँ डॉक्टर आ पहुँचेगा," चिन्तातुर स्वर में मुशेग ने कहा।

नवसरद उसे काट खानेवाली नज़र से देख, अपने छोटे से एप्रन में औज़ार वगैरह समेटकर बिना कोई भी शब्द बोले चल पड़ा।

खड़े लोगों ने उसे रास्ता दे दिया।

उसके कन्धे तो झुके थे लेकिन चाल दृढ़ थी। कारीगर मौन होकर उसे जाते देखते रहे। नदी के किनारे पहुँचकर नवसरद पानी के पास चला गया। अंजुली में पानी भरकर उसने अपना चेहरा धोया। फिर सीधा खड़ा होकर सूरज की ओर देखा।

"दिन तो गया। मैं दिन भर सोता रहा," रात में बीती घटनाओं को साफ़-साफ़ याद करके वह भुनभुना उठा।

रात की घटनाएँ उसे इस समय विचित्र प्रतीत हो रही थीं। जिस सड़क से कार आयी थी, उसने हैरानी से उधर नज़र डाली। फिर मुड़कर उसने कारीगरों की ओर देखा जो अभी भी चारों ओर खड़े थे। ज़मीन पर आँखें गड़ाये, वह पुल की ओर चल पड़ा।

"तुमने अपने नाम पर कालिख पोत ली है, नवसरद। आज तक कभी तुम्हारे साथ ऐसा नहीं हुआ था। क्या आख़िरी पत्थर बैठाये जाने तक तुम अपने पर क़ाबू नहीं रख सकते?"

जिस समय डॉक्टर आयी, बूढ़ा राजमिस्तरी ऊँचे मचान पर बैठा काम

कर रहा था। वह इतनी शान्त एकाग्रता से काम कर रहा था कि कोई शायद ही विश्वास कर पाता, इस बूढ़े को कुछ हुआ था या हो सकता था।

डॉक्टर बॉब बालोंवाली एक नौजवान लड़की थी। वह पानी तक तो जा पहुँची लेकिन हिलती मचान पर चढ़ने से भय खा गयी। बूढ़े ने बड़े अड़ियलपन से नीचे आने से इनकार कर दिया।

"इस लड़की को यहाँ किस लिए लाये? मुझे कुछ भी नहीं हुआ," वह बोला।

"आप ठीक से समझ नहीं रहे हैं। शायद आपको किसी दवा की ज़रूरत हो," डॉक्टर को बुलाकर लानेवाले आदमी ने कहा।

नवसरद को उसकी भारी आवाज़ पहचानी-सी लगी।

"क्या पिछली रात तुम ही थे?"

"जी हाँ... नीचे आ जाइये... क्या आप चाहते हैं, मैं आपको ज़िला पोलीक्लीनिक ले जाऊँ?"

"क्या नाम है तुम्हारा?" नवसरद ने रूखेपन से उसकी बात बीच में काट दी।

"आर्मेन।"

बूढ़े की आँखों में दोस्ती के भाव आ गये। उसने अजनबी को सानुराग दृष्टि से देखा।

"बहुत ख़ूब। तो तुम्हारा नाम आर्मेनाक है," वह जैसे ख़ुद को सम्बोधित करते बोला। फिर हड़बड़ाते हुए आगे बोल उठा, "अब तुम जाओ, बेटे। अगर मुझे तबीयत ख़राब महसूस हुई, मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा। और पुल ख़त्म करके तो मैं तुमसे मिलने ज़रूर ही आऊँगा।"

अजनबी ने सिर हिलाया, मुस्कराया और बूढ़े से कम-से-कम लेर्नाशेन में सोने के लिए बात करने की कोशिश की लेकिन नवसरद कुछ भी सुनने को तैयार न था।

"तुम मुझे बातों में नहीं फँसा सकते। मैं अपने किसी भी पुल को अधूरा छोड़कर थोड़े समय के लिए भी कहीं नहीं गया हूँ।"

डॉक्टर व आर्मेन को लेकर कार चली गयी। नवसरद उनकी ओर देखता रहा और दुबारा बुदबुदा उठा, "आर्मेनाक..."

दिन भर न तो उसकी पीठ में न बाँह में कोई दर्द हुआ। बूढ़ा अपनी

पीड़ाओं के बारे में सब कुछ भूल गया था। वह स्थिर ढंग से काम करता रहा, उसके माहिर हाथ एक के बाद एक पत्थर को बैठाये जा रहे थे। बस जब-तब रुककर वह धूल से चिकटे चेहरे के पसीने को पोंछ लेता।

उसी दिन शाम को कारीगरों की मदद से वह अपना तम्बू दूसरे किनारे पर ले गया। अब वे पुल की दूसरी मेहराब के निर्माण का काम शुरू करनेवाले थे।

"मैं आपके साथ ही ठहर जाऊँगा," दूसरे जाते लोगों के पीछे रहकर मुशेग ने कहा।

"किस लिए?"

"हमने आपस में बातचीत कर ली है। शायद किसी चीज़ के लिए आपको मेरी ज़रूरत पड़ जाये।"

नवसरद ने उसकी ओर, फिर घर जाते कारीगरों की ओर देखकर कहा,

"अरे, हाँ, मैं तो एकदम भूल ही गया था। कल काम पर आते समय मेरे लिए रोटी लाना मत भूलना। जितनी बची थी, मैंने आज खा डाली। अच्छा, अब जाओ और कल आने में देर मत करना।" चालाकी भरी मुस्कान उसके चेहरे पर खेल उठी थी।

मुशेग को विदा करके उसने तम्बू का चक्कर लगाकर नयी जगह की जाँच की। यहाँ से गाँव लेर्नाशेन नहीं दिखाई देता था। ऊँचे तट के कारण गाँव उसके पीछे छुप जाता था। बस वह फीते की तरह खुल बिखरी चट्टानी सड़क को ही देख सकता था।

दिन के समय, नदी के बहुत किनारे से कारें इस सड़क पर चला करती थीं। हालाँकि वे चौराहे पर मुड़कर आँखों से ओझल हो जाती थीं। कुछ कारें लेर्नाशेन की राह भी पकड़तीं लेकिन अधूरे पुल पर नज़र पड़ते ही वे रुक जातीं। मुसाफ़िर कार से उतरकर नदी की ओर देखते हुए कोई बहस शुरू कर देते। नवसरद को उनके शब्द तो सुनाई नहीं पड़ते थे लेकिन वह हमेशा उनकी बातों का अन्दाज़ लगा लेता।

"उन्हें मेरे पुल की ज़रूरत है," वह अपने आप से कहता और जाती कार की ओर आभारपूर्वक देखता।

उसी रात नवसरद के दिमाग़ में एक नयी, परेशान करनेवाली बात पैदा हुई।

"तो तुम कहते हो, यह तुम्हारा आख़िरी पुल होगा, क्यों?" अपने आप से उसने ग़ुस्से में पूछा। "और तुम्हारे उठ जाने के बाद लोगों के लिए पुल कौन बनायेगा?.. और अपने आर्मेनाक के बारे में क्या ख़्याल है? वह तो अभी तक वापस नहीं लौटा..."

नवसरद अपने बाद पुल बनानेवालों और पुल के ज़रूरतमन्द लोगों के बारे में सोचने लगा। उसकी नीन्द उड़ गयी। वह उठकर बाहर चला आया और आकाश तले बैठ गया।

आज रात बहुत थोड़े-से तारे आकाश में निकले थे और हवा में नमी थी। कोई पक्षी ज़ोरों से कूका और मानो अपनी आवाज़ की गूंज सुनने को कुछ देर के लिए ख़ामोश हो गया... कहीं पास में ही भेड़ों के झुण्ड की रखवाली करते कुत्ते कूँ-कूँ कर उठे। उसे निद्रालस मिमियाहट और एक अजीब-सी खट-खट की आवाज़ सुनाई दी—शायद कोई भेड़ पहाड़ी नमक चाट रही थी।

एक अलाव जल रहा था और उससे धुएँ की लहरें ऊपर को उठ रही थीं। अचानक लपटें फूट पड़ीं और सब कुछ रोशन हो उठा। नवसरद ने गड़ेरिये को आग पर झुके देखा।

"गोश्त पका रहा है," उसने सोचा और उसे अपने पिता की याद हो आयी। उसके पिता ख़ाचातुर हरेक पुल के निर्माण-कार्य समाप्त होने पर पुल के खम्भों के पास सीख़ों में कबाब सेंका करते थे। साफ़ पत्थर काले पड़कर पुराने दिखाई देने लगते और चूने की बू पकते गोश्त की ख़ुशबू में दब जाती।

"राजमिस्तरी खाचातुर, तुम्हारा रिवाज आज तक मेरे लिए रहस्य बना हुआ है," नवसरद बोला। "शायद अपने प्राचीन देवताओं को तुम आग और धुएँ का चढ़ावा देते थे जिससे वे हमेशा-हमेशा तुम्हारे पुलों की रखवाली व हिफ़ाज़त करते रहें। क्या मैं ग़लत तो नहीं कह रहा हूँ?.. और मुझे याद है तुम अपने सीने पर सलीब का निशान बनाया करते थे लेकिन तुम्हारे शब्द सलीब के मालिक से मुख़ातिब नहीं होते थे। तुम कहा करते, 'हे सूरज देवता, मैंने तुम्हारी मदद से एक और पुल का निर्माण किया है। इसकी रक्षा करो क्योंकि लोगों को इसकी ज़रूरत है...'"

पास में ही कोई कुत्ता कूँका। दूसरे ही पल अन्धेरे से एक गड़ेरिया आ पहुँचा। उसके हाथों में कोई चीज़ थी।

"ग्रादाब पेश करता हूँ, बाबा!" वह बोला। "क्या ग्राप थोड़ा गोश्त चखकर देखेंगे?"

बड़ी कुशलता से कबाब सीख़ से निकालकर नानरोटी पर रख वह नवसरद की बग़ल में बैठ गया।

सोलह-सत्तरह साल का गड़ेरिया बच्चों-सा भोला-भाला था।

ग्रन्धेरे की ग्रभ्यस्त होने पर नवसरद की ग्राँखों ने लड़के के गाल पर घाव का बड़ा-सा चिह्न देख लिया।

"ऐसा घाव तुम्हें कहाँ लगा?" उसने पूछा।

"जब मैं बहुत छोटा था, तभी यह घाव लगा था। मैं दौड़ता हुग्रा लकड़ी के छोटे-से पुल के पार जा रहा था कि एक पटरी टूट गयी ग्रौर मैं उससे पानी में गिर पड़ा। पटरी में कोई कील या बाहर निकली चीज़ ज़रूर रही होगी। उसने मेरा चेहरा ही चाक कर डाला। ग्रब हमेशा उसकी याद में यह दाग़ रह गया है।" लड़के के मुस्कराने से नवसरद को उसके सफ़ेद दाँत दिखाई दे गये। फिर नदी की ग्रोर देखते हुए लड़के ने नवसरद से कहा, "बाबा, क्या ग्रापका पुल हज़ार साल बरक़रार रहेगा?"

"हम ज़िन्दा रहेंगे तो देखा जायेगा," नवसरद शान्तिपूर्वक बोला ग्रौर ग्रपने ही शब्दों पर चौंक पड़ा। फिर भी उसने उन्हें दुहरा दिया: "हम ज़िन्दा रहेंगे तो देखा जायेगा।"

जब वह बिस्तरे पर सोने के लिए लेटा उसे ग्रपने सीने में चाकू चुभता-सा महसूस हुग्रा ग्रौर उसे लड़के को दिया ग्रपना ग्रप्रत्याशित उत्तर याद हो ग्राया।

"ग्रौर क्या तुम देखने को ज़िन्दा रहोगे?" उसने ख़ुद से पूछा ग्रौर फ़ौरन ही जवाब दिया, "मेरे ख़्याल से तुम्हें ग्रभी ग्रौर भी कई पुल बनाने हैं, बूढ़े।"

वह सोया भी इसी विचार के साथ ग्रौर जागा तो भी सबसे पहले यही बात उसके दिमाग़ में ग्रायी। लेर्नाशेन से ग्रादमियों के ग्राने से पहले ही वह काम में जुट गया।

दिन में उसे कई बार सीने में टीस-सी महसूस हुई। उसे ऐसा लग रहा था मानो कोई सूई चुभ रही हो।

"कहीं ऐसा तो नहीं कि कन्धे व बाँह की पीड़ा सीने में उतर ग्रायी हो?" वह हैरानी से सोच रहा था।

मुश्किल से साँस लेते हुए, काम छोड़कर वह आराम करने बैठ गया। लेकिन जब उसने एक नौजवान कारीगर को भी काम से हाथ समेट लेते देखा तो उठ खड़ा हुआ और उससे कठोरतापूर्वक बोला:

"यह बैठने का समय नहीं, मेरे बच्चे। चलो, वे सारे पत्थर मुझे पकड़ाओ।"

उस रात बिस्तर पर लेटते ही वह गहरी नीन्द में सो गया। सुबह में जागने पर उसे ऐसी स्फूर्ति महसूस हुई मानो उसकी जवानी वापस लौट आयी हो। उसने नदी में मुँह-हाथ धोया और पिछले कुछ दिनों में जो कमज़ोरी महसूस हो रही थी, उसकी बात सोचकर मुस्करा उठा।

"बेटे, कभी ऐसा हुआ था कि ठण्डे पानी से मुझे नुक़सान हो!"

पानी में नंगे सिर, नंगे पाँव खड़ा हो, वह आनन्दपूर्वक मुस्कराया। आँखों के पास की छोटी-छोटी झुर्रियाँ तरंगायित होती प्रतीत हुईं।

पहाड़ों के शिखरों पर सूर्योदय हो रहा था।

"वही पचास साल पहलेवाला दिन है। जैसे ही अब्बा रात में सोये, मैं नदी पार करके दूसरे किनारे चला आया था।" नवसरद ने अपनी जवानी की आँखों में कटी रातों को साफ़-साफ़ याद करते हुए कहा।

उन गर्मियों में वे वोरोत्तान नदी पर दुहरी विस्तृतिवाले पुल का निर्माण पूरा कर रहे थे। बस रेलिंग लगाकर फ़र्शबन्दी का काम बाक़ी रह गया था। गर्मी बड़ी भीषण थी। सिर्फ़ रात में ही हवा चलती और पुल पर धूल की एक भारी परत बिछा देती। रात होते ही उसके पिता राजमिस्तरी ख़ाचातुर सोने चले जाते लेकिन वह चुपके से उस ओर का रास्ता नाप लेता जहाँ नज़ान उसकी प्रतीक्षा कर रही होती... वे दुनिया की आँखों से छुपकर बेतों तले बैठ जाते... नज़ान का मलमली रूमाल पहले कन्धों पर खिसक आता फिर घास पर... तारों के बुझने तक वे इस तरह रात बिताते...

एक रात प्रेम में पगा और बुरी तरह थका युवा नवसरद अधूरे पुल को पार करके घर आ पहुँचा। तम्बू तक जाने में भी थकान महसूस करते हुए वह पुल के पास घास पर जो लेटा तो थोड़ी ही देर में गहरी नीन्द में सो गया। अभी वह घण्टे भर से ज़्यादा नहीं सोया होगा कि ख़ाचातुर ने उसे आकर जगाया और पुल पर पड़े उसके पद चिह्नों की ओर इशारा किया...

इस तरह नवसरद का राज़ खुल गया।

"उस दिन तुमने मुझे बुरी तरह फटकारा था, ख़ाचातुर," बूढ़ा अपने आप से बोलकर मुस्कराया। "तुमने कहा, हम गाँव के नाम पर कलंक का टीका लगा देंगे। और मेरा टोप लेकर तुम नज़ान के माँ-बाप से रिश्ते के बारे में बातचीत करने चल पड़े। उस दिन तुमने कोई काम नहीं किया और जब शाम को लौटे, नशे में धुत्त थे। हफ़्ते भर में तुमने पुल के पास हमारी शादी का इन्तज़ाम कर दिया था।"

नवसरद ने झुककर अपने चेहरे व सीने पर दुबारा पानी छिड़का। फिर वह दृढ़ क़दम रखता तट की ओर चल पड़ा।

"आह, मेरी नज़ान, तुम कहाँ हो? तुम्हें शान्ति मिले। माँ के डैनों तले छुपे पक्षिशावक की तरह तुम स्नेहसिक्त थीं। सपने-सी मधुर... मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ, तुम्हारी मृत्यु के बाद मैंने जितने भी पुल बनाये, वे सब तुम्हारी स्मृति को भेंट थे..." उसने कहा।

अपनी मृत प्रियतमा एवं सम्बन्धियों की स्मृति में नाश्ते के समय नवसरद ने चेरी वोदका का एक गिलास पी लिया...

"तुम्हीं मेरे लिए सेतु बन गये हो। इस पार आने में तुम्हीं ने मेरी मदद की।"

वह बड़ा प्रफ़ुल्लित था। उसे इस बात से ख़ुशी थी कि अच्छे ही के लिए उसकी बीमारियाँ ग़ायब हो गयी थीं। काम करते-करते नवसरद को एक पुरानी कहावत याद हो आयी:

"आगे चलनेवाला पीछेवालों के लिए एक सेतु होता है।" और उसने इसमें अपनी ओर से जोड़ दिया, "जैसे ही मैं एक सेतु बन जाऊँगा, मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा, नज़ान। बस थोड़ी राह और देखो, प्रेयसी..."

उस दिन से वह अपने बेटे आर्मेनाक के लौट आने के बारे में अधिकाधिक अधीर होने लगा। लेकिन उसने अभी तक आने की कोई ख़बर नहीं दी थी।

"बेटे! तेरा क्या बना?" उसने पूछा था लेकिन बेटे ने कोई जवाब नहीं दिया था।

रविवार की सुबह नवसरद ने इलाक़ाई केन्द्र जाने का निश्चय किया। केन्द्र पुल के निर्माण-स्थल से छह किलोमीटर की दूरी पर था। अगर किसी मोटर या ट्रकवाले से उसने लिफ़्ट माँगी होती तो वह मिनटों में वहाँ

पहुँच जाता लेकिन उसने पैदल जाने का फ़ैसला किया। नदी पार करके वह प्रपाती दर्रे के साथ-साथ चल पड़ा।

झरनों की भरमार थी। हरेक झरने का पानी पहलेवाले के मुक़ाबले अधिक शीतल व स्वादिष्ट था। चोटियों से निकलकर झरने नीचे नदी की ओर दौड़ लगा रहे थे। एक झरने के स्रोत कुण्ड में नवसरद को छोटी कर्बुरी दिखाई दी।

अख़रोट पक रहे थे। दरक पड़े हरे छिलकों से ढके होने के बावजूद गूदे सफ़ेद व ठोस हो गये थे। कई अख़रोट फोड़कर उसने खाये। बड़ा दूधिया स्वाद था।

मोहक गुलाब की झाड़ियाँ लाल-लाल हो उठी थीं। दूर से वे अनपकी काली बेरियों-सी दिखाई देतीं।

दूसरे किनारे पर दो लड़कियाँ घनी घासों व फूलों के बीच टहल रही थीं। बड़ी दिलचस्पी से वे मुस्कराते बूढ़े आदमी को देख रही थीं।

"लगता है, इन दिनों मैं तुम्हारे बारे में ज्यादा सोचने लगा हूँ, नज़ान। तुम इन्हीं लड़कियों-सी थीं लेकिन यह शॉल नहीं ओढ़ती और फिर इनका ज़माना भी दूसरा है..."

नदी के मोड़ पर जहाँ दर्रा चौड़ा हो जाता था, लड़कियाँ पीछे रह गयीं। पीछे मुड़कर उन्हें देखने के लिए नवसरद रुक गया और बोल-बोल कर सोचने लगा:

"जब तुम्हारा बेटा लौटेगा, मैं उसका विवाह कर दूँगा। क्यों, तुम क्या कहती हो, नज़ान, ठीक है न? ऊपरी जेब में जो सोने की अँगूठी मैंने रख छोड़ी है, उसे लेकर मैं लड़की के माँ-बाप से रिश्ते के बारे में बातचीत करने चल पड़ूँगा ..."

रास्ते पर जैसे-जैसे वह आगे बढ़ते गया, उसे अपना सँजोया सपना सच होता महसूस हुआ। वह लेर्नाशेन गाँव जायेगा और एक के बाद दूसरे ग्रामीण से तब तक बातचीत जारी रखेगा, जब तक उसे ठीक लड़की नहीं मिल जाएगी। फिर वह लड़की के माँ-बाप से बात करेगा और बेटे की शादी की अँगूठी मेज़ पर रख देगा... राजमिस्तरी नवसरद के बेटे की फलाँ-फलाँ की बेटी के साथ विवाह की ख़बर नदी के पास व दूर के सभी गाँवों में फैल जायेगी। नवसरद के ख़ानदान में दाख़िल होनेवाली लड़की की ख़ुशक़िस्मती के बारे में लोग ईर्ष्यापूर्वक बातें करेंगे...

"तेरी शादी पर मैं नाचूँगा, आर्मेनाक। फिर हम साथ-साथ एक और पुल का निर्माण करेंगे और तब मैं चैन से मर सकूँगा," सोच में डूबा नवसरद बोल रहा था।

प्रपाती दर्रे के पास रुककर उसने यूँ नीचे की ओर देखा मानो वहाँ नदी किनारे, अख़रोट के पेड़ों तले सचमुच उसकी मनोकामनाएँ पूरी हो जायेंगी। फिर ठण्डी आह भरकर बोला,

"हाँ, पोते को देखने तक जीने की उम्मीद मैं नहीं करता..."

डाकघर की मेज़ पर बेटे से मिले आख़िरी ख़त को रखकर उसने दसवीं बार पढ़ा। बड़ी चौकसी से एक-एक अक्षर को साँचे में ढालते हुए फिर उसने लिखना शुरू किया:

"असीस। अगर तू जानना चाहता है, हम कैसे हैं तो बेटे आर्मेनाक, हम सब सकुशल हैं हालाँकि तेरी कमी हमें बड़ी खलती है और हम जानना चाहते हैं, तेरे आने में देर किस कारण से हुई। तेरे दोस्त, रिश्तेदार और उनके सभी बड़े-छोटे बच्चे और तेरे पड़ोसी भी तुझे नमस्ते कह रहे हैं। बेटे, मैं तुझे बताना चाहता हूँ कि मेरा पुल तेरी राह देख रहा है। कुछ ऐसी बात भी है जो मैं इन दिनों सोचता रहा हूँ: मैं चाहता हूँ, तेरी बहू इस पुल को पारकर हमारे घर आ जाये। और हाँ, चलने से पहले तार भेजना न भूलना..."

ख़त में उसे सभी बातें आ गयी प्रतीत हुईं। फिर भी, कुछ सोचने विचारने के बाद नवसरद ने एक पंक्ति और जोड़ दी:

"तेरे ख़त और तेरे घर वापस आने की प्रतीक्षा में, तेरे पिता नवसरद।"

वृद्ध ने जब तक ख़त पूरा किया, दोपहर हो चुका था। लिफ़ाफ़े में उसने ख़त डालकर क्लर्क को थमा दिया। क्लर्क ने विदेश का पता लिखने में उसकी मदद की।

डाकघर से बाहर आकर वह बीच सड़क पर जा खड़ा हुआ।

"अब पैदल लौटने से थकान आ जायेगी। फिर कल सवेरे काम भी शुरू कर देना है।" सो, उसने किसी गाड़ीवाले से लिफ़्ट माँगने का निश्चय किया।

खुली ट्रक के ऊपर बैठे-बैठे रास्ते पर वह किसी से कुछ भी नहीं बोला। उसने पास बैठे लोगों पर भी कोई ध्यान नहीं दिया।

वह अपनी भावी पतोहू के बारे में सोचता दिवा-स्वप्न में मग्न था। नज़ान-सी उसकी मोटी वेणियाँ और काली-काली आँखें होंगी... उसके बेटे की आँखें और भौंहें कोयले-सी काली थीं। आर्मेनाक लम्बा और चौड़े कन्धोंवाला था... उसके पोते को भी वैसे ही होना चाहिए... समय बीत जायेगा, वह जीवित नहीं रहेगा लेकिन सेतु-निर्माताओं का उसका खानदान, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, उनके बनाये अनगिनत पत्थर के पुलों की तरह अक्षत चलता रहेगा...

उसकी आँखें गोद में पड़े अपने हाथों पर टिक गयीं। इनसान के लिए यह कठोर, सख़्त, खुरदरे और काम से बदसूरत हुए हाथ क्या नहीं कर सकते!

अचानक किसी चीज़ की याद करके वह मुस्करा उठा।

यह घटना बहुत पहले हुई थी। बहुत-बहुत पहले। गर्मियों में एक दिन शाम को वह नशे में घर लौटा था और सो गया था। नज़ान उसके बिस्तर के सिरहाने बैठकर उसके माथे के पसीने को साफ़ करने लगी। शायद वह बीमार है, ऐसा सोचकर वह चिन्तित हो उठी थी। जब-जब उसका हाथ माथे का स्पर्श करता, वह आँखें खोलने की कोशिश करता लेकिन असफल रहता। जब आधी रात को उसकी नीन्द टूटी, उसने अधखुली आँखों से अपनी बीवी की ओर देखा। वह उसकी बग़ल में घुटनों के बल बैठी थी और उसके खुरदरे, भारी हाथ को चूम रही थी...

तब जो अल्फ़ाज़ उसने कहे थे, वह उन्हें कभी नहीं भूल पायेगा: "मैं तुम्हारे इन हाथों के लिए अपनी जान दे दूँगी तुम्हारे हाथ किसी पुल की तरह ठोस हैं..."

ट्रक सड़क के मोड़ पर रुक गयी। नवसरद कूदकर नीचे उतर गया और मुड़कर नदी की ओर चल पड़ा। तभी उसे तट पर कुछ लोग खड़े दिखाई दिये। पुल के पास एक मर्द और छः-सात साल का एक लड़का खड़े थे। पास में ही एक सूटकेस पर कोई जवान औरत बैठी थी। एक गोलाकार गुच्छे में गर्दन के पीछे बँधे उसके सुनहले बाल धूप में सोने की तरह चमक रहे थे।

"काश, पुल बन गया होता तो वे यहीं से नदी पार कर लेते," नवसरद ने दुखपूर्वक सोचा। "लेकिन वे रुके किस लिए हैं? अगर वे किनारे जायें तो वहाँ शहतीर पड़ा है। वे नदी पार कर सकते हैं..."

कई क़दम आगे बढ़ आने के बाद वह आँखें मलने के लिए रुक गया। उसे लगा, पुल के पास खड़े आदमी ने हाथ हिलाकर उसका अभिवादन किया था और शायद उसकी ओर ही चला आ रहा था। उसके दिल की धड़कनें तेज़ हो गयीं, वह जल्दी-जल्दी साँस लेने लगा।

"मेरे ख़्याल से वह वर्दी में है... आर्मेनाक तो नहीं?.."

दूसरे ही पल वह अपने बेटे को पहचान चुका था। अब आर्मेनाक उसकी ओर दौड़ा चला आ रहा था... हाँ, हाँ, वही है!

नवसरद ने उस औरत और लड़के को भूलने की कोशिश की।

"शायद वे अजनबी हैं," वह आशा से बोला और तेज़ क़दमों से आगे बढ़ने लगा।

इतने वर्षों की जुदाई के बाद बाप-बेटे आख़िर एक-दूसरे से मिले थे। अपनी-अपनी उत्तेजना व ख़ुशी को छुपाते हुए वे गले से गले मिले। लेकिन आर्मेनाक ने हथेली से आँसू पोंछे और बूढ़े ने गला साफ़ करके काँपती आवाज़ में कहा:

"आर्मेनाक!.. मेरे बेटे!.. आख़िर तू घर आ ही गया!.."

"पिता जी! पिता जी!" बार-बार वृद्ध को गले लगाते हुए आर्मेनाक कह उठा।

नवसरद ने बेटे की आँखों में कुछ भांप लिया था और वह बड़ी सावधानी से पलटा। उस नौजवान औरत की तरह ही सुनहले बालोंवाला लड़का उन्हें देख रहा था। उसकी नीली आँखें विस्फारित थीं। सूटकेस पर बैठी औरत उठ खड़ी हुई और कभी आर्मेनाक व कभी लड़के की ओर देखने लगी।

"यह कौन है?" बूढ़े ने कोमलता से बेटे से पूछा। उस की आँखें औरत पर टिकी थीं।

आर्मेनाक ने उस औरत से रूसी में कुछ कहा। वह तेज़ी से बूढ़े की ओर बढ़ आयी। उसने अपना हाथ नवसरद की ओर बढ़ाते हुए शर्म से लाल होकर कहा,

"आप कैसे हैं, पिता जी?"

बेटे पर नवसरद की भृकुटि तन गयी। बेटे ने कहा,

"मैंने आपको इस के बारे में नहीं लिखा था, पिता जी... मैं आपको अचम्भे में डालना चाहता था... यह मेरी पत्नी है... और यह आपका पोता है..."

नवसरद ने आँखें ऊपर उठायीं। वह शरमाया-सा लग रहा था मानो आर्मेनाक की बातें उसे समझ में नहीं आयी हों। उसका भावावेश समाप्त हो चुका था। उसने ख़ूबसूरत, सुनहले बालोंवाली औरत से हाथ तो मिलाया लेकिन जल्दी ही हाथ वापस खींच लिया और बेटे से कहा,

"मेरा पोता? क्या यह इसका बेटा है?" उसके चेहरे पर एक निराश मुस्कान थी।

"आर्मेन ने मुझे आपके बारे में बहुत कुछ बताया है... मुझे बहुत ख़ुशी है कि आख़िर हमारी मुलाक़ात हो ही गयी..." पति से दृष्टि मिलाते हुए औरत बड़ी मुश्किल से बोली।

रूसी में कही गयी बात का केवल एक शब्द बूढ़े के पल्ले पड़ा: अपने बेटे का नाम। शब्द उसे बड़ा खटका। तिर्यक् मुस्कान के साथ वह बड़बड़ाया,

"तुम्हारा नाम आर्मेनाक है। वह तुम्हें आर्मेन क्यों कहती है?.. अगर उसने पति पा लिया है तो कम से कम उसे सही नाम से तो पुकार सकती है..."

आर्मेन अपने परिवार के साथ लेनिनग्राद में जा बसा। बूढ़े ने दिन उन्हीं के साथ बिताया लेकिन अपनी पतोहू, पोते और बेटे के प्रति प्रतिकूल भावना छुपाये न रह सका।

अपने बेटे के लिए किसी आर्मेनियाई बहू ढूँढ़ने की उसकी आशाओं पर पानी फिर गया था। पतोहू और पोते की भाषा वह नहीं समझ पाता था। उसका अपना बेटा भी अजनबी-सा बन गया था क्योंकि आर्मेनाक के व्यवहार में अब उसे वह गर्मजोशी नहीं महसूस होती थी जिसके लिए वह जुदाई के इतने लम्बे दिनों में तड़पता रहा था।

अब जबकि वह उसके क़रीब था, उसे उदासी व अकेलापन महसूस होता। यह दर्द उसे पहले की अपनी व्याधियों से अधिक भयानक लगता। उसे अपने बेटे के परिवार के इर्द-गिर्द प्रत्येक वस्तु विजातीय लगती। वह उनके बीच ख़ुद को अजीबोग़रीब व बेपेंदे का लोटा महसूस करता।

यह अजीबोग़रीब अहसास उसकी पतोहू को भी था। आर्मेनाक नहीं समझ पा रहा था, इन दोनों में आपसी समझ कैसे पैदा की जाये, पिता को कैसे शान्त करे। लड़ाई के दौरान उत्पन्न गहन प्रेम के जिन सूत्रों ने उन दोनों को बाँध रखा था, क्या उसके पिता इस बात को समझ सकें-

गे? यह सच है कि वह आर्मेनियाई नहीं और उसके एक बेटा भी था लेकिन उसके प्रेम व भलमनसाहत भरी सेवा-सुश्रुषा ने आर्मेनाक के जीवन की रक्षा की थी...

इस सम्बन्ध में आर्मेनाक ने पिता को कभी कुछ नहीं बताया था और फिर बूढ़े को उसमें कोई दिलचस्पी भी न थी।

हर दिन सुबह में आर्मेनाक अपने पिता के साथ-साथ काम करने रवाना हो जाता। वे चुपचाप काम करते रहते। उसका पिता न तो बेटे न नदी किनारे खेलते पोते की ओर देखने की कोशिश करता।

गर्मी का मौसम ख़त्म हो रहा था। अखरोट पेड़ों से गिरने लगे थे और श्वेतकण्ट की शाखाएँ चमकीली लाल बेरियों से ढक गयी थीं। बर्फ़ झेलने को तैयार गर्मी से दुबारा झुलसी घास पीली, छोटी और कड़ी पड़ गयी थी।

पुल जल्दी ही पूरा होनेवाला था। इधर-उधर के थोड़े-बहुत काम छोड़कर सब किये जा चुके थे लेकिन बूढ़े के हृदय में बेटे और पतोहू के प्रति बेगानगी ज्यों की त्यों बरक़रार थी।

एक रात बूँदाबाँदी शुरू हो गयी। भोर के समय पहाड़ों से ठण्डी हवा चलने लगी। वृक्षों से सूखे पत्ते तोड़कर हवा के झोंके तम्बू के बाहर चक्कर काटने लगे। नवसरद ठण्ड से और चिड़चिड़ेपन के साथ सवेरे जाग पड़ा...

पिछली शाम उसने बेटे से भविष्य के बारे में बातचीत करने की कोशिश की थी। पहले तो वे काफ़ी शान्तिपूर्वक बात करते रहे थे। बूढ़े ने आर्मेनाक से सवाल किये थे और उसने सवालों के जवाब दिये थे। उसने पिता को बताया था कि लड़ाई के दौरान उसने पुल बनाये भी थे और उड़ाये भी थे। लेकिन उनकी बातचीत ने उस समय अप्रिय मोड़ ले लिया जब आर्मेनाक ने इस्पात के बने पुलों, अल्प समय में उनके बनने की चर्चा और उनकी ख़ूबसूरती व हल्के वज़न की प्रशंसा शुरू कर दी।

बूढ़े का चेहरा तमतमा उठा। तो उसके बेटे के लिए पुरखों के बनाये पुलों का कोई उपयोग न था?

"न तो तुम्हारे दादा ख़ाचातुर ने न तुम्हारे बाप ने कभी लोहे का पुल बनाया," वह ग़ुस्से से बोला। "आर्मीनिया की धरती चट्टान पर टिकी है और पुल का निर्माण सिर्फ़ चट्टानों से ही होना चाहिए—मुश्किल

से तराशे चट्टानों से – जिससे लोग पुल के पास रुककर निर्माता के कठिन पेशे के बारे में, उसकी महान शक्ति के बारे में सोच सकें! उठो, जागो, दादा लुनकियानोस, अब्बा ख़ाचातुर, आओ, अपने प्रपौत्र को लोहे के पुल बनाते देखो! .. "

"मैं आपकी बात समझता हूँ, पिता जी... आख़िर आपने वैसे पुल कभी देखे तो हैं नहीं... " आर्मेनाक बोला लेकिन बूढ़ा सुनने को तैयार न था।

"तो तुमने बहुत से पुल उड़ाये हैं? और तुम्हारा विवेक? .. तुम अपने विवेक से तनिक भी परेशान नहीं हुए? .. "

लड़ाई के दौरान पुलों को उड़ाने के लिए अपने बेटे को धिक्कारने का कोई अभिप्राय नवसरद का नहीं था। वह जानता था, लड़ाई के दौरान पुलों को दुश्मन के हाथों नहीं छोड़ा जा सकता। बस वह अपने बेटे को एक बाप की हैसियत से फटकार रहा था जिससे वह उस रास्ते पर वापस लौट आये जिस पर पुल-निर्माताओं के उसके ख़ानदान के लोग सदियों से चलते आ रहे थे। दूसरी जाति की किसी औरत को घर लाकर आर्मेनाक ने जो उसके सपने चूर कर दिये थे, वह उसे इसकी सज़ा दे रहा था...

"तुमने क्या कर डाला है, आर्मेनाक?" पिछली बातों को याद करते हुए बूढ़ा बोल उठा। "जब मैं इस दुनिया से विदा हो जाऊँगा, कौन हमारे पुलों को बनायेगा? .. नवसरद कराह उठा। बाँहों में सिर लटकाये वह सोच रहा था: "शायद लोहे के पुल उतने बुरे नहीं! .. "

लेकिन यह बात वह बोलकर नहीं कह सकता था, इसलिए नाराज़गी से चीख पड़ा,

"तो मेरे मरने के बाद तुम लोहे के पुल बनाया करोगे, बेटे... अच्छी बात है, हम सब जवान-बूढ़ों का तुम्हें बहुत-बहुत शुक्रिया! .. "

इस प्रकार काले आकाश और नदी के धुँधले जल को शून्य दृष्टि से घूरता अप्रसन्न मन लड़खड़ाते क़दमों से वह तम्बू के बाहर निकल आया। उसे ऐसा लग रहा था मानो उसके पुरखों की सदियों पुरानी परम्पराएँ इस अन्धेरे में दफ़न पड़ी हों।

हाथ-मुँह धोने वह नदी तट पर जा रहा था कि राह में पोते की खिलौनागाड़ी मिल गयी। पल भर वह उसे देखता खड़ा रहा फिर झुककर

उसने गाड़ी उठा ली। उसे सुनहले बालों और नीली आँखोंवाले लड़के की सूरत याद हो आयी।

किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खिलौने को हाथों में पकड़े नवसरद वहाँ खड़ा रह गया। इधर कुछ समय से एक ख़्याल उसे परेशान कर रहा था। इस पर गम्भीरता से ध्यान देने की ज़रूरत थी: अपने बेटे के परिवार के प्रति बेगानगी दिखाकर शायद वह ग़लत कर रहा था। लेकिन अपनी ग़लती मानना भी तो आसान न था। वह इस सवाल को अब और देर तक नहीं टाल सकता था।

"तुम बड़े अच्छे लड़के मालूम पड़ते हो," अपने पोते के बारे में सोच-कर ठण्डी आह भरते हुए उसने कहा। और फिर वह ख़ुद पर क्रुद्ध हो उठा। "जैसे पहले मुझे यह बात मालूम ही नहीं थी।"

उसके हाथ काँप गये। खिलौने को जो उसने उलटकर देखा तो एक चक्के को ढीला पाया। चिन्तन भरी मुद्रा में तम्बू में वापस आकर उसने उस पहिये को ठीक किया और फिर बाहर आ गया।

पूर्व में क्षितिज धूसर हो गया था। गौरैयाएं यहाँ-वहाँ चहचहाने लगी थीं। नदी का जल अब बदरंग रजत-सा दिखाई दे रहा था।

खिलौने को अंगुलियों में फिराता नवसरद वहाँ खड़ा था। वह हैरान होकर सोच रहा था, उसके हाथ काँप क्यों रहे थे। और आँखें धुएँ लगने-सी गीली क्यों हो गयी थीं। आस्तीन से आँखें पोंछ वह अख़रोट के पेड़ों की ओर चल पड़ा। वहाँ जेबों में अख़रोट भरकर वह गाँव की ओर रवा-ना हो गया।

उसके घर पहुँचने तक पतोहू और बेटा जाग चुके थे; आर्मेनाक चाय पी रहा था और उसकी पत्नी उसके लिए लंच बाँध रही थी। नवसरद के वहाँ पहुँचते ही दोनों चिन्तित हो उठे।

"कोई गड़बड़ी तो नहीं, पिताजी?" घबराते हुए आर्मेनाक ने पूछा।

"शुभ प्रभात," टोपी उतारते हुए नवसरद ने जवाब दिया। पल भर को ख़ामोशी छा गयी।

"आइये, बैठिये और कुछ नाश्ता कीजिये, पिता जी," उसकी पतोहू बोली और लजा उठी। चुप्पी भंग हो गयी थी।

"क्या उसका लड़का अभी तक सो रहा है?" नवसरद ने आर्मेनाक से पूछा।

आर्मेनाक ने अनुवाद करके पत्नी को बताया।

"जी," वह बोली।

बूढ़ा अपने पोते के बिस्तरे के पास चला गया। खिलौना फ़र्श पर रखकर कम्बल पर उसने सारे अखरोट डाल दिये, फिर लड़के के पास जाकर उसके माथे को चूमकर धीमे स्वर में कहा:

"जागो, पोते। पुरुष इस समय नहीं सोता... हम काम पर जा रहे हैं... पुल हमारी प्रतीक्षा कर रहा है..."

धीमे स्वर में ही आर्मेनाक ने अपनी पत्नी को उसकी बातें अनुवाद करके बता दीं। भावावेश से वह अधिक लजा उठी और लड़के के बिस्तरे के पास जाकर बोली,

"उठो, बेटे। दादाजी तुम्हारे लिए आये हैं... आओ... मैं तुम्हें कपड़े पहना दूँ..."

तीनों एक साथ काम पर चल पड़े – दादा पोता आगे-आगे और आर्मेनाक कुछ क़दम पीछे। जब कभी नवसरद लड़के से कुछ कहता, आर्मेनाक उसकी बातें सुनकर लड़के को अनुवाद करके बता देता।

"मैं तुम्हें पत्थर का पुल बनाना सिखाऊँगा," लड़के का हाथ अपने हाथ में थामे नवसरद ने कहा। "यह तुम्हारे पूर्वजों की परम्परा है। मेरे एक बेटा था और वह भी पत्थर के पुल बनाया करता था लेकिन अब वह लोहे के पुल बना रहा है। वह अपने रास्ते से भटक गया है... समय आयेगा जब तुम अपने पहले पुल का निर्माण करोगे। तब मैं इस किनारे रह जाऊँगा और तुम मेरे सेतुनुमा बदन के सहारे दूसरे किनारे चले जाओगे... फिर हमारी उन्मत्त नदियों पर उसी तरह पत्थर के पुल बनते रहेंगे जैसे मेरे दादा लुनकियानोस और मेरे स्वर्गीय पिता ख़ाचातुर और तुम्हारे दादा राजमिस्तरी नवसरद बनाया करते थे..."

उस दिन काम के बाद उसका पोता वहीं नवसरद के तम्बू में रह गया।

"मेरी पतोहू से कहना," अपने बेटे की आँखों से कतराते हुए बूढ़े ने कहा, "ऐसे सुनहरे बालोंवाले पोते के लिए मैं उसका हमेशा के लिए शुक्रगुज़ार हूँ... आर्मीनिया में भी ऐसे भूरे बाल और ऐसी नीली आँखोंवाले लड़के हैं... लेकिन उसे कह देना, मेरी बातें सुनकर वह न तो ज्यादा घमण्ड करे, न ज्यादा अकड़े। उससे कह देना, हमारे रिवाज के

मुताबिक़, मेरा पोता मेरे साथ रहेगा। बस मुझे इतना ही कहना है। अच्छा, अब जाओ, आर्मेनाक ,अन्धेरा हो रहा है। शुभरात्रि, बेटे।"

आर्मेनाक के जाने के बाद उसने धीमी आवाज़ में कहा जिससे कोई उसकी बात सुन न सके,

"और उसे मेरे आशीर्वाद कहना। वह एक माँ, एक नारी है और उसका हृदय विशाल है..."

बूढ़ा रात भर रह-रहकर जागता रहा। साथ ही वह मन ही मन कुछ बड़बड़ाता जाता और अपने पोते को अच्छी तरह चादर से ओढ़ा देता। उसके हृदय में जीवन की असीम आकाँक्षा पूरित हो उठी थी।

"जीने का सहारा तो है, मेरा पोता। अगर सूर्यदेव ने मुझे तुझ जैसी किसी चीज़ का सहारा दिया है तो इसका मतलब है, वह मेरी उम्र दराज कर रहे हैं। सच कहूँ तो मौत बूढ़े नवसरद को ले ही नहीं जा सकती क्योंकि उसे किसी के लिए, अपने नन्हे सेतु के लिए जीवित रहना है!.."

* * *

लोग कहते हैं, आर्मीनिया के किसी पहाड़ी इलाक़े में किसी उन्मत्त नदी पर वे पत्थर के एक नये पुल का निर्माण कर रहे हैं। यह बहुत बड़ा, बहुत ऊँचा पुल है। नदी तट पर पास में ही राजमिस्तरी नवसरद का तम्बू लगा है। अन्दर दो खाट हैं। काम के बाद एक पर बूढ़ा और दूसरे पर उसका पोता, चमकते बालों और चतुरता भरी नीली आँखोंवाला एक चौदह साल का लड़का सोता है।

मौत अभी तक बूढ़े नवसरद और उसके कुल को अपने चंगुल में नहीं ले पायी है...

मकरतिच सरकिसियान

लड़कियो, तुम कितना बदल गयी हो।

लड़कियो, तुम कितना बदल गयी हो! सच में... जब मैं जवान था, लड़कियाँ तनिक भी तुम जैसी न थीं। मैं जानता हूँ, तुम कहोगी, समय आगे बढ़ता रहता है और हमें समय के साथ क़दम से क़दम मिलाकर चलना चाहिए। ठीक, बिलकुल ठीक, लेकिन बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है। मुझे ग़लत न समझो। तुम सिर्फ़ अपनी ऊँची एड़ियों व फ़ैशनदार पोशाकों के कारण नहीं बदली हो। बिलकुल नहीं। मैं भी पुरुषों के नये फ़ैशन के कपड़े व जूते पहनता हूँ लेकिन उनसे मैं तनिक भी आधुनिक नहीं बन पाया हूँ। इन्हें तो मैं सिर्फ़ इसलिए पहनता हूँ कि यह मेरी मजबूरी है। इस मामले में मेरी पसन्द का सवाल ही नहीं।

लेकिन मेरे ख़्याल से हम अपने विषय से थोड़ा बहक गये हैं... मैं कह रहा था, लड़कियो, तुम बदल गयी हो!

फिर भी, हम अपनी बात तथ्यों पर छोड़ देते हैं, देखें वे क्या कहते हैं। मैं तुम्हें दो प्रेम-कहानियाँ सुनाऊँगा—बहुत साल पहले की अपनी प्रेम कहानी और अपने पड़ोसी के बेटे करेन की प्रेम कहानी।

मेरी प्रेम-कहानी

हमारा शहर बहुत बड़ा नहीं था। ऐसे पन्द्रह शहर येरेवान के बराबर होंगे। हालाँकि हमारे यहाँ एक सामूहिक फ़ार्म भी है। अध्यक्ष का नाम गारसेवान था या ठीक कहूँ गार्सो, ठीक कहूँ तो मोरचायुक्त वृद्ध गार्सो था। लोग कहते हैं, गार्सो के ड्राइवर ने यह नाम उसे अर्पित कर दिया था।

गार्सो को पैदल चलना पसन्द नहीं था। एकदम नहीं। फ़ार्म की गाड़ी उसके लिए पैरों के जूते की तरह थी: खेतों में या पार्टी की इलाक़ाई समिति तक वह कार से ही जाता था; रास्ते में अगर उसे किसी से बात करनी होती तो वह कार रोक लेता और खिड़की से सिर बाहर निकालकर बात करता, बहस करता या फटकार बताता। संक्षेप में, जिस तरह सोने से पहले तक हम जूते पहने रहते हैं, वह फ़ार्म की गाड़ी पर घर की दहलीज़ तक आता। अगर उसका वश चलता, वह गाड़ी बिस्तरे तक हाँक लाता। एक शब्द में, गार्सो गाड़ी से मोरचे की तरह चिपका रहता था।

मुझे याद नहीं आता, मैंने कभी उसे खड़ा देखा हो। मेरे लिए हमेशा वह गाड़ी की खिड़की से झाँकता सिर मात्र था। उसका क़द बड़ा है या छोटा यह मैं नहीं जानता बस इतना ही जानता था, उसके पैरों तले चार पहिये हैं, उसके पास एक ज़ोरदार भोंपू है, रात में आँखों की जगह आँखें चौंधिया देनेवाली दो हेडलाइटें हैं और उसकी बायीं ओर एक ड्राइवर है। वह चलता भी था हम लोगों की तरह नहीं। वह हमेशा तीर की तरह अपने साथ पीली धूल के बादल उड़ाता चलता था। मैं उस धूल को कभी नहीं भूल पाऊँगा! यह धूल कार से, उसकी बरौनियों से चिपक गयी थी और उसकी आत्मा के अन्दर भी जा पहुँची थी। "मारो, स्साले को, यह तो मोरचे-सी चिपक गयी है," गार्सो क्रुद्ध होकर कहता और पिच् से थूक फेंक देता। फिर ड्राइवर से बोलता,

"चलो, गति बढ़ाओ, जल्दी करो।"

गाड़ी झटके के साथ आगे बढ़ जाती और अस्फ़ाल्त की चमकती सड़क पर चढ़ जाती। पीली-पीली धूल थम जाती और तारकोल से टकराकर विलीन हो जाती, मानो कोई जादू कर दिया गया हो।

लेकिन धूल उसके कपड़ों व चेहरे को ढक चुकी थी, उसके जूतों के पॉलिश को सफाचट कर चुकी थी और उसकी आत्मा तक जा पहुँची थी। नहीं, धूल की सफाई करनी थी, अच्छी तरह से!

जब गाड़ी शहर पहुँचकर सामूहिक फ़ार्म के कार्यालय के पास रुकती गार्सो सिर के हल्के इशारे से सामूहिक फ़ार्म के किसानों का अभिवादन करता और शाही ढंग से चलता अपने कमरे के अन्दर जा पहुँचता।

"फिर उसके मिज़ाज बिगड़े हैं। या तो कोई उस पर बरसा है या वह ख़ुद बरसनेवाला है," अध्यक्ष के चढ़े तेवर देखकर बूढ़ा मातो हमेशा

कहता। "कोई उससे पूछे तो वह अपनी नाक से आगे क्यों नहीं देख सकता?.."

"उसे कम दिखता है। उसकी आँखों में ज़ंग लग गयी है। आकाश की बात तो दूर वह पैरों तले की ज़मीन नहीं देख सकता। उसे ठीक ही मोरचायुक्त बूढ़ा गार्सो कहा जाता है। बस यही बात है!"

आप मुझसे पूछ सकते हैं, प्रेम और गार्सो से क्या सम्बन्ध? इतनी जल्दी निर्णय पर न पहुँचिये। ज़िन्दगी हमें बताती है, कभी-कभी मोरचे से सोना भी पैदा हो सकता है। एक ओर, धूल का रंग राई की तरह हो सकता है और दूसरी ओर, चाँदी जैसा भी।

मोरचेयुक्त बूढ़े गार्सो के एक बेटी थी। उसका नाम था—आरेव, आरेविक—इसका मतलब है धूप। उसकी सौतेली माँ रोज़ा—मैडम गुलाब के नाम से जानी जाती थी। आरेविक तो धूप जैसी थी लेकिन रोज़ा तनिक भी गुलाब जैसी न थी। मैं उसे मैडम कांटी कहता था। और इस प्रकार बेचारी आरेविक मोरचेयुक्त गार्सो एवं कांटे के बीच फंस गयी। सुबह से पहले वह जाग जाती और आधी रात से पहले नहीं सोती। उसके दिन इधर की बात उधर पहुँचाने और खाना बनाने के अलावा घर के सारे काम करते बीतते थे।

"जल्दी-जल्दी! कहाँ है तू मरी? मुझे प्याज़ दे!"

"तू तो मरी बिल्ली से भी गयी बीती है! क्या तू थोड़ा तेज़ नहीं चल सकती?"

"बिछावन ले आ! और जल्दी-जल्दी कर, स्साली!"

यह बोल मैडम कांटी के थे। बूढ़ा मोरचायुक्त गार्सो कब पीछे रहने-वाला था:

"आरेव, मेरे जूते में पॉलिश लगा!"

"आरेव, मेरे कोट में तो धूल ही धूल है..."

"आरेव, देख तो, सब जगह धूल ही धूल है..."

वे आरेविक से तनिक प्यार नहीं करते थे। ओह, आरेविक... वह मेरे लिए रविरश्मियों से अधिक मायने रखती थी। हाल ही में मुझे इसका अहसास हुआ। वह स्कूल की नौवीं कक्षा में थी और मैं दसवीं में पढ़ता था। हॉल के पार हमारी कक्षाएँ एक-दूसरे के आमने-सामने थीं। सड़क के पार

हमारे मकान एक-दूसरे के ग्रामने-सामने थे। संक्षेप में हम सूरज ग्रौर धरती की तरह थे: हमेशा एक-दूसरे के सामने ग्रौर हमेशा इतनी दूर।

ग्रारेविक दुबली पतली ग्रौर ख़ूबसूरत थी। उसकी बड़ी-बड़ी, काली, भयभीत-सी ग्राँखें थीं। वह पिछले दिनों में बड़ी रूपवती हो गयी थी ग्रौर इसी कारण उसकी ग्राँखों के किनारे हमेशा लाल रहते थे: मैडम कांटी उसे देखना नहीं सहन कर सकती थी। उसे चोट पहुँचाने का कोई मौक़ा वह नहीं चूकती। गार्सो भी उससे कब पीछे रहनेवाला था। सो, ग्रारेविक की बड़ी-बड़ी काली ग्राँखें हमेशा ग्राँसुग्रों से डबडबायी रहतीं।

उनके फाटक के बाहर मैं ग्रारेविक की प्रतीक्षा करता।

"तुम कितनी बड़ी हो गयी हो, ग्रारेविक। तुम कितनी ख़ूबसूरत हो गयी हो..."

वह मुझे हैरानी से देखती। उसे मेरी बात पर विश्वास नहीं ग्राता।

"ग्रार्मेन, क्या तुम्हें कोई ख़्याल नहीं कि वे मुझ पर कितनी तानाकशी करते हैं जो तुम भी कमी पूरी करने लगे?"

"लेकिन मैं तो दिल से सच्ची बात कह रहा हूँ, ग्रारेविक। तुम सचमुच ख़ूबसूरत हो..."

वह क्रुद्ध प्रतीत हुई, लजायी भी लेकिन उसकी ग्राँखें मुस्करा रही थीं।

"तो? कुछ ग्रौर कहना है?" उसने बात टालने की कोशिश की।

"ग्राज शाम को बाग़ में ग्राग्रो। मैं तुम्हारी राह देखूँगा..."

वह पल भर को झिझकी ग्रौर फिर घर के ग्रन्दर चली गयी।

उस शाम वह बाग़ में ग्रायी ग्रौर शाम रोशन हो उठी।

"हलो," वह सकुचाती बोली।

हम काफ़ी देर तक ख़ामोश रहे। मेरे होंठ ग्रनकहे प्यारे-प्यारे शब्दों को बुदबुदा उठे लेकिन मन ही मन, गुमसुम। सिर झुकाये-झुकाये वह सवाली नज़रों से देखती रही लेकिन चुपचाप।

"तुम्हारे ग्राने से मुझे बड़ी ख़ुशी है," मैं बोला। "तुम इतनी प्यारी हो, इतनी प्यारी..."

"तभी तो मैं ग्रा गयी। यह बात पहले कभी मुझसे किसी ने नहीं कही थी।" ग्रौर वह फिर ख़ामोश हो गयी मानो मुँह से निकल गयी बात का उसे ग्रफ़सोस हुग्रा हो।

फिर कुछ पल बाद वह बोली,

"तुम मज़ाक़ तो नहीं कर रहे, आर्मेन ?"

"क़सम से, तुम खिलती धूप-सी हो, आरेविक!"

हम उसी तरह पैदल वापस शहर आ गये और न चाहते हुए भी एक दूसरे से अलग-अलग रवाना हो गये।

यह बिना शब्दों, बिना चुम्बनों का प्यार था, बिना वायदों, उम्मीदों और क़समों के एक महान अभिभूतकारी प्यार था। मन ही मन एक दूसरे को चूमते, आलिंगनबद्ध करते हम ख़ामोशी से रास्ता तय करते और उसी सड़क से घर वापस लौट आते। इतनी-इतनी देर तक घर से बाहर रहने के लिए मैडम कांटी ने दो बार आरेविक की पिटाई भी कर दी थी।

इसी बीच खेतों में वसन्त का मौसम आन पहुँचा। यह हमारा आह्-वान कर रहा था। एक दिन स्कूल के बाद हम दोनों पाटल चुनने चले गये।

या ख़ुदा, वसन्त की क्या छटा थी! पहाड़, चरागाह और वादियाँ हरीतिमा में डूबी और धूप में झूलती दिखाई दे रही थीं। यहाँ-वहाँ असंख्य फूल बिखरे थे... तभी पहली बार मैंने इतनी ख़ुशी से आरेविक को हँसते देखा था... वह तितलियों के पीछे भागती रही और सोते में घुस-कर उसने मुझ पर पानी के छींटों की बौछार कर दी।

"मैं पगला गयी हूँ, ठीक है न?" वह बोली।

अब वह सचमुच खिलती धूप-सी लग रही थी। जब वह घास पर बैठ-कर फूलमाला बनाने लगी, झुककर मैंने उसकी गर्दन चूम ली। उसकी त्वचा में गरमाहट और मख़मल सी कोमलता थी। मेरे होंठों ने फूल व धूप का रसास्वादन किया। उसने विरोध तो नहीं किया लेकिन हाँ, जब मैंने उसके चेहरे की ओर देखा, उसकी अश्रुसिक्त आँखों में भय झाँक रहा था। वह रोने लगी।

"तुमने ऐसा क्यों किया?" उसने चेहरा अपने हाथों में छुपा लिया। कहीं मुझसे कोई ग़लती तो नहीं हो गयी थी? लेकिन चूमने में क्या ग़ल-ती हो सकती थी? उसकी आँखें यूँ लाल थीं मानो फिर फटकार पड़ी हो। लेकिन मैंने तो बस चुम्बन ही लिया था!

हम घर की ओर लौट पड़े। एकाएक हमारे इर्द-गिर्द धूल का ग़ुबार उड़ खड़ा हुआ। आरेविक बेजान-सी जहाँ की तहाँ खड़ी रह गयी।

"अरे, यह तो पापा है! .."

तब तक उसके पिता गाड़ी का दरवाज़ा खोल चुके थे। एक धूल भरा दानव हमारी ओर बढ़ा चला आ रहा था। तभी मुझे महसूस हुआ था, गार्सो के दो पैर हैं, वह चार पहियोंवाला नहीं। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था, वह इतना लम्बा और चौड़े कन्धोंवाला था।

"तू यहाँ क्या कर रही है, आरेविक?"

उसने ख़ुद को फूलमाला की मदद से बचा लेने की कोशिश की और फूल पिता को भेंट करने चाहे लेकिन उसने उन्हें ज़मीन पर फेंक दिया।

"तू यहाँ इस भिखमंगे के साथ क्या कर रही है, कुतिया की औलाद?" वह चिल्लाया।

फूलों को धूल निगल चुकी थी और अब जल्दी ही हमें भी खा डालेगी। गार्सो मुझसे मुख़ातिब हुआ।

"अपने आप में रह, छोकरे! तू अपनी औकात से बाहर जा रहा है! .."

फिर उसने आरेविक की चुटिया पकड़कर उसे कार में धकेल दिया। कार गरजी और धूल उड़ाती आगे बढ़ गयी। धूल राई के रंग की थी और हाँ, कार की अच्छी-खासी सफ़ाई होनी ज़रूरी थी...

उस दिन शाम को सामूहिक फ़ार्म के कार्यालय के बाहर बूढ़े बतियाने को इकट्ठा हुए।

"फिर उसके मिज़ाज बिगड़े हैं। या तो कोई उस पर बरसा है या वह किसी पर बरसनेवाला है।" बूढ़े मातो ने कहा। "कोई उससे पूछे तो वह अपनी नाक के आगे क्यों नहीं देख सकता? .."

"उसे कम दिखता है। उसकी आँखों में ज़ंग लग गयी है। आकाश की बात तो दूर वह पैरों तले की ज़मीन नहीं देख सकता। उससे बात करने से क्या लाभ? वह ज़ंग लगा बूढ़ा गार्सो है और इससे ज़्यादा कुछ भी नहीं..."

उसका कोप हमारे सिर उतरा। हमारा मिलना एक तरह से असम्भव ही हो गया था। स्कूल में भी आरेविक मुझ तक आने में भय खाती थी। आरेविक को डर था...

स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद मैं आगे पढ़ने के लिए येरेवान चला गया। कुछ समय बाद मुझे मालूम हुआ, आरेविक ब्याह दी गयी है। फिर

जंग लगे गार्सो को पदच्युत कर दिये जाने की ख़बर मिली। अब लोग कहते हैं उसके दो पाँव हैं दो हाथ हैं और वह बैठे-बैठे नहीं बल्कि पैरों के सहारे चलता है। शहर तक की सड़क पक्की बना दी गयी है। धूल अब वहाँ नहीं उड़ती तथा कारों, बरौनियों और लोगों की आत्माओं से नहीं जा चिपकती।

और मेरे हृदय में कहीं गहरे अभी भी आरेविक की याद बसी है। उस आरेविक की याद जिसकी गर्दन का स्वाद फूल व धूप जैसा था...

क्यों, यह अजीब नहीं, लड़कियो? लेकिन जानती हो, यह कोई पुराना इतिहास नहीं। यह सब ज्यादा से ज्यादा बीस साल पहले की बात है...

कारेन की प्रेम-कहानी

"कारेन, इधर आओ!"

यह आरेविक की आवाज़ थी। जब कभी वह हमारी खिड़कियों के बाहर दिखाई देती, सब उमंग से भर उठते। नीली पोशाक में आरेविक कुछ ऐसी लगती मानो आकाश का एक टुकड़ा ही हमारे बीच उतर आया हो। "मारिना" की धुन पर सीटी बजाता कारेन सीढ़ियों से दौड़ता नीचे उतर पड़ता। फिर आरेविक की बाँहों में बाँह डालकर, वह प्रेम की राह पर आकाश के अपने अनमोल टुकड़े के साथ चल पड़ता।

हमारी आँखों के आगे अन्धेरा छा जाता। यहाँ तक कि उन्हें देखकर अस्सी साल का आधा बहरा, जरा-जर्जर वानो भी ठण्डी आह भरे बिना नहीं रह सका और धीमे लेकिन हमारे लिए स्पष्ट स्वर में बोला:

"आह, क्या लड़की है!.. जी चाहता है आलिंगन में भींच लूं..."

हमारी पड़ोसन येरानुइ उसे जलाकर राख कर देनेवाली दृष्टि से देखती और कहती,

"इस उमर में। ख़ुद पर शर्म आनी चाहिए!"

आरेविक द्वारा उपेक्षित हमारा पड़ोसी कारो आरेविक और कारेन के जाने के बाद सीढ़ियों से ऊपर आता और तब तक कानिओ का तीन बन्दोंवाला आरिया "हंसो, मसख़रा!.." गाता रहता जब तक उसका गला नहीं बैठ जाता। बहरहाल, उसके कभी हँसने का तो सवाल ही नहीं उठता। फिर कहीं और दिल को राहत देने बाहर निकल पड़ता।

यह दृश्य हर रोज़ दुहराया जाता। अगर लड़की कभी-कभी नहीं आती तो प्रांगण के पड़ोसी चिन्तित हो उठते।

"मौसम ख़राब होनेवाला है। ठंड है, शायद बारिश होगी," अच्छा खुला दिन होने के बावजूद बूढ़ा वानो कहता।

उस पर सहानुभूति भरी दृष्टि डालकर बुआ येरानुइ कहती,

"बेचारा, ऐसी गर्मी में सर्द हो रहा है! बुढ़ापा है, और कोई बात नहीं..."

कारो तो कहीं दिखाई ही नहीं देता; न तो वह आरिया ही गाता। जब कभी ऐसा दिन होता, मुझे उसके लिए ख़ुशी महसूस होती। चाहे जो भी हो, उसका गला तो नहीं बैठेगा...

लड़की से अगर देर हो जाती, कारेन धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे आता। हमें उस के बोझिल क़दमों की आहट सुनाई देती। अगर वह सीटी नहीं बजा रहा हो तो समझ लीजिये, आरेविक नहीं आयी। लेकिन कहीं अचानक वह सीटी बजाने लगता तो हम राहत की साँस लेते और उन्हें जाते देखने के लिए अपनी-अपनी बालकनी में तेज़ी से जा पहुँचते।

हमारा मकान झाड़ियों व पेड़ों की हरियाली में खो गया है। हर साल ऊँची व घनी होती इस हरियाली ने हमारे ख़ूबसूरत मकान को एकदम ढँक लिया है और बैरी आँखों से यह उसकी हिफ़ाज़त भी करती है। यह हरियाली कुछ मायनों में बहुत सुविधाजनक भी है। यह यातायात के शोर-गुल को पी जाती है और गर्मियों में धूप से हमारी रक्षा करती है। सर्दियों में जब पेड़ों पर तुषार छा जाता है, हमें साइबेरियाई ताइगा की प्रतिच्छवि देखने को मिलती है... पतझड़ में जब पत्ते झड़ जाते हैं, हमारा बाग़ बूढ़े वानो जैसा लगता है: दोनों सर्द होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्हें देखकर सूरज भी ठण्ड महसूस करता है।

हर कोई हमारे बाग़ को प्रेमियों की बगिया कहता है। जोड़े साल भर यहां रात हो या दिन, हर पल एक-दूसरे को चूमते रहते हैं। अगर चौबीस घण्टे से अधिक के दिन होते तो भी यक़ीनन उन घण्टों में भी वे ऐसा ही करते।

जीवन में हर अच्छी चीज़ आकृष्ट करती है—ख़ास तौर से चुम्बन। सो, दो बच्चों का बाप होने के बावजूद जब मैं प्रेमियों की चूमा-चाटी

देखता हूँ तो जी उनके नक़्शेक़दम पर चलने को करने लगता है। मैं दस साल पहले जैसी तत्परता से बीवी का चुम्बन लेने मकान के अन्दर चला आता हूँ। संक्षेप में, कारेन व आरेविक का प्रेम मुझसे लेकर बूढ़े वानो तक हम सब लोगों के लिए एक अच्छा उदाहरण बन गया था।

सर्दियों में कारेन व आरेविक हमारी सीढ़ियों के नीचे हॉलवे में मिला करते। काफ़ी रात गये वे विदा होते।

"तो अब मुझे जाना चाहिए। चूमो और विदा दो," आरेविक कहती।

"मैं तुम्हें घर तक छोड़ आऊँगा," कारेन उससे कहता और उसे चूम लेता।

"तुम्हें ठण्ड लग जायेगी, मेरी जान," आरेविक का स्वर बड़ा कोमल होता। "मत जाओ..."

"क्या तुम्हें ठण्ड नहीं लगेगी?!,"

फिर वे बहस शुरू कर देते। ज़मीन पर नजर गड़ाये, ठण्ड से ठिठुरकर कारेन आरेविक को उसके घर तक छोड़कर आता। कभी किसी के मुँह से उनके लिए कोई बुरी बात नहीं निकलती।

"उन्हें साथ देखकर ख़ुशी होती है," बुआ येरानुइ कहती। कारेन की माँ नुनिक उसकी पसन्द पर बेइन्तहा ख़ुश थी।

"उस जैसी लड़की तुझे शहर में ढूँढ़े नहीं मिलेगी," अपनी भावी बहू की ओर देखकर वह बोलती। फिर माँ का दिल जोर मारता तो यह बोले बिना नहीं रहती, "मेरा कारेन भी एक ही है।"

उसकी बात सही थी।

उस नौजवान जोड़े की ख़ुशियाँ दो बार लगभग बिखरते-बिखरते बचीं लेकिन हर बार प्रेम का पलड़ा भारी रहा।

...वसन्त आ चुका था! आरेविक ने कोट उतार डाला था और एक बार फिर ऐसा लगने लगा था मानो आकाश का टुकड़ा धरती पर उतर आया हो। शायद वसन्त सारियन की रंग पट्टिका ले उड़ा था, तभी तो धरती पर रंगों की ऐसी धूम मची थी।

कारेन का जन्म वसन्त में ही हुआ था। मैं जानता हूँ, आरेविक भी वसन्त में ही पैदा हुई थी। यह सच हो या नहीं लेकिन मेरा अन्दाज़ ऐसा

ही है क्योंकि वसन्त का जन्म वसन्त में ही तो हो सकता है। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास है।

कारेन का जन्मदिन पूरा का पूरा मकान हमेशा मनाता है। हर परिवार से कोई न कोई आदमी वर्षगाँठ में भाग लेने ज़रूर जाता है। इसमें क्या शक कि सबसे ज्यादा ख़ुशी आरेविक को होती थी।

जब उपेक्षित कारो अपना मनपसन्द आरिया गाने लगा, सबसे ज्यादा ज़ोरों से आरेविक ने तालियाँ बजायीं। तब कारो दुबारा गा उठा। और जब वे "स्वैलो वाल्ज़" की धुन बजाने लगे, कारो आरेविक से नृत्य का अनुरोध करता। वे पूरी शाम एक-दूसरे के साथ नाचते रहे।

दूसरे दिन हर कोई पिछली रात आरेविक को कारो द्वारा घर छोड़ने जाने की ही बात कर रहा था। और शायद उसने उससे अपने प्यार के बारे में भी बताया था। किसने यह बात देखी-कही थी, यह कोई भी नहीं जानता था लेकिन एक बात स्पष्ट थी: लड़की ने बड़ी सदयता से उसकी बातें सुनी थीं और विदा होते समय मुस्कराते हुए कहा था,

"गुड बाइ, कारो-कानिओ!"

हमारे प्रांगण में इस सनसनीखेज़ ख़बर पर बड़ी बहसें और आलोचनाएँ हुईं।

"च्-च्," बुआ येरानुइ किटकिटायीं। "तुम्हारे कहने का मतलब है, वह भी दूसरी मामूली लड़कियों जैसी ही है?.."

ऊँची आवाज़ और इशारों से यह ख़बर आख़िर बूढ़े वानो तक पहुँचायी गयी। यह बात अजीब भले लगे लेकिन उसने तनिक भी हैरानी नहीं ज़ाहिर की।

"लड़की लाजवाब ख़ूबसूरत है," वह धीमी आवाज़ में बोला। "किसी एक आदमी के हिस्से में यह सौन्दर्य बहुत ज्यादा है..."

नौजवान हँस पड़े, क्योंकि वानो की इस बात के साथ ही उन्हें पता चल गया था, बूढ़ा मुक्त प्रेम में विश्वास करता है...

हालाँकि आरेविक अब कहीं भी आस-पास नहीं फटकती थी, कारेन ने "मारिना" की धुन पर सीटी बजानी बन्द नहीं की थी। उसके न आने से अब किसी को कोई परेशानी नहीं होती थी। उसने कारेन के साथ दग़ा किया था, फिर उसकी फ़िक्र क्यों की जाये?! इसके बावजूद, प्रांगण पर उदासी की बदली ज़रूर छायी रहती थी।

कारो ने अपना आरिया बन्द कर दिया था। अब वह अपनी बालकनी में भी नहीं आता था। ख़ुदा न करे, अगर वह बालकनी में भूले से आ भी जाता तो बुआ येरानुइ जला डालनेवाली निगाह से उसे देखतीं और कहतीं:

"मैं तो कब से जानती थी, यह किसी दूसरे की लड़की बरगला लायेगा। चेहरा ही ठग जैसा है..."

"वह बहुत अच्छा लड़का है। लड़कियाँ उसे चाहती हैं। मैं तो उससे डाह करता हूँ," बूढ़ा वानो जवाब देता।

"दादा, उसमें कौन-सी ऐसी अच्छाई है? उसने अपने दोस्त को धोखा दिया है!"

"इसके बावजूद," बूढ़ा साभिप्राय बोलता।

"कारेन, इधर आओ!"

यह आरेविक की आवाज़ थी। हम सब अपनी-अपनी बालकनियों की ओर दौड़ पड़े। एक बार फिर हमारी आँखें ख़ुशी से चमक उठीं। फिर कारेन "मारिना" की धुन बजाता सीढ़ियों से नीचे दौड़ पड़ा। आरेविक की कमर में बाँहें डाले, आकाश के अपने अनमोल टुकड़े को समेटे वह प्यार की राहों पर फिर सरपट चल पड़ा।

"मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया," बूढ़ा वानो बोला।

"तुम क्या नहीं समझ सके?" बुआ येरानुइ उस पर बरस पड़ीं। "कारो से मुँह फेर आयी है!"

"हाँ, अच्छी लड़की है," तत्क्षण अपने विचार बदलते हुए वानो ने कहा। "उसके माँ-बाप तारीफ़ के क़ाबिल हैं..."

कारो ख़ुद को कमरे में बन्द करके कानियो के ग़म पर शोक मनाता गीत गा-गाकर जी हलका करता रहा। पड़ोसियों ने कारेन से पूछा कि क्या सचमुच कारो लड़की का अपहरण करना चाहता था। कारेन का जवाब हाँ में था। कारो के बारे में बातें करते समय वह एकदम शान्त था, उसकी आवाज़ में ग़ुस्से का हलका-सा पुट भी न था लेकिन इस विषय में उसने कोई विस्तृत जानकारी नहीं दी। बहरहाल, उसे अपनी आरेविक पर गर्व था।

"क्या आपके ख़्याल में आरेविक के प्रेम में सिर्फ़ मैं ही डूबा हूँ। उसे इतने

प्रस्ताव मिलते हैं कि सब को इनकार करना भी उस के लिए मुश्किल होता है।"

कारेन प्रसन्न था और हम सब आनन्दित थे।

तभी अचानक फिर ख़तरा पैदा हो गया...

आरेविक के माँ-बाप ने दोनों को शादी की इजाज़त देने से इनकार कर दिया। उसके पिता प्रोफ़ेसर मारकोसियान तो इस सम्बन्ध में बात भी नहीं करना चाहते थे। कारेन के माँ-बाप को उन्होंने बताया कि लड़की की शादी करने का अभी उनका कोई इरादा नहीं और अगर कभी ऐसा हुआ भी तो बेटी की शादी वह किसी मोची के बेटे से नहीं करेंगे...

"तुम अपनी हैसियत से काफ़ी बढ़कर बातें कर रहे हो," उन्होंने कारेन के पिता से कहा। "जितनी लम्बी चादर हो, पाँव उतना ही फैलाना चाहिए।"

हमारे मकान में हर कोई क्रुद्ध व नाराज़ था।

"मैं जानना चाहती हूँ, आख़िर यह मारकोसियान अपनी नाक से आगे क्यों नहीं देख पाता," बुआ येरेनुइ बोलीं।

"वह अदूरदर्शी है। अपने निम्न बुर्जुआ विचारों से अभी तक चिपका है," बूढ़े वानो की राय थी।

"कारेन, इधर आओ!"

अभी-अभी सूर्योदय हुआ था। जैसे-तैसे उघारे बदन लोग अपनी-अपनी बालकनियों में दौड़ आये। यह आरेविक थी। वह नीचे खड़ी-खड़ी मुस्करा रही थी। कैसा उज्ज्वल धूप भरा दिन था वह! आरेविक के हाथों में एक बड़ा-सा सूटकेस और एक छोटी-सी गठरी थी। उसकी आँखों में दृढ़ता थी तथा प्रेम की वह लौ थी जो आँधियों में भी नहीं बुझती...

"मारिना" की धुन बजाता कारेन सीढ़ियों से नीचे दौड़ पड़ा। फिर दोनों विहसते, सीढ़ियाँ तय करते ऊपर चल पड़े। दरवाज़े पर कारेन की माँ नुनिक ने उनका स्वागत किया,

"आरेविक! मेरी आँखों की रोशनी!.."

अब आरेविक हम लोगों की है। हमारे बड़े परिवार की वह एक सदस्या है। हम अपनी उपलब्धि, अपनी निधि पर ख़ुश हैं। आरेविक की

हँसी की उर्मियों में कानियो का भोंड़ा विलाप डूब चुका है। आकाश का यह छोटा-सा अनमोल टुकड़ा अब पाँचवीं मंज़िल पर रहता है।

"अपना घर मिल गया," बुआ येरानुइ ने कहा।

"प्रेम चिरन्तन है," बूढ़ा वानो बोला। "प्रेम में मृत्यु से अधिक शक्ति है। मैक्सिम गोर्की ने ऐसा ही कहा है..."

हाँ, प्रेम अधिक शक्तिशाली है लेकिन सिर्फ़ उन्हीं लोगों के लिए जो ख़ुद शक्तिशाली हैं...

लड़कियो, तुम कितना बदल गयी हो। सचमुच... और जानती हो, दुनिया तुम्हारे साथ बदल रही है। और तो और, अस्सी साल का आधा बहरा, जरा-जर्जर बूढ़ा वानो भी बदल गया है...

तुम कितना बदल गयी हो...

१९६२

मकरतिच आर्मेन

मुझे ढूँढ़नेवाली लड़की

मैं यूँ ही बेकार सड़क पर घूम रहा था कि किसी ने आवाज़ दी, "रुबेन!"

दौड़ती एक लड़की मेरे पास आयी। वह छोटी-सी, जवान लड़की थी, मुझसे उम्र में दो साल कम और उसके ख़ूबसूरत चेहरे पर कुछ-कुछ बाल सुलभ अभिव्यक्ति थी। निस्सन्देह, मैं उसे जानता था लेकिन किस जगह हम मिले थे? कौन थी वह?

"क्यों, रुबेन," मेरा हाथ पकड़कर किसी बच्चे की तरह दबाते हुए वह चहकी। "तुम सोच भी नहीं सकते, मैं कब से तुम्हें तलाश रही हूँ!"

"हलो," उसका नाम याद करने की निष्फल कोशिश करता मैं बोला।

"मैं पाँच दिनों से यहाँ हूँ और आज ही चली जाऊँगी। क्या यह शर्म की बात नहीं? लेकिन मेरी भी ग़लती नहीं। सच कहती हूँ। तुम कहाँ मिल सकते हो, मैं इस बारे में सभी लड़कियों से पूछ-पूछकर हार गयी थी। किसी को मालूम ही नहीं था..."

बेशक, मैं उसे जानता होऊँगा और शायद काफ़ी अर्से से हमारी मुलाक़ात नहीं हुई थी। लेकिन मैं इस तरह उसे एकदम भूल कैसे गया? और फिर, बहुत-सी लड़कियों से मेरी जान-पहचान भी तो न थी। मेरी परिचित लड़कियों में यह सबसे अधिक सुन्दर भी थी। मैं इसे भुला कैसे सकता था?

"अपने बारे में सब बताओ," वह बोली। "तुम्हारा क्या हाल है? इस समय क्या कर रहे हो? पहले-सी दीवानगी अभी भी है या कुछ चंट

बन गये हो? मुझे बड़ा अफ़सोस है, मैं दो घण्टे में ही यहाँ से चली जाऊँगी।"

वह इस ढंग से बोल रही थी मानो हमारे सम्बंध बड़े घनिष्ठ, मधुर और हार्दिक रहे थे। उसकी बातें सुनकर मेरी सबसे पहली इच्छा उसे बाँहों में भर लेने की हो रही थी। कहीं मैं उससे प्यार-व्यार तो नहीं करता था? और क्या दुबारा प्रेम नहीं कर सकता? वह लड़की ही ऐसी थी जिससे आदमी प्यार करने लग जाये। और मैं उसका नाम तक नहीं जानता था! उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचाये बिना मैं उससे नाम कैसे पूछ सकता था? लेकिन फिर, मुझे इससे क्या मिलता? कुछ भी नहीं। तो फिर ऐसे ही चलने दिया जाये। शायद बातचीत के दौरान कोई ऐसी बात निकल जाये कि मुझे सब कुछ याद हो आये। लेकिन वह अपने बारे में नहीं बोल रही थी। उसकी दिलचस्पी सिर्फ़ मुझमें और मेरी बातों में थी।

"कुछ बोलो भी तो, रुबेन। मैं देखती हूँ, तुम सचमुच बदल गये हो। पहले तो तुम एक मिनट में हज़ार शब्द की रफ़्तार से बक बक कर सकते थे। जानते हो, मुझे वही रुबेन ज़्यादा अच्छा लगता था। क्या तुम पहले की तरह मस्तमौला नहीं बन सकते? ओह," और वह बोलते-बोलते रुक गयी। "कहीं मैंने तुम्हारे प्रोग्राम तो नहीं चौपट कर दिये। क्या तुम कहीं जा रहे थे?"

"नहीं, बिलकुल नहीं," मैं जल्दी से बोल उठा।

"माफ़ करना, मैंने तुम्हें इस तरह आ पकड़ा। कोई दूसरा होता तो मैं कभी ऐसा नहीं करती। अच्छा, मुझे अपनी बाँह थाम लेने दो। अब इतने लम्बे-लम्बे डग न भरो, मेरे साथ-साथ चलने की कोशिश करो।"

मैंने कोशिश की और सफल भी रहा हालाँकि यह थोड़ा अजीब था।

मेरे दिमाग़ में कुछ भी याद नहीं आ रहा था!

मुझे कुछ कहना था। क्या कहूँ मैं? काश, मुझे पुरानी बातों में से कुछ भी याद आती, काश, मुझे इस लड़की की याद आ पाती!

तो, उसने मुझे अपने बारे में बताने कहा था। मैं और कर भी क्या सकता था, कोई दूसरा चारा न था। लेकिन इसका मतलब होगा, मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं जान पाऊँगा। मैं बातें शुरू करने के लिए किसी विषय की तलाश ही कर रहा था कि वह चलते-चलते रुक गयी।

"अरे, मुझे तो यहाँ अपनी सहेली से मिनट भर के लिए मिलने जाना

पड़ेगा। यहीं पर तुम मेरी प्रतीक्षा करो। अब ग़ायब मत हो जाना। मैं फ़ौरन वापस लौट आऊँगी।"

वह फाटक से अन्दर चली गयी। सड़क के ठीक सामने एक बड़ा-सा मकान था लेकिन प्रवेश-द्वार अन्दर प्रांगण में था। फिर प्रांगण में कई छोटे-छोटे मकान थे। काश, मैं जान पाता, वह किसके अन्दर गयी। मैं दूसरे दिन आकर उस लड़की के बारे में पूछ लेता। मैं जानता था, यह मूर्खता थी क्योंकि वह किस मकान में गयी, मुझे यह भी मालूम नहीं था..

दस मिनट बीत गये, वह नहीं लौटी। शायद मैंने लड़की की कल्पना कर ली थी? थोड़ी ज्यादा बीयर पी लेने का तो यह नतीजा नहीं? लेकिन वह तो एकदम वास्तविक-सी लगी थी।

बीस मिनट बीत गये। मुझे विश्वास हो गया, कोई लड़की ही न थी, सारी मुलाक़ात मेरी मनगढ़न्त थी। मकान पर एक आख़िरी नज़र डालकर, ठण्डी आह भर मैं वहाँ से धीरे-धीरे चल पड़ा। मैं कहाँ जा रहा था, मुझे सच में मालूम नहीं था लेकिन उसी ओर मैं लौट पड़ा जिधर से हम यानी मैं—आया था। शायद मैं वास्तविकता में लौटने की कोशिश कर रहा था।

"रुबेन!"

मैं पलट पड़ा। लड़की तेज़ क़दमों से मेरी ओर चली आ रही थी।

"तो तुम चम्पत हो जाना चाहते थे, क्यों?"

"नहीं, नहीं," क़ुसूरवार लहजे में मैंने कहा। "मैं बस यूँ ही चहलक़दमी कर रहा था।" वह काल्पनिक नहीं, यह देखकर मुझे बड़ी राहत मिली!

"आओ, रुबेन। मैं तुम्हारा ज्यादा समय नहीं लूँगी। सहेली के घर मैंने काफ़ी देर कर दी। अब मुझे जल्दी करनी है। मैंने अपना सामान भी नहीं बाँधा है।"

हम मोड़ पर रुक गये। वह कुछ कहना चाहती थी लेकिन तभी उसकी नज़र आती बस पर पड़ गयी।

"देखो! वह रही मेरी बस। नहीं, मुझे उस तक पहुंचाने की जरूरत नहीं। कोई हमें साथ देख ले तो मुझे ज़रूर चिढ़ायेगा। पिछले पाँच दिनों में मैं किसी के साथ बाहर भी तो नहीं निकली और अब आख़िरी पल में एक नौजवान के साथ देख ली जाऊँगी... अपना ध्यान रखो, रुबेन जान..."

बस पर उचककर चढ़ने से ठीक पहले वह मुड़ी और तेज़ आवाज़ में बोली,

"ख़त लिखना! पता तुम जानते ही हो। अगर पहले तुमने नहीं लिखा तो मैं भी नहीं लिखूँगी..."

मैं उसके पीछे-पीछे दौड़कर बस में चढ़ने ही वाला था कि दरवाज़ा भड़ाक से बन्द हो गया। इस तरह मेरे जीवन के एक छोटे से रहस्य का भी अन्त हो गया—ऐसे रहस्य का जिसे मैं कभी सुलझा नहीं सका।

लड़की बस के साथ चली गयी। फिर कभी न तो मैंने उसे देखा न उसने कुछ मुझे लिखा। इस तरह वह मेरी यादों में बस गयी है। एकदम अनजानी होने के बावजूद मैं उसे कभी नहीं भूल सकता।

साल पर साल बीत चुके हैं। मेरे जीवन में सच्चे प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ। मेरी एक से एक कई औरतों से जान-पहचान हुई लेकिन कभी-कभी मैं हैरान होता हूँ कि क्या मुझे ढूँढ़नेवाली वही लड़की इनमें सबसे अधिक ख़ूबसूरत न थी... शायद वह मेरे जीवन का एक सर्वाधिक महान प्रेम होता। शायद इसके विपरीत भी हो सकता था लेकिन मेरी उसके प्रति अनजानपने की वह स्थिति मुझे अभिप्रेरित करती है। एक बात तो स्पष्ट है: मैं आज भी उस लड़की की तलाश में हूँ जिसे मेरी तलाश थी।

तुम कहाँ हो? मेरे ख़त न लिखने से तुम नाराज़ न होना। मैं तुम्हारा पता भूल गया था, तुम्हारा नाम और ख़ुद तुम्हें भी भूल गया था। मैं जानता हूँ, यह बात तुम्हें अपमानजनक महसूस होगी लेकिन यह सच है। फिर तुम्हीं ने तो कहा था, मैं कभी दीवाना हुआ करता था। तो फिर मुझे इस पागलपन के लिए माफ़ करना कि मैं तुम जैसी लड़की को भूल बैठा। मुझे इसकी अच्छी-ख़ासी सजा भी मिल चुकी है, मैं जीवन पर्यन्त तुम्हें नहीं भूल पाया हूँ।

तुम दयालु और सहृदय थी और तभी तो मुझे कहना पड़ता है: आज या कल, चाहे जो भी हो, तुम हमेशा ही वैसी ही रहो जैसी पहले थी। और जब कभी तुम्हारी नज़र सड़क पर अचानक मुझ पर पड़े, एक बार फिर मुझे मेरे नाम से बुलाओ। इस बार मैं ख़ामोश नहीं रहूँगा, इस बार मैं तुम्हें हज़ारों दिलचस्प बातें बताऊंगा लेकिन सब से पहले मैं तुम से पूछूँगा:

"तुम कौन हो?"

खजहाक गियुलनज़ारियन

छठा उपदेश

सबने कहा, वह एक महान कवि था।

यदि उसे ईश्वर में विश्वास होता, उसका पाप-स्वीकरण पादरी उसे नरक की कहानी और मग्दालेने की गाथा सुनाता। लेकिन वह आस्तिक न था... इसके अलावा, वह पौरुष सम्पन्न व्यक्ति था, जैसा कि मोटे मोटे वासनात्मक होंठोंवाले और काले-काले, घुँघराले बालोंवाले नौजवान के साथ-साथ फिरनेवाली लड़कियों का विश्वास था। सबसे कमाल की उसकी काली, भावुकता भरी आँखें थीं जो एक नज़र में किसी पर भी विजय पा लेती थीं। पहाड़ों में टाई लगाने का रिवाज न था, सो वह कभी टाई नहीं पहनता था। नये फ़ैशन भी उसे नहीं रुचते थे।

यूनिवर्सिटी की लड़कियाँ चकाचक वसनधारी छात्रों को "छैला बाबू" और धुआँ उगलती काली पाइप व माँ के सामने भी अश्लील लतीफ़े कहने से बाज़ न आनेवाले, पारगेव-आरामज़्द को "आदिम" मनुष्य कहती थीं।

वह सब को विस्मय में डाल देता था। फिर भी, तरुणियों को कोई हैरानी नहीं होती थी। वे बड़ी आसानी से उससे प्यार करने लगती थीं।

"छठा उपदेश है: व्यभिचार न करो।"

लेकिन २,००० साल पहले अपने धर्मग्रन्थों की रचना करते समय, जब मेरी मग्दालेने कहीं क़रीब में ही रहती थी, मछुआरे और बढ़ई जीवन के बारे में क्या जानते थे?!

आस्मिक मरियम की अवतार था। गेगम ने कहा था कि एक दिन आस्मिक एक नये क्राइस्ट को जन्म देगी और यह क्राइस्ट हमारी सभ्यता को

समाप्त कर देगा। इसके बाद अणु राकेटों के सर्जकों के एक नये समाज की शुरुआत की ख़ातिर पहला बन्दर फिर पत्थर से बने कुल्हाड़े का आविष्कार करेगा।

हर पीढ़ी कयामत के दिन का अपने ढंग से मतलब लगाती है।

आस्मिक मरियम की अवतार थी। उसने पारगेव की काली पाइप, घुंघराले बालों, काली, एक नज़र में विजय पा लेनेवाली भाव प्रवण आँखों की ओर देखा और जैसा उस पर कोई असर ही नहीं हुआ। उसकी सहेलियाँ झल्लायी रहती थीं तो लड़के तिरस्कारपूर्वक कहते,

"आस्मिक?.. किस काम की है वह? उसे चलते-फिरते, बतियाते या हँसते देखकर हैरानी होती है। वह जीवन में सिर्फ़ एक बार ही रोयी है जब पैर किसी कील पर पड़ गया था।"

सबका विश्वास था, प्रकृति ने उसे सुन्दर बनाकर अपनी मेहनत बेकार की थी क्योंकि वह पारगेव आरामज्द को भी नज़र उठाकर नहीं देखती थी। लेकिन पारगेव उसे देखने से नहीं चूका था। वह उसे देखने से इसलिए नहीं चूका था क्योंकि आस्मिक लड़कियों में सबसे ज्यादा अन्यमनस्क और आकर्षक थी। लेकिन शायद ख़ास तौर से इसलिए कि वह उसके प्रति आँख बन्द किये रहती थी: उसकी आँखें तो उस पर उठती थीं लेकिन वह उसे देखती नहीं थी।

"आओ, थिएटर चलें।"

आस्मिक की आँखें चमक उठीं।

"आओ, भी। आज मन कुछ उदास लग रहा है।"

"क्या सिर्फ़ उदासी महसूस होने पर ही तुम थिएटर जाते हो?"

"नहीं। मेरा मतलब यह तो नहीं था।"

"और जेम्मा?"

"वह मुझे बोर कर चुकी है।"

"मैंने तो अभी तक बोर नहीं किया है न?"

"सच पूछो तो हम अभी तक एक-दूसरे को जानते भी नहीं," पारगेव बोला और हंस पड़ा।

क्या हमें एक-दूसरे को जानना चाहिए?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"तुम नयी हो, सुन्दर हो और अपरिचित हो।"

"तब तो मैं एकदम ही नहीं जाऊँगी।"

"तुम ज़रूर जाओगी।"

उस समय सब चकित रह गये जब आख़िरकार आस्मिक ने सहमति दे दी।

उस शाम कोई जॉर्जियाई कलाकार अपनी मण्डली के साथ नाटक पेश कर रहा था और एक आर्मीनियाई डेस्डेमोना को एक जॉर्जियाई ओथेलो द्वारा गला घोंटते देखने आधा शहर उमड़ पड़ा था।

डेस्डेमोना के गला घोंटने का दृश्य अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा था और पारगेव आस्मिक की भावुकता देखकर चकित रह गया था।

"आओ, किसी कैफ़े में चलते हैं," थिएटर से बाहर आते हुए वह बोला।

"बड़ा ही अद्‌भुत प्रस्तुतीकरण था, न?"

"तुम्हारा साथ हो तो सब कुछ सुन्दर है!"

"क्यों? मैं तो शायद कुछ बोली भी नहीं।"

"इससे क्या? चलो, कैफ़े चलें। मेरी यही इच्छा है।"

"तो मैं नहीं जाऊँगी।"

"अरे, आओ भी।'

उनके अन्दर घुसते ही फुलफुले बालोंवाली तीन स्कूली लड़कियाँ उनके पास तेज़ी से आ पहुँचीं: पारगेव-आरामज़्द ने कृपापूर्वक उन्हें अपने हस्ताक्षर दिये। उस पल से उनकी हस्ताक्षर पुस्तिकाएँ ऐतिहासिक दस्तावेज़ बन गयीं।

तीनों लड़कियां चली गयीं।

"देखती हूँ, तुम काफ़ी मशहूर हो," आस्मिक वक्र मुस्कान के साथ बोली।

"अच्छा लिखता हूँ। आर्मीनियावासियों को आख़िर एक अच्छा कवि मिलेगा।"

"नहीं, उन्हें कुछ हासिल नहीं होगा।" आस्मिक ने शान्त स्वर में आपत्ति व्यक्त की।

"क्या मतलब है तुम्हारा?"

"ऐसा कुछ नहीं होगा। वास्तव में तुम में अभिभूतकारी प्रेरणा नहीं। बस तुम ख़ुद से और अपनी बुद्धि से प्रेम करते हो।"

"यानी मैं बुद्धिमान हूँ।"

"यह भी कोई कहने की बात है, प्रतिभाशाली भी हो।"

"फिर कमी क्या है?" सन्तुष्ट होकर पारगेव आरामजद ने पूछा।

"मैं नहीं जानती।"

"क्या कभी कोई तुम्हारे साथ इश्क़ करना चाहता था? मैं यह नहीं पूछ रहा कि तुम किसी से प्यार करती थी या नहीं। लेकिन कम से कम तुम्हारे किसी अध्यापक को तो दिल का रोग लगा ही होगा?"

"नहीं। फिर यह सवाल अनुचित भी है। अच्छा, छोड़ो ऐसी बातें। चलो, तुम्हारी सेहत के लिए जाम उठायें!"

"हम तो प्यार के लिए ही जीते हैं," पारगेव बेतुके ढंग से बोला। "हम कविता लिखते हैं और दो हज़ार साल से भी अधिक समय से हम आर्मीनियाई प्यार करने के लिए ही जीते आये हैं।"

"ठीक है, तो फिर करो प्यार।"

"किससे?"

"मुझसे।"

पारगेव हँस पड़ा।

"जरूर करूँगा लेकिन तुम इनकार कर दोगी। मेरी मग्दालेने मेरी रुचि के कहीं ज़्यादा क़रीब है। तुम मरियम हो।"

"जानती हूँ। लोग तो यह भी कहते हैं कि मैं नये क्राइस्ट को जन्म दूँगी," आस्मिक बोली और हँसने लगी। "मैंने सुना है।"

"यह मेरी गढ़ी-गढ़ायी बात नहीं।"

आस्मिक ने वेटर को इशारा किया।

"मेरे पतिदेव के लिए एक सौ ग्राम कोन्याक।"

वेटर चला गया। बेलाग उलझन में पड़कर पारगेव ने शेम्पैन का गिलास मेज़ पर रख दिया।

"क्या कहा तुमने?"

"क्या तुम सौ ग्राम कोन्याक नहीं पी सकते?"

"बेशक, पी सकता हूँ।"

"पैसे मैं दूँगी। इसमें परेशान होने की कोई बात नहीं। आख़िर हम दोनों अभी छात्र ही तो हैं।"

तभी वेटर लौट आया।

"माफ़ कीजिए, मैं पूछना भूल गया, कौन-सी ब्राण्डी आप पसन्द करेंगे?"

"मेरे पति हमेशा सबसे अच्छी ब्राण्डी ही पीते हैं।"

पारगेव अविश्वास भरी दृष्टि से उसे घूर रहा था।

"घूरो मत," वह बोली और हँस पड़ी।

"मामला बड़ा जम रहा है।"

"जमने को और भी मामले हैं। जनवरी की छुट्टी में हम विवाह करेंगे।"

"क्या तुम्हें मालूम है, अगर मैंने सभी औरतों से शादी रचा ली होती तो मेरी कितनी बीवियाँ रहतीं?"

"लेकिन तुम मुझसे ज़रूर ब्याह करोगे। मैं औरों जैसी नहीं।"

जब वे वहाँ से जाने को खड़े हुए, आस्मिक बोली,

"गोआर मुझसे ज्यादा ख़ूबसूरत है और नाज़िक अधिक मधुर। तुम पाइप पीते अच्छे नहीं लगते और सच पूछो तो तुम ठीक से पाइप पीना नहीं जानते। अब पाइप छोड़ दो..."

दूसरे दिन सुबह में पारगेव आस्मिक के बारे में ही सोच रहा था। वह जितना सोचता, उतना ही कुपित होता जाता। दर्पण के पास से गुज़रते हुए उसने अपना चेहरा देखा। निस्सन्देह पाइप ख़ूब जँच रही थी। आस्मिक का कहना ग़लत था। रोज़ की तरह पाइप पीता वह यूनिवर्सिटी रवाना हो गया। कॉरीडोर में प्रोफ़ेसर लालाइयन ने उसे रोक लिया।

"तुम्हारी पुस्तक मैंने पढ़ी है, नौजवान। मुझे अच्छी लगी।"

"धन्यवाद।"

"मुझे धन्यवाद देने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि मिथ्याभिमान ने तुम्हें घर नहीं किया तो वास्तविक कवि बनोगे।"

"क्या?"

"छोड़ो, कुछ भी नहीं। तुम्हारी घण्टी बज गयी।"

घण्टियों के बीच फ़ुर्सत में आस्मिक ने एकदम अप्रत्याशित ढंग से कहा,

"चलो, आज मैं तुम्हें अपनी चाची के यहाँ ले चलूँ।"

"किस लिए?"

"वह पुराने ढंग की हैं। उनका कहना है, जब तक मेरे प्रेमी को वह नहीं देख लेंगी, हमारे विवाह की इजाज़त नहीं देंगी।"

"बन्द करो यह सब!"

"तुमने पाइप नहीं छोड़ी?"

"कौन छुड़ायेगा मुझे?"

"अगर तुमने पाइप नहीं छोड़ी, मैं तुमसे शादी नहीं करूँगी।"

"मैंने कहा न, बन्द करो यह सब!" पारगेव ग़ुस्से से बोला।

"अड़ियल न बनो। मैं कल ही तुम्हें इस बारे में कह चुकी हूँ।"

चाहे जितना भी अजीब लगे, उसी शाम वे मिले।

"सब तुम्हें मरियम समझते हैं।"

"सब भूल कर रहे हैं। तुम्हारी क़मीज़ का कॉलर गन्दा है।"

"इससे तुम्हें क्या?"

"अपने पति की देखभाल मेरा कर्तव्य है।"

"तुम्हारे मज़ाक़ मेरी समझ में नहीं आते!"

"मैं एकदम मज़ाक़ नहीं कर रही हूँ। मैं बहुत गम्भीरता से कह रही हूँ।"

"लेकिन मैं..."

"मुझसे प्रेम करो।"

"मैं अपने दिल को मजबूर नहीं कर सकता।"

"तो न करो। बस अपने दिल से पूछो... मैं अपने अल्फ़ाज़ वापस लेती हूँ। हम दोनों आज चाची के यहाँ नहीं जायेंगे।"

सारिक के आवास की चाबियाँ पारगेव की जेब में खनक उठीं।

"आओ।"

"कहाँ?"

"बस चली आओ।"

"मैं मज़ाक़ कर रही थी। येरेवान में मेरी कोई चाची नहीं।"

"कोई बात नहीं। आओ चलें।"

आस्मिक बिस्तरे पर बैठ गयी। उसका सूती स्कर्ट थोड़ा ऊपर सरक गया था।

"तो तुम कहती हो, हम ब्याह रचायेंगे," पारगेव भर्रायी आवाज़ में बोला।

"अब नहीं..."

तभी उसने उसे अचानक चूम लिया, फिर सहमकर पीछे खिसक गया।

"मैं यहां तुम से विवाह नहीं करूँगी।" वह बोली और मुस्करायी।

"तो फिर यहाँ आयी ही क्यों थीं?"

"तुम बिगड़ गये हो। हर चीज़ तुम्हारे लिए आसान होती है। आ-ओ चलें।"

"तुम कहीं नहीं जाओगी।"

"मूर्ख न बनो। मैं जा रही हूँ, तुम भली-भाँति जानते हो और मुझे छात्रावास तक अवश्य छोड़ोगे।"

प्यार के अलावा पारगेव के मन में हज़ार अफ़रा-तफ़री मच गयी; क्रोध, आश्चर्य और कचोट...

"बुरा मत मानो," आस्मिक बोली और अचानक उससे लिपट गयी। "इससे पहले कभी किसी ने तुम से प्यार नहीं किया। सबने तुम्हें धोखा दिया और तुम सोचते रहे, तुम उन्हें छल रहे हो... मुझे छात्रावास ले चलो..."

आश्चर्य की बात थी, उस रात उसकी पहली सच्ची कविता उद्भूत हुई। यह एक ग़ैर और कुछ हद तक गर्हित लड़की के बारे में थी।

सब लोग हक्का-बक्का थे; अचानक ही पारगेव-आरामज़्द ने पाइप छोड़ दी और अब हमेशा उसकी क़मीज़ साफ़-सुथरी रहती थी।

वही हुआ, उन्होंने फिर शादी नहीं की। उसके छात्रावास की खिड़की के बाहर उसे घण्टों खड़ा रहना पड़ा; गुकास्यान नामक स्क्वायर की बेंच पर उसे बार-बार प्रस्ताव करना पड़ा। और जब पारगेव-आरामज़्द ने टाई बाँधनी सीख ली, वह आम लोगों की तरह हो गया। केवल आस्मिक दू-सरे ढंग से सोचती थी। वह दूसरे ढंग से सोचती थी और ख़ुश थी...

सेरो ख़ानज़ादियान

सफ़ेद मेमना

बूढ़ा माली नवासरद हाथ-मुँह धोकर, आराम करने की इच्छा से अख़-रोट के पेड़ तले बहते सोते के पास जा पहुँचा। धूप से झुलसे चेहरे पर शीतल जल छिड़कने के लिए अभी वह नीचे झुका ही था कि उसे टीम के नेता की आवाज़ सुनाई दी।

"ऐ, नवासरद! जल्दी करो! तुम्हारा अर्शाक लौट आया!.."

"क्या?" बूढ़ा बेताबी से बोला और कठिनाई से कमर सीधी करके उठ खड़ा हुआ। अपनी उम्र के हिसाब से सब को चौंका देनेवाली चुस्ती से वह दौड़ता हुआ उस आदमी के पास आ पहुँचा। "क्या कहा तुमने? वह कब आया? कहाँ है?"

"गाँव में है। अपनी आँखों से मैंने उसे देखा। गाँव तक वह नीली सिडान गाड़ी में आया है। तुम बड़े क़िस्मतवाले हो, नवासरद! ईश्वर ने तुम्हें बड़ा नेक भतीजा दिया है!"

सूरज पहले की अपेक्षा दस गुना अधिक तेज़ चमकने लगा। नवासरद को अपने पाँव धरती पर पड़ते नहीं महसूस हो रहे थे। उसका दिल बल्लियों उछल रहा था।

गाँव की ओर देखता हुआ नवासरद कुछ चिन्तन मुद्रा में प्रतीत हुआ। लेकिन तभी तेज़ी से मुड़कर वह उस ओर चल पड़ा जहाँ उसने शराब ज़-मीन में गाड़ रखी थी।

दस वर्षों से उसने अर्शाक को नहीं देखा था। दस साल वह आस लगाये सड़क की ओर देखता और बाट जोहता रहा था। बड़े धैर्य से वह प्रतीक्षा करता रहा था। और अब उसे देखने का मौक़ा मिलेगा। अर्शाक

अच्छे समय में आया था: बाग़ों में फल पके थे और वह ख़ुद भी चुस्त-दुरुस्त था।

गाँव में नवासरद का कोई भी जीवित रिश्तेदार न था। उसका जीवन सुखद न रहा था। उसके कभी कोई अपनी औलाद नहीं हुई और पत्नी बहुत साल पहले परलोक सिधार चुकी थी। लड़ाई के ज़माने में अपने इकलौते बेटे को छोड़कर उसके भाई-भाभी भूखों मर गये थे।

कुदाल उठाकर नवासरद ने गड्ढे के किनारे खोदना शुरू किया। ज़मीन नम थी और उससे शराब की ख़ुशबू आ रही थी। दस साल पहले गाड़े एक छोटे से जग को उसने बाहर निकाल लिया। ठण्डे बर्तन के स्पर्श से वह हर्षित हो उठा। शराब की आह्लादकारी गन्ध लेते हुए वह अपने-आप से बोल उठा: "यह तो शेरनी का दूध बन गयी है।" फिर उसे नदी किनारे विशाल शहतूत के पेड़ तले पककर तैयार हो गये तरबूज़ की याद हो आयी। उसने इसे टहनी से काटकर अपनी लम्बी जाकिट के किनारे से पोंछा और फिर मुग्ध दृष्टि से उसकी चमकती धारियों को निहारने लगा।

"मेरे अर्शाक को तरबूज़ बड़े अच्छे लगते हैं," वह बुदबुदाया। घुटनों के बल बैठकर, दोनों बाँहों में तरबूज़ लेकर उसने कसकर दबाया, फिर छिलके से कान लगाकर आवाज़ सुनी। हाँ, तरबूज़ ख़ूब उम्दा था। फिर वह अंजीर वृक्ष के पास जा पहुँचा। बड़ी मुश्किल से ऊपर चढ़कर उसने शहद से मीठे फल तोड़ने शुरू किये। फल में चिड़ियों ने यहाँ-वहाँ चोंच मार दी थी। सबसे अच्छे फलों को तोड़कर उसने एक बेलबूटेदार ख़ुरजी में रख लिया।

फिर नवासरद नदी के किनारे-किनारे उस ओर चल पड़ा जहाँ छह महीने का एक सफ़ेद मेमना चर रहा था। किसी ख़ास मौके के लिए उसने मेमने को अब तक बचा रखा था।

"अर्शाक घर आया है। ख़ुशक़िस्मती से मैं यह दिन देखने के लिए जिन्दा रहा," मन ही मन में बोलते हुए नवासरद ने मेमने का पगहा खोलकर हाथों में ले लिया। मेमना धीमी आवाज़ में मेमियाया।

"आओ, चलें दोस्त," नवासरद बोला। "चलो अर्शाक घर आया है।"

वह गाँव की ओर जानेवाले सीधी चढ़ाई के रास्ते पर चल पड़ा। भारी-

टोकरा उसके कन्धे दबाये डाल रहा था, जग में शराब छलक रही थी और भोला-भाला मेमना कभी उससे आगे, कभी उससे पीछे भाग रहा था।

"इतनी जल्दी कहाँ चल दिये?" रास्ते में मिलनेवाले लोग उससे पूछते।

"अर्शाक हमसे मिलने घर आया है," बूढ़ा गर्व से जवाब देता।

रास्ते में हर पेड़ और झाड़ी, हर पत्थर और झरना उसे अर्शाक के बचपन की याद दिला रहे थे। बहुत बार वह लड़के को पीठ पर बैठाकर चढ़ाईवाला रास्ता पार कर चुका था। वह इसी पत्थर पर सुस्ताने बैठता था। नवासरद लड़के को नाशपाती पकड़ा देता और लम्बी जाकिट के किनारे से उसकी नाक पोंछ देता था। और वह रहा सोता—इससे पानी पीना अर्शाक को बड़ा पसन्द था। नवासरद अपनी अंजुलि में पानी भरता और लड़का मुँह लगाकर पी लेता।

यहाँ छोटी-सी बगिया थी। आज भी पेड़ों में भरपूर फल लगे थे। पेड़ पतझड़ में भी काफ़ी समय तक हरे-भरे रहते थे। जब अर्शाक सात साल का था, उस चेरी वृक्ष से गिरकर उसने अपनी टाँग तोड़ ली थी। नवासरद कई मील तक ढोकर उसे दूसरे क़स्बे में डॉक्टर के पास ले गया था।

फिर नवासरद को याद आया, अर्शाक जब पढ़ने शहर गया, उसका ख़र्च चलाने के लिए उसे बगिया समेत क्या-क्या बेचना पड़ा था। यह सब बड़ा लम्बा चला लेकिन थोड़े में विश्वविद्यालय से स्नातक बनने के बाद अर्शाक पढ़ने के लिए मास्को चला गया। वह दुनिया में काफ़ी ऊँचे पहुँच गया था।

अपने गाँववासियों को वह अक्सर बताया करता था कि राजधानी में अर्शाक बड़ा ही महत्वपूर्ण काम कर रहा है, उसके पास बड़ी शानदार गाड़ी है और वह मास्को में सबसे बड़े मकान में रहता है।

बूढ़े को गाँव पहुँचने की जल्दी थी। जग में शराब छलक रही थी, दीन-हीन मेमना उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था।

आख़िर वह अपने घर पहुँच गया लेकिन बाहर उसे अर्शाक की गाड़ी दिखाई नहीं दी। "यहाँ तक गाड़ी क्यों नहीं ले आया?" नवासरद समझ

नहीं पा रहा था। "अरे, हाँ, मैं भी क्या कह रहा हूँ। यहाँ बजरियाँ बड़ी नुकीली हैं। सोचा होगा, कहीं टायर न ख़राब हो जायें। ठीक ही है जो गाड़ी घर तक नहीं ले आया।"

कई मकानों के बीच सपाट छत का उसका एक मंज़िला मकान पहाड़ों की ढलान पर बने उक़ाब के घोंसले-सा लगता था।

आँगन में पहुँचकर नवासरद ने जग व टोकरा ज़मीन पर रख दिया और मुट्ठी भर घास मेमने के पास डालकर, इधर उधर नज़र दौड़ायी। जीवन में पहली बार उसे अपना मकान दयनीय व जरा-जर्जर महसूस हुआ।

"कोई बात नहीं, यह अर्शाक का भी तो घर है। यहीं तो वह पलकर बड़ा हुआ था। भला अपने घर से वह शर्मिन्दा थोड़े ही होगा," ख़ुद को आश्वस्त करते हुए वह आँगन साफ़ करने लगा।

"मुबारक हो, नवासरद। अर्शाक वापस लौट आया है।" बाड़े से झाँकती बुढ़िया पड़ोसन ने कहा।

ख़ुशी से नवासरद का चेहरा चमक उठा।

"शुक्रिया। तुम्हारा भगोड़ा भी लौट आये।"

"मुझे अर्शाक दिखाई दिया था।"

"क्या यहाँ आया था?"

"नहीं। मैं सूई का पैकेट ख़रीदने दूकान गयी थी तो उसे फ़ार्म के कार्यालय के पास खड़ा देखा था। कैसा शानदार लड़का है। तुम नहीं कह सकते, वह किसी शाह का बेटा नहीं। मैं तो उस पर से अपनी नज़र ही नहीं हटा पा रही थी। भगवान तुम्हें ख़ुशी दे।"

"शुक्रिया," भावावेश से भर्रायी आवाज़ में बूढ़ा बोला। वह दूने उत्साह से आँगन की सफ़ाई में जुट गया।

पहले उसने सारी गन्दगी झाड़ बाहर की: "मैं नहीं चाहता, लड़के के जूते गन्दे हों।" फिर एक पत्थर से किवाड़ से बाहर निकली कील अन्दर ठोंक दी: "अर्शाक के कपड़ों को कहीं खोंच न लग जाये।"

नवासरद ने दरवाज़ा खोला। दीवार से लगी एक खस्ताहाल खाट टिकी थी। "मैं कहूँगा, याद है, तुम इस पर और मैं वहाँ, फ़र्श पर सोता था?" वह बोल-बोलकर सोच रहा था। "मैं कहूँगा, यह तुम्हारी पुरानी कटोरी है जिसमें तुम खाते थे। और अर्शाक यह देखो, तुम्हारा

लकड़ी का चम्मच। वह दिन याद है जब मैंने इसे बढ़ई मानस से ख़रीदा था और तुम रो पड़े थे कि इस पर कोई कढ़ाई नहीं? फिर मैं इसे रंग-साज़ के पास ले जाकर रँगवा आया था।"

इस तरह ख़्यालों में अर्शाक से बातचीत करता वह सोते पर जाकर पानी ले आया और आँगन, टैरेस व अन्दर फ़र्श पर छिड़काव कर दिया। फिर उसने बुहारना शुरू किया।

अहाते के ऊपर से पड़ोसन बुढ़िया का सिर दुबारा झाँकता दिखाई दिया।

"नवासरद, जानते हो, अर्शाक अध्यक्ष के घर गया है?"

"नहीं। कब गया?"

"तुम्हारे लौटने से कुछ ही देर पहले।"

"घर पर किसी को नहीं पाकर ज़रूर वहाँ थोड़ा आराम करने चला गया होगा। आता ही होगा, रास्ता थोड़े ही भूलेगा।"

"हाँ, ज़रूर।"

नवासरद ने जलावन की थोड़ी लकड़ियाँ लाकर दरवाज़े के बाहरवाली अँगीठी के पास रख दीं। फिर पेटी से चाकू निकालकर वह मेमने के पास जा पहुंचा। लेकिन आख़िरी क्षण में उसका इरादा बदल गया। "अर्शाक के आने तक रुक जाता हूँ," ऐसा निश्चय करके उसने अध्यक्ष के दो मंज़िले मकान की ओर देखा। "वहाँ किस लिए रुका है? जल्दी ही अन्धेरा घिर आयेगा। अंजीर ख़राब हो जायेंगे, चैरी का स्वाद भी बिगड़ जायेगा।"

टोकरे से फल लेकर उसने खिड़की की चौखट पर रख दिये। फिर पड़ोसन से एक नया मेज़पोश माँगकर मेज़ पर डाल दिया। गर्द झाड़कर सोफ़े को ढँककर उसने उस पर तकिये भी रख दिये।

अब सब कुछ तैयार था। लेकिन अर्शाक अभी तक नहीं आया था। "बात क्या है? वह अध्यक्ष के घर गया ही क्यों?" चिड़चिड़ाकर नवासरद सोच ही रहा था कि अचानक उसके हाथ काँप उठे। फिर भी उसने जल्दी-जल्दी ख़ुद को आश्वस्त किया, "अर्शाक बड़ा आदमी है, उसे अध्यक्ष के पास रुककर गाँव की खोज-ख़बर तो लेनी ही थी। और फिर जल्दी क्या है? मेरे साथ कुछेक दिन तो रहेगा ही। मैं उसे आँखों से ओझल नहीं होने दूँगा। फिर सारी कमी पूरी हो जायेगी।"

सूर्य अस्ताचलगामी था लेकिन अर्शाक अभी तक घर नहीं लौटा था। बूढ़े की चिन्ता का कोई पारावार न था। एक पल तो वह अध्यक्ष के घर की ओर चल ही पड़ा था लेकिन फिर अपना विचार बदल दिया।

प्रांगण में जाकर उसने पड़ोसी के पोते को आवाज़ दी।

"दौड़कर जा और देख तो अर्शाक क्या कर रहा है। कहना, मैं घर पर उसकी राह देख रहा हूँ," वह बोला।

पलक झपकते लड़का लौट आया।

"हाँ? तूने अर्शाक को देखा?"

"जी।"

"वह क्या कर रहा है?"

"शराब पी रहा है।"

"तूने बताया, मैं घर पर ही हूँ?"

"जी।"

"क्या बोला?"

"कहा, 'ठीक है'।"

नवासरद ने मन ही मन में शब्द दुहराये। "तो इसका मतलब है, अब जल्दी ही घर आ पहुँचेगा। तब तक मैं सीख़ कबाब के लिए आग जला लूँ।"

जल्दी ही अँगीठी में तेज़ आग धधक उठी। फिर उसने सीख़ों को साफ़ करना शुरू किया। फिर घर में जाकर लैम्प से धूल साफ़ कर मेज़ के पास बैठ इन्तज़ार करने लगा।

समय अनवरत रूप से घिसटता-सा बीतता रहा। गाँव में रोशनियाँ गुल हो गयीं और घरों में चैन की नीन्द उतर आयी। गलियों में शोर थमता गया। थोड़ी ही देर में बस दूर से आती कुत्तों के भौंकने की खिन्न आवाज़ ही सुनाई देने लगी।

अर्शाक अभी तक नहीं आया था। आग बुझ चुकी थी, अँगीठी में राख का ढेर भर बच रहा था। मेमना जुगाली करता घास पर लेटा था। अन्धेरे में झाँकता नवासरद पूरी तरह चौकस बैठा था। तनाव के कारण आँखों में आँसू आने लगे थे, सिर भारी महसूस हो रहा था। उसने खड़ा

होना चाहा लेकिन पाँवों को तो जैसे लकवा मार गया था। "मैं क्यों उसके पास हाथ पसारने जाऊँ? मैं उससे उमर में बड़ा हूँ। उसे मेरे पास आना चाहिए," वह भुनभुनाया लेकिन फिर ख़ुद को दिलासा देने लगा, "छोड़ो भी, आख़िर बड़ा आदमी है। उसे शायद अध्यक्ष के साथ किसी अहम मामले पर विचार-विमर्श करना हो। सुबह में तो घर ज़रूर ही आयेगा।"

इसके बावजूद वह प्रतीक्षारत रहा। पौ फटने तक। पतझड़ की रात बीतनेवाली थी। लगातार अन्धेरे में घूरते रहने के कारण बूढ़े की आँखों में धुन्ध छा गयी। नीन्द उसे अपनी बाँहों में धीरे-धीरे समेटे जा रही थी। मेज़ के पास बैठे ही बैठे नवासरद गहरी नीन्द में सो गया।

न जाने वह कितनी देर तक सोता रहा था। प्रांगण से आती पड़ोसन की आवाज़ से उसकी नीन्द खुल गयी। आँखें खोलने के बाद खिड़की से झाँकती प्रथम रवि-रश्मियों को देखकर वह हैरान रह गया।

"नवासरद। ऐ, नवासरद!" पड़ोसन ने आवाज़ दी।

वह दौड़ता घर से बाहर निकल आया। पड़ोसन अहाते से झाँक रही थी।

"आज इतनी देर तक कैसे सोते रह गये?"

"क्या हुआ? क्या अर्शाक आ रहा है?"

"नहीं," उसने सिर हिला दिया। "तुम्हारा अर्शाक जा रहा है। सड़क की ओर देखो..."

नवासरद को छत सिर पर आती महसूस हुई। वह नीचे सायबान की छत पर जा चढ़ा। धूप में दमकती, सड़क पर फर्राटे भरती, तेज़ी से विलीन होती अर्शाक की गाड़ी दूर-दूर चली जा रही थी।

नवासरद किसी बूढ़े की तरह डाँवाँडोल चाल से चल रहा था। वह चढ़ाईवाले रास्ते से नीचे बाग़ों की ओर जा रहा था। ज़मीन को घूरती उसकी आँखें मानो धँस गयी थीं, उसकी कमर पहले से अधिक झुकी थी। सफ़ेद मेमना उसके पीछे-पीछे उछलता-कूदता चल रहा था।

गेगम सेवान

अबाबील

एक

वह फिर जा चुका था। उसके घर पर नहीं होने का मतलब था, वह नाव पर समुद्र में होगा। यह कहना कठिन था कि उसका वास्तविक घर कौन था: यह नाव या वह मकान जिसमें हमेशा उसकी बीवी इन्तज़ार करती होती, जहाँ मुलायम बिस्तर और सब कुछ था...

"कब आयेगा, नहीं बताया?"

पति से सम्बन्धित हर वस्तु से अनबन ज़ाहिर करनेवाली लम्बी ख़ामोशी के बाद वह मान और पीड़ा से बोली:

"मुझे नहीं मालूम। मैं कुछ भी नहीं जानती। सनकी आदमी के लिए समय भी कोई मायने रखता है? उसके गये अब तीन दिन होने को आये।"

"त्सुला की कोई ख़बर?"

"मुझे नहीं मालूम... अपनी लड़की के बारे में मुझे कोई ख़बर नहीं..."

उसकी आँखों में आँसू छलछला आये।

"अलविदा, अनास्तासिया," कहकर मैं गली में दौड़ पड़ा। मैं खड़ी चट्टानों की ओर दौड़ रहा था। तट पर आकर मेरी रफ़्तार धीमी होती गयी। मेरे जूते फटे-पुराने थे और इसी कारण कंकड़ों पर दौड़ने से पैरों को चोट लगी थी।

चमकता नीला आकाश था... समुद्र भी साफ व नीला था। वह गतिहीन प्रतीत हो रहा था। भरपूर आवाज़ में चीख पड़ने की मेरी बेलगाम इच्छा हो रही थी...

तट पर नावों के ढेर मन को उदासीन करते थे लेकिन मेरे मामा की नाव कहीं दिखाई नहीं दे रही थी।

हवा में ख़रबूज़ों की गन्ध बसी थी। मैं बैठकर जूते से बालू झाड़ने लगा लेकिन इससे पहले एक चिपटा-सपाट पत्थर पानी की सतह पर इस तरह फेंका कि वह फिसलता हुआ चला जाये लेकिन बेकार। पत्थर पानी से टकराते ही डूब गया... और बेमतलब मैं रोने लगा।

"अरे, ऐ चपरगट्टू!" चाचा योरगी चिल्लाये। पानी में बल्लियों पर बने अपने जीर्ण-शीर्ण "ताज़ा मछली" भोजनालय के एकदम किनारे आकर वह मेरी ओर देखते हुए हँस रहे थे।

"लेवान कहाँ हैं?" मैंने पूछा।

"तो तुम्हारा मतलब उस खब्ती आदमी से है?"

"आप ख़ुद खब्ती होंगे!.."

"चीखना बन्द करो, यहाँ कोई बहरा नहीं। या तुम... तुम्हारा भी कुछ खिसका है?"

"लेवान कहाँ हैं?"

"अच्छा, बुरा मत मानना... अगर तुम्हारे मामा को शार्क निगल नहीं गये होंगे तो वह ज़रूर लौट आयेगा..."

"कब?"

"भगवान ही जाने..."

"मैं गम्भीरता से पूछ रहा हूँ।"

"चिन्ता छोड़ो। फिर भी तुम्हें हुआ क्या है?" चाचा योरगी ने कहा। "तुम दोनों को बाँधकर कहीं ले जाना चाहिए। उसे भाड़ में झोंको, वह जीवन का मज़ा ले चुका है लेकिन तुम अभी दुधमुँहे बच्चे हो। तुम किस लिए उसके पीछे-पीछे मंडराते फिरना चाहते हो? तुम्हें स्कूल में होना चाहिए..."

"मैं उनसे प्यार करता हूँ। मुझे उनकी चिन्ता है," मैं बोला और फिर रोने लगा।

"भगवान गवाह है, ज़रूर तुम्हारे दिमाग़ का कोई पेंच भी गुम है..."

उसके बाद मैं चाचा योरगी से कुछ नहीं बोला लेकिन समुद्र की ओर देखता ज़रूर रहा। यहाँ किनारे अनजाने थे और मैं उन्हें मंत्रमुग्ध-सा घूर

रहा था—सुदूर में स्थित द्वीपों को पहचानने की कोशिश कर रहा था। वह वहाँ प्रिंस द्वीप तथा ग्नाली द्वीप थे... मैं पुरकाज़ को नहीं देख सका, वह छुपा था और वह था, गेइपेली द्वीप—समुद्र-परी की तरह पानी से झाँकता-सा। दूर में नावों के पाल किसी परदे-से लग रहे थे लेकिन पचास फ़ीट की दूरी पर जल-मुर्गियों का झुण्ड ही झुण्ड था... और अशान्त, आतुर अबाबील सिर के ऊपर झपटते उड़ रहे थे।

पल भर में मैं पागल हो उठा था! सब कुछ बदल चुका था, हर चीज़ गा और हँस रही थी। और सागर का, नीलिमा का, अनन्त, जादुई नीलिमा का एक गीत मेरे अन्दर उमड़कर मुझे आनन्दित करने लगा।

मैंने कई बार घुमड़ी खायी।

"इस मूर्ख लड़के को देखो," चाचा योरगी ने कहा।

फिर अचानक—जैसे किसी ने मुझे पीछे से धक्का दे दिया हो, मैंने अपनी बाँहें फैलाकर उनकी गर्दन में डाल दीं और उनका गाल चूम लिया।

"अब तो कोई शक ही नहीं रह गया," वह मूँछों तले बुदबुदाये। "पहले रोता है, फिर हँसता है और सब को चूमना चाहता है। क़सम से, तुम में ज़रूर लेवान का कोई न कोई असर है..."

"मैं रात यहीं बिताने जा रहा हूँ, चाचा! माँ को कोई एतराज़ नहीं होगा। क्या आप सुन रहे हैं?!"

"और स्कूल?"

"स्कूल में अब छुट्टी है। मुझे सागर से, आकाश से, आप से और आज़ादी से प्यार है।"

"तो फिर ठीक है। मैं थोड़ी मछली पका देता हूँ। पैसे लेवान से वसूल लूँगा। वोदका मेरी ओर से।"

"क्या आपको... त्सुला के बारे में कुछ मालूम है? आप कुछ जानते हैं, चाचा?"

ज़ोरों से काँव-काँव करते कुछ कौवे पास से उड़ गये।

चाचा योरगी ने मेरी ओर नज़र डाली, मेरी आँखें फिर भर आयीं...

"ऐ, लड़के, तू लेवान की खोज में है या त्सुला की?"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

"नहीं, त्सुला की कोई ख़बर नहीं। अरे, जो कुछ हुआ, उसके

बाद तो लेवान पूरी तरह ही..." और चाचा ने अँगुली से अपना ललाट ठोंका।

साले कौवे! उन्हें क्या हो गया था?..

"लेकिन वह गये कहाँ हैं?"

"उसने एक तिपाई ली, एक देगची, एक बंसी, वोदका की छह बोतलें, कुछेक डबलरोटियाँ और सिगरेट... कपड़ों में बस क़मीज़-नीकर पहने था। और तुम उसे पागल नहीं कहते। वह तो शायद किसी सुनसान द्वीप में जीवन का मज़ा ले रहा होगा। लेकिन हाँ, अगर जीवित रहा होगा तभी। ज़रा सोचो: उसने अपना कारोबार छोड़ दिया, अपनी दूकान बन्द कर दी और बंसी से मछली पकड़ने लगा। क्या कोई ठीक-ठाक दिमाग़वाला आदमी भी ऐसा करता है? अगर तुम बढ़ई हो तो अपना काम करो। और बीवी से प्यार करो। वह उसके पीछे दीवाना था... वह अपने मुल्क लौट रही थी तो जहाज़ से उसे उतार लाया और शादी कर ली। और अब, कोई भी दिन ऐसा नहीं बीतता जब वह उसे नहीं पीटता। तुम उसे जहाज़ से उतार ही क्यों लाये थे, चपरगट्टू कहीं के? किसने मजबूर किया था तुम्हें? यही तुम्हारी ख़्वाहिश थी। अपनी इच्छा से तुमने उससे शादी की। और अब अपनी, उसकी—दोनों की ज़िन्दगी ख़राब कर डाली। पीता रहता है और अपना सारा समय समुद्र में बिताता है और उधर बीवी बेचारी उसकी प्रतीक्षा करती परेशान होती रहती है। ऐसा भी कहीं किसी ने कभी सुना है; किसी आदमी का अच्छा-ख़ासा कारोबार हो और फिर... छोकरे, अगर मैं तेरा बाप होता, तेरी अच्छी तरह ठुकाई करके इधर आने भी नहीं देता। सुन रहे हो न?.. रुको एक मिनट! मैं शर्तिया कह सकता हूँ, तुम रसुला के पीछे पगलाये हो। यह रहा एक और! मैंने पहले ही क्यों नहीं समझ लिया? शाबाश, शाबाश! सुनो, बेटे, घर चले जाओ। उन सब पर थूको। उस लड़की का भी दिमाग़ थोड़ा फिरा है। अब साल होने को आया। कौन जाने किस चुड़ैल की औलाद को वह मिल गयी... "

"ख़ामोश हो जाइये, चाचा योरगी!" मैं चीख पड़ा।

"मैं थोड़े ही समझता नहीं हूँ। मैंने पहले ही क्यों नहीं भाँप लिया था? सचमुच प्रेम का रोग लगा है। सारे लक्षण वैसे ही हैं। हाँ, मैं ज़रूर बूढ़ा होता जा रहा हूँ। इसे पहचानना ही भूल गया हूँ..." उसने कहा।

"ओह, चाचा," मैं बस कराह ही उठा। "मैंने तो आपको बता दिया कि मैं लेवान की तलाश में आया हूँ।"

मुझे तिरछी नज़र से देखते हुए वह बोला,

"मैं जाकर मछली पकने डाल दूँगा... वोद्का भी लाऊँगा, वह तुम्हें गर्मी देगी। फिर मैं तुम्हें एक ख़ास तरह की घास चबाने को दूँगा जिससे वोद्का की बू तुम्हारे मुँह में नहीं रह जाये। तुम्हारी माँ को पता नहीं लग सकेगा..."

"मैं आप से कह चुका हूँ, मैं रात बिताने आया हूँ। माँ को मालूम है, मैं यहाँ हूँ।"

"और अगर आज लेवान नहीं आया तो?"

"मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगा।"

"मेरे ख़्याल से तुम्हें प्रतीक्षा करने की कोई ज़रूरत नहीं। मेरी राय में जाओ और तरोताज़ा होकर कल आओ।"

"मैं तो यहीं प्रतीक्षा करूँगा!"

"तुम पागल हो!"

"मुझे अकेला छोड़ दीजिये, चाचा! मछली कहाँ है?"

"मेरे ख़्याल से तुम्हें अब ज़रूरत नहीं पड़ेगी..."

"नहीं क्यों?"

"ज़रा ध्यान से देखो।" चाचा योरगी ने समुद्र की ओर संकेत किया। "क्या वही नहीं है?"

"हाँ!.. वही हैं!.." मैं चिल्लाता हुआ पानी के किनारे तक चला आया। "मामा लेवान! ऐ मामा लेवान! ऐ..."

मेरी ओर देखकर चाचा योरगी दबी हँसी हँस पड़े।

थोड़ी देर बाद मैं लेवान की बग़ल में मछलियों का एक गुच्छा हाथ में लिये गर्व के साथ उनके घर की ओर जा रहा था। मामा ने बंसियाँ ले रखी थीं, उनके क़दम मज़बूत और लम्बे थे।

"चलो, अन्दर चलो," घर पहुँचने पर वह बोले। "तुम एकदम ठीक समय पर आये हो। भगवान ने चाहा तो कल हम साथ-साथ समुद्र में चलेंगे। क्या कहते हो?"

मैं क्या कह सकता था? कि यह मेरा संजोया सपना था? या यह कि उनके साथ मछली पकड़ने के लिए जाने के वास्ते मुझे माँ को कितना मनाना पड़ा था?

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद अपनी लाल-लाल आँखें मुझ पर टिकाते हुए उन्होंने कहा,

"तुम भी पागल हो, बेटे, तुम्हारा भी कुछ नहीं बनेगा। तुम कभी किसी चीज़ की परवाह नहीं करोगे। तुम हूबहू मेरी तरह हो... एकदम मेरे जैसे... मेरी सच्ची नक़ल, बस थोड़ा क़द में छोटे हो... उम्र में भी..."

दो

भोजन कक्ष में कड़ाह में चर्बी के छन् से पिघलने की आवाज़ फैल गयी। हम वहीं बैठे थे और मेरे मामा वहीं से मामी को खाना पकाने के बारे में निर्देश देते जा रहे थे।

"अनास्तासिया, मछली साफ़ न करना!"

"हे भगवान," वह ठण्डी आह भरकर बोली, "मछली को भीतर से साफ़ किये बिना कभी किसी को खाते सुना है? छिः..."

"तुझे मालूम ही क्या है?" लेवान चीखा। "ताज़ा मछली को यूँ ही साबूत खा लेना चाहिए। मरी कहीं की! मछली साफ़ करने की हिमाक़त न करना!"

"लड़के के सामने तो ज़बान पर क़ाबू रखने की सोचो। बच्चे के सामने तो मत कोसो..."

"यही बच्चा कल मर्द बनेगा। मेरा मतलब है, सच्चा मर्द—पहले से ही कोसने में माहिर..." लेवान ने मेरा बाल मुट्ठी में पकड़कर मेरा सिर अपनी ओर खींच लिया। "इधर आ, मुझे अपना सीना दिखा।"

"नहीं, मामा जी, नहीं," मैं उलझाया, घबराया बोला।

"देखने भी दे!" मुझे डपटते हुए उन्होंने मेरी क़मीज़ उतार डाली। "इसमें शर्म की कोई बात नहीं। देखो, अनास्तासिया, मैंने कहा था न, सच्चा मर्द है। अभी बच्चा ही है लेकिन सीना बालों से भरा है। यह रहा मर्द! मैंने कहा था न यह बच्चा कल का जवाँ मर्द है। जब बड़े होकर बटनवाली क़मीज़ पहनोगे, गर्दन के पास बाहर निकलते बाल दिखाई देंगे। मेरे बेटे, फिर तुम मर्दों की तरह गलियाना सीखोगे... और आख़िरी बात, ध्यान से सुन लो, तुम्हें जीवन की हर पेशकश क़बूलने

के लिए सीखना होगा। इसमें कभी हिचकिचाना नहीं। हर पल का मज़ा लो। मेरे बेटे, काश, तुम जानते, मज़ा लूटने के लिए यह जीवन कितना छोटा है। हे भगवान..."

"क्या ख़ूब तरीक़ा है बच्चे से बात करने का! कहीं उसकी माँ को मालूम हो जाये," आह भरकर अनास्तासिया बोली।

"तुम्हारे टाँग अड़ाने की कोई ज़रूरत नहीं। हमारे छोकरों को ऐसा ही होना चाहिए... मैं ग्रीक छोकरों की नहीं, आर्मीनियाई छोकरों की बात कर रहा हूँ। तुम चाहो तो ख़ुद उनकी फ़िकर करो," उन्होंने मुझे आँख मारते हुए कहा।

फिर उन्होंने मेज़ लगानी शुरू की। मेज़ पर शराब के जाम रखकर, वोद्का की बोतल खोल उन्होंने प्याज़ और टमाटर के टुकड़े किये। वह बड़े ऊँचे मिज़ाज में थे।

"अनास्तासिया! नमक कहाँ है, मेरी मैना?"

उनकी पत्नी ने मछली परोस दी।

हम अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये और अपनी आस्तीनें ऊपर चढ़ाकर वह खाने पर टूट पड़े।

"कोई सोचेगा, चालीस दिनों से तुम्हें खाना नसीब नहीं हुआ है," अनास्तासिया बड़बड़ायी।

मैं मुँह खोले मामा को घूर रहा था।

"खाओ," उन्होंने मुझसे कहा। "खाओ। मैंने तुमसे कहा था न, जो ख़ुशी जीवन में मिले, उसका मज़ा लो। भगवान के लिए, उन्हें झपट लो, सोचने में समय बर्बाद न करो। कोई भी चीज़ तुम्हें मिले, उसे ले लो। कभी कुछ इनकार न करो... अब इस समय तुम्हारे सामने ताज़ा तली मछली और वोद्का रखी है, इन्हें खाओ लेकिन हाथ से—मात्र हाथ से खाने से भी तुम्हें जीवन का एक मज़ा मिलेगा।"

"ज़रा देखो तो इन्हें," अनास्तासिया बीच में बोल उठी। "दुनिया में एकदम बेफ़िक्र, निश्चिन्त। जैसे इनके कोई बीवी नहीं, बेटी को कुछ हुआ ही न हो। खाने-पीने के अलावा कुछ सोचते ही नहीं। बस किसी पशु-से हैं।"

लेवान का चेहरा धुँधुआ उठा। उसने खाना छोड़ दिया। उसकी बीवी कुछ बात बदलना ही चाहती थी कि तभी लेवान का शक्तिशाली, बालों

भरा हाथ धड़ाम से मेज़ पर आ रहा—गिलास उछलकर दया माँगते-से टिनमिना उठे। वोद्का की बोतल डगमगाकर उलट गयी और गर्र-गर्र करती वोद्का नीचे फ़र्श पर ढुलक पड़ी। लेवान की आँखों में ख़ून उतर आया था। अब क्या होनेवाला था, यह महसूस कर उसकी बीवी हड़बड़ाती बोल उठी:

"पिछले तीन दिनों से मुझे कुछ भी नहीं मालूम हो पा रहा था, तुम जिन्दा भी हो या नहीं... मेरी बेटी, मेरी त्सुला के बारे में कुछ कहने सुनने..."

"चुऽऽप!" मेरे मामा हुंकारे।

मुझे मछुवारे के छोटे से मकान पर वज्रघोष से बिजली गिरती महसूस हुई। आगे क्या होगा, इससे भयभीत, मैं दौड़कर एक दूर कोने में छिप गया।

लेवान उठ खड़ा हुआ।

"उस कमरे में जाकर सो जाओ।" उन्होंने मुझसे कहा। "मैं तुम्हें कल जगा लूंगा। सो जाओ।"

मुझे उनकी बात टालने की हिम्मत नहीं हुई। उनका स्वर कठोर था। मैं कमरे में चला गया। यह उनकी बेटी त्सुला के सोने का कमरा था और उनके शयनकक्ष से बिलकुल सटा था। जब त्सुला घर छोड़कर नहीं गयी थी और जब कभी मैं यहाँ रुक जाता था, मामा हमेशा उसका कमरा मुझे दे देते और त्सुला को बैठक में सोने पर मजबूर होना पड़ता। हमेशा से मामा का ख़्याल रहा था, मर्द औरतों से बेहतर होते हैं।

यहाँ बड़ी ख़ामोशी थी। मेज़ पर त्सुला की एक तस्वीर पड़ी थी। लेकिन अभी मैं तस्वीर को क़रीब से देखने के लिए झुका ही था कि बड़े ज़ोरों के चाँटे और अनास्तासिया के चीत्कार की आवाज़ सुनाई दी। मैं भीतर-बाहर कँपकँपा उठा लेकिन जिज्ञासा की भावना ज़्यादा तीव्र रही। दरवाज़े के तालेवाले छेद से मैंने आँख लगा दी। लेकिन फिर कहीं इस बेढंगे काम में पकड़ न लिया जाऊँ, इस डर से कपड़े उतारकर दबे पाँव बिस्तर में घुस गया। दिन के अनुभव ही मेरे लिए काफ़ी रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो दिन भर मैंने कोई विचित्र, अनजानी-सी फ़िल्म देखी हो जिसका प्रत्येक अगला दृश्य पहले की अपेक्षा भयानक था। याद नहीं, सो नहीं पाने के कारण कब तक मैं वहाँ लेटा रहा था लेकिन तभी मुझे

खुसर-पुसर की आवाज़ सुनाई दी। कौतूहल ने ज़ोर मारा। बिस्तरे पर बैठकर मैंने कान लगा दिये। यह लेवान की आवाज़ थी लेकिन अब यह बदली हुई कैसे थी! और उसकी बातें भी कितनी अजीब थीं। वे प्यार और मधुर लालसा की बातें थीं। उसकी पहलूवाली औरत, उसकी पत्नी अनास्तासिया हल्के-हल्के सुबक रही थी। फिर उनके बीच चुप्पी छा गयी लेकिन थोड़ी देर बाद ही फिर खुसरफुसर शुरू हो गयी... मैं नहीं जानता, यह सपना था या ठोस सत्य का दुस्वप्न। इसके बाद एक आग-सी जल उठी, सब कुछ जलने लगा और मैंने भागने की, बच निकलने की कोशिश की लेकिन बेकार, मेरे पाँव जवाब दे गये। मैंने चीखना चाहा लेकिन आवाज़ गले में ही घुटकर रह गयी। मेरी आवाज़ कोई नहीं सुन सकता था और लपटें धीरे-धीरे रेंगती मेरे क़रीब आती जा रही थीं...

"तुझे क्या हुआ है, छोकरे?" मेरे मामा मुझे झकझोरकर जगा रहे थे। "कोई बुरा सपना देखा? चलो, उठो–चल पड़ने का समय हो गया। समुद्र हमारी राह देख रहा है..."

रात की अन्तिम वेला थी। मैं उठ खड़ा हुआ और जल्दी से जल्दी उस घर से भाग निकलने की बेताबी से कपड़े पहनने लगा। नल के नीचे लेवान अभी मुँह-हाथ धो ही रहे थे। पास से चेहरे पर पानी छिड़कने की आवाज़ आ रही थी। भौचक-सा मैंने उनके शयन-कक्ष में झाँककर देखा तो पाया, अनास्तासिया शान्तचित्त सो रही थी। चादरें थोड़ी खिसकी थीं। उसके गुलाबी चेहरे पर एक सुखद मुस्कान छायी थी...

त्सुला की तस्वीर ज़मीन पर पड़ी थी। मैंने उसे उठाकर मेज़ पर रख दी। मेरे दिल में एक हूक-सी उठी क्योंकि अभी-अभी मुझे पूरी तरह अहसास हुआ था कि मैं रात में उसके बिस्तरे पर सोया था।

प्रभातपूर्व ठण्ड से सिर दुबकाये, कँपकँपाता मैं लेवान की बग़ल में दौड़ रहा था। हाथ में अपनी बंसियाँ लिये वह हमेशा की तरह लम्बे-लम्बे डग भरते चल रहे थे। हम जल्दी ही तट पर पहुँच गये। मैं चुप-चुप व सकुचाया-सा था।

"खींचो! हय्यो!" लेवान ने कहा।

हम नाव को धक्का देकर पानी में ले आये।

चाचा योरगी की सराय अन्धेरे में खोयी थी। दूर में टिमटिमाती रोशनियोंवाली नौकाएँ थीं।

"नाव चाचा योरगी की सराय की ओर ले चलो," मामा ने कहा। "हमें थोड़ा चारा भी लेना है।"

हम नाव खेकर चाचा योरगी की सराय की बल्लियों के पास जा पहुँचे। जेबचाकू निकालकर लेवान ने हाथ पानी में डाल, सब से क़रीबवाली बल्ली के घोंघों को उखाड़ना शुरू कर दिया। इस तरह दूसरी बल्लियों को भी कुतरकर उन्होंने काफ़ी सारे छोटे-छोटे, महीन घोंघे जमा कर लिये, फिर मुझे अपनी जगह बैठाकर वह ख़ुद मेरी जगह बैठ गये।

"हमें देर हो गयी है, लड़के। समुद्री आदमी के न तो कोई घर, न परिवार, न बच्चा होना चाहिए। यह सारी चीज़ें तुम्हारा ध्यान बँटाती हैं, तुम्हें सब कुछ भूला-बिसरा देती हैं और तुम्हें अपनी मंज़िल से दूर रखती हैं..."

अनाड़ीपन में तट पर ही घुटने तक मैंने अपने पाँव गीले कर डाले थे। मैं नाव के माथे पर जा बैठा, मेरी आँखें मामा की भारी-भरकम पीठ और शक्तिशाली बाँहों पर टिकी थीं। डांड़ लय के साथ उठ-गिर रहे थे और मैं लगातार उनकी बातों के बारे में सोचे जा रहा था।

"समुद्री आदमी के न तो परिवार होना चाहिए, न बच्चे..." समुद्री आदमी, बीवी, बच्चे, प्रेम, मंज़िल... लेकिन इसका प्रेम से क्या वास्ता? और वह किस मंज़िल की बातें कर रहे थे? चाचा योरगी ने बेकार नहीं कहा था कि मेरे मामा लेवान थोड़े ख़ब्ती हैं...

फिर भी मैं ख़ुद को धरती पर सबसे अधिक सुखी महसूस कर रहा था।

कौवे फिर ज़ोरों से काँव-काँव करने लगे थे।

तीन

सूरज अलसाया था और अनजानी ठण्ड से मेरी हड्डियाँ तक बज उठी थीं। मेरे दाँत कटकटाने लगे।

"देखता हूँ, तुझे ठण्ड लग रही है। तो सीने के रोएँ बेकार ही हैं, क्यों?"

"नहीं, नहीं, ठीक है," मैं बोला। मैं बहुत अपमानित-सा महसूस कर रहा था।

"यह लो," उन्होंने कहा और रस्सियों, चारे व लंगर के ढेर के बीच से निकालकर वोद्का की एक बोतल मुझे थमा दी। "कुछ घूंट ले लो।"

छह या सात घूंट पीने के बाद मुझे पेट में ऐसी गर्मी महसूस हुई मानो मैंने आग निगल ली हो।

"अब मुष्टिका से यूँ होंठ पोंछो, फिर देखेंगे, मछली का शिकार आज कैसा रहता है।"

लेवान ने नौकर पहन रखा था। कुछ देर पहले उन्होंने अपनी क़मीज़ उतार डाली थी और इस समय लगभग बिलकुल नंगे-से तेज़ी से नाव खे रहे थे। जब हम तट से काफ़ी दूर जा पहुँचे, उन्होंने पाल खोल दिया। फिर एक हाथ से रस्सी का आख़िरी छोर पकड़े-पकड़े वह मेरे पास उछलकर आ बैठे...

"और अब बस धूप ही धूप और ज़िन्दगी है। आगे, बस, आगे ही आगे चलो लड़के! वहाँ—जहाँ लोग हमें समझेंगे और हमें सच्चे दोस्त हासिल होंगे। लेकिन मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। यह मैं किससे कह रहा हूँ, एक छोटे से बच्चे से?.."

अब मुझे तनिक भी बुरा नहीं लगा था। इतनी तीव्र गति से नाव में आगे बढ़ते जाने से मैं ख़ुश था। वोद्का ने मुझे गर्मी प्रदान कर दी थी। मुझे दिमाग़ में कुहरा-सा छाया महसूस हो रहा था। हालाँकि मामा की बातें मेरी समझ में नहीं आयी थीं, उनकी बातों से मैं जोश से भर उठा था। इस विचार से कि कहीं दूर में मुझे सच्चे दोस्त हासिल होंगे और प्यार भी मिलेगा, मैं उत्तेजित हो गया था। मुझे इस पागलपन पर विश्वास होने लगा था और मैं अपने मामा को भय व श्रद्धा की दृष्टि से देख रहा था।

तभी बड़ी तेज़ी से नाव एक ओर झुक गयी। मुझे अपने जीवन का सचमुच भय हो आया।

पाल लहराता हुआ खिंच गया। मुक्ति के लिए हवा ज़ोरों से उस पर सिर मार रही थी और मेरे मामा के हाथ रस्सी पूरी शक्ति से खींच रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो हमें हमारी नियति की ओर सतत आगे ले जाते पागल घोड़े को वह शान्त करने की कोशिश कर रहे थे... लेकिन यह मेरी कपोल कल्पना थी...

"ओह् हो!" मेरे मामा हुंकारे।

उनके चेहरे पर भय की कोई रेखा न थी। वह पूरी तरह अपने आप में मालूम पड़ रहे थे और किसी अनोखे, परी कथा-प्राणी से दिखाई दे रहे थे। तरंगों के साथ होंठों पर आ पड़े नमकीन छींटे चाटकर वह कुछ अजीब-से शब्दों में चिल्लाये जो मेरी समझ में नहीं आये। फिर वह ज़ोरों से हँस पड़े। मैं भय और ठण्ड से काँप उठा। उन्होंने मुझे काँपते देख लिया। अपने ही ख़्यालों में डूबे होने जैसी स्थिति और अन्य बातों से पूरी तरह अनभिज्ञ प्रतीत होने के बावजूद उन्होंने मेरा काँपना महसूस कर लिया था।

"डर मत, लड़के!" उन्होंने ज़ोरदार आवाज़ में कहा। "मैं अभी इसे सीधी कर दूँगा।"

उन्होंने अपने शरीर का पूरा वज़न बायीं ओर डाल दिया, सिर्फ़ उनके पाँव ही नाव पर टिके रह गये थे।

इससे कोई लाभ नहीं हुआ और हमारी नाव दायीं ओर झुकी-झुकी तेज़ी से आगे दौड़ती रही।

"इधर आ जा!" उन्होंने चीखकर कहा।

ऐसे उन्मत्त कार्य के लिए शायद मैं पैदा ही नहीं हुआ था। खड़ा होकर जब मैंने क़दम भरने के लिए अपना सन्तुलन संभालने की कोशिश की तो तभी एक दीर्घकाय लहर मेरे सिर से आ टकरायी और मैं बड़े बेतुके ढंग से अपनी जगह पर गिर पड़ा।

"च्-च्, बेचारा," लेवान सिर हिलाकर बोले।

मैं भी अपने ही ख़्यालों में खोया था लेकिन मामा के मुक़ाबले यह कुछ भी न था। विपरीत भावनाओं की कशमकश ने मेरा काम तमाम कर डाला था और मैं क्लान्ति व उमंग से मरा जा रहा था। मुझे यक़ीन हो चुका था कि यह मेरी आख़िरी घड़ी थी, यह मेरे जीवन के अन्तिम क्षण थे।

मैं नहीं जानता मामा लेवान कितनी देर तक रस्से को झटके देते रहे और कब पाल दहलाता, शोर मचाता नीचे गिर पड़ा। पल भर में नाव स्थिर हो गयी। यह शायद ही हिल-डुल रही थी। लेवान ने पाल को समेट लिया। वह किसी विजयी योद्धा-से दिखाई दे रहे थे: वह लड़ाई जीत चुके थे और अगली लड़ाई तक तलवारें म्यान में रखकर अब झण्डा समेटने का समय आ गया था।

"उठो, लड़के" वह ज़ोरदार आवाज़ में बोले। "लंगर डालो!"

मैं अब भी काँप रहा था, उनके आदेश-पालन में सर्वथा असमर्थ।

"चलो, उठो! क्या हुआ है तुझे? क्या कोई मर्द भी ऐसा आचरण करता है?!"

उन्होंने ख़ुद लंगर उठा लिया और उसे सिर के ऊपर कई बार घुमाने के बाद नाव से कोई पाँच या छह मीटर दूर फेंक दिया। कुछ रस्सियों को कसकर बाँधने के बाद वह मेरे पास आकर बैठ गये।

उन्होंने फिर वोद्का की वही बोतल निकाल ली थी।

"लो, थोड़ी पी डालो," उन्होंने कहा। "यूँ तो यह तुम्हारे लिए बहुत अधिक है लेकिन कोई दूसरा चारा भी नहीं। यह शैतानी अर्क मुर्दों में भी जान डाल देता है।"

उन्होंने जबरन मुझे मुँह खोलकर कुछ घूँट वोद्का के पिला दिये।

"तुम डर क्यों गये? और मैं तुम्हें पक्का मर्द समझ रहा था।"

उधर क्षितिज पर सूरज उदय हो रहा था। इसकी किरणों ने मेरे पीड़ित, संत्रस्त शरीर को एक नये अनजाने ढंग से गर्मा दी, उसे सहलाया... कैसा अकथनीय आनन्दातिरेक था यह!..

सूरज की ओर मुँह ऊपर उठाते ही मुझे हवा की सनसनाहट सुनाई दी...

"आओ, सूरज के लिए पीयें, बेटे। क्या तुम्हें समुद्र का संगीत सुनाई देता है? यदि तुम्हें इस निमिष की प्रतीति होती है, यदि यह सब कुछ श्रवण द्वारा समझ सकते हो, तो जान लो यही जीवन है और धरती पर इसके अलावा कोई जीवन नहीं..."

मैंने अपने मामा की ओर देखा और उन्हें पहचान नहीं पाया।

हम समुद्र के बीच में थे—अथाह, अनन्त, विशाल समुद्र के बीच में। एक भी प्राणी गोचर नहीं था। चित्ती भर ज़मीन भी नहीं। बस सूरज, समुद्र और हम दोनों। और हाँ, नाव भी थी, लंगर भी था, शायद तट तक मेरे कभी लौट पाने की एकमात्र आशा।

मैं पिछलेवाले हिस्से में जा बैठा। मैं भावनाओं से अभिभूत था, ऐसी भावनाओं से जिन्हें इतनी छिन्न-भिन्नकारी शक्ति से मैं फिर कभी अनुभूत नहीं कर सकता था।

फिर मेरे "सनकी" मामा ने बड़े दार्शनिक दृष्टिकोण से यह सारी बातें समझायीं।

"तुम बहुत छोटे हो, रीछ के बच्चे-सा। तुम मेरे लघु प्रतिरूप हो हूबहू मेरी तरह सच्चे और खरे। अभी तुम्हें बहुत कुछ देखना है: तुम्हें प्रेम व पीड़ा का रहस्य पहचान में आयेगा, तुम सपने देखोगे और अपने सपनों को सच बनाने की आशा करोगे। बस कभी हिम्मत हारने की न सोचना... चाहे तुम्हारी जीवन नैया जैसी भी हो, चाहे पाल के चिथड़े उड़ जायें लेकिन हवा के पीछे उसे बढ़ाते ले जाओ। चाहे मिथ्याभास ही क्यों न हो, नाव का परित्याग मत करना, कभी तट पर न रहना। हमेशा नाव को समुद्र में, धूप में ले जाओ। अगर तुम्हारी मुलाक़ात अपनी अनास्तासिया से ही हो जाये, चाहे जो भी हो, उससे प्यार करो। और अगर तुम्हारी बेटी, तुम्हारी त्सुला ही तुमसे छीन ली जाये, धूप में उसकी प्रतिमा ढूँढ़ो... अरे, लेकिन मैं यह क्या बड़बड़ाये जा रहा हूँ, बूढ़ा खूसट जो ठहरा! तुम अभी बच्चे ही हो, मुझे समझ नहीं पाओगे..."

धूप में त्सुला की तलाश करो?.. हाँ तब वह मुझे दिखाई दे गयी, धूप से जगमगाती, सुनहली वेणियोंवाली, नग्न और सुन्दर, मेरे सपनों की त्सुला। ऐसी वह मुझे केवल एक बार ही दिखाई दी थी...

क्योंकि धरती पर ऐसी कोई त्सुला नहीं, रवितनया त्सुला।

उधर मेरे मामा कह रहे थे:

"समुद्र में जितनी अधिक नावें होंगी, सूरज की ओर हाथ बढ़ानेवाले जितने अधिक लोग होंगे, जीवन उतना ही बेहतर, उतना ही खरा होगा। मेरा यक़ीन करो।"

"मुझे यक़ीन है मामा।"

उन्होंने अपने पंजों से मुझे क़रीब दबोचकर मेरा ललाट चूम लिया।

"हमारे पूरे ख़ानदान में केवल तुम्हीं मेरे सच्चे वारिस हो। और निस्सन्देह तुम्हें ज्ञात हो जायेगा, जीवन कितना अद्भुत है, बेटे।"

लेवान ख़ामोश हो गये। उनकी ख़ामोशी बड़ी अनिष्टकारी लग रही थी—उनके ख़ब्ती आचरण से यह कहीं अधिक भयकारी थी।

कुछ अबाबीलें हमारे ऊपर से उड़ती चली गयीं। उनकी उड़ान इतनी नीची थी कि अपने पंखों से वे लगभग हमें छूती चली गयी थीं।

"वर्षा होनेवाली है," मामा बोले। "कोई घण्टे भर बाद वर्षा शुरू हो जायेगी।"

उत्तर दिशा की ओर पलटकर उन्होंने अपनी बाँह फैला दी।

"बादल देख रहे हो? हवा का रुख़ भी ठीक नहीं। हमें वापस लौटना पड़ेगा।"

"लेकिन मछली?" मैंने पूछा। हवा का रुख़ ठीक न होने से मैं दिल ही दिल में ख़ुश हो रहा था।

"आज मछली का शिकार बेकार होगा। मछली के बिना ही काफ़ी मज़ा रहा है। तुम पेटे से चिपककर लेट जाओ। और फिर पानी से सराबोर तो होना ही है। मुझे पहले ही मौसम की टोह ले लेनी चाहिए थी।"

मुझे तनिक याद नहीं, हम तट पर कैसे पहुँचे। लगातार मूसलधार वर्षा हो रही थी। बस मुझे इतना ही याद है कि मेरा शरीर ज्वर से जल रहा था। जब मैंने आँखें खोलीं, मैंने अपनी माँ और अनास्तास्यिा को ख़ुद पर झुका पाया।

"कार बुलाकर मैं उसे घर ले जाऊँगी," मेरी माँ बोली।

"मेरे मामा कहाँ हैं?"

"अब कभी मैं उसका नाम भी नहीं सुनना चाहती," माँ ग़ुस्से से बोली।

"और कहाँ, समुद्र में होंगे। दो दिन से गये हैं," अनास्तास्यिा ने लम्बी आह भर कर कहा।

"अबाबीलें बड़ी नीची उड़ान भर रही थीं," मैं बोला।

दहशत से माँ ने मेरी ओर देखा।

"यह तो एक ही बात बार-बार कहे जा रहा है, अनास्तासिया। यह होश में नहीं, भगवान, मेरा बेटा मुझसे न छीन। त्सुला को तो हमसे छीन ही चुका है, बेटे की जान बख़्श दे..."

उनकी सारी बातें मुझे सुनाई दे रही थीं लेकिन कमज़ोरी के मारे मैं अपनी अँगुली भी नहीं हिला सकता था।

मैं कई दिनों तक बेसुध पड़ा रहा। फिर मेरी हालत सुधरने लगी।

...मेरे मामा अब जीवित नहीं रहे। मेरी माँ भी। अनास्तासिया का क्या बना मुझे नहीं मालूम। प्यार में धोखा खाकर आख़िर त्सुला भी घर लौट आयी। लड़की के निस्स्वार्थ प्रेम, उसकी निष्ठा और हार्दिकता से बस किसी ने बड़ी आसानी से लाभ उठाया था। त्सुला के लौटने के बाद

ऐसी अफ़वाहें फैलीं कि त्सुला ने बाप से विरासत में बहुत से तौर-तरीक़े अपना लिये थे। यह सच है या झूठ, मैं नहीं जानता...

मुझे नहीं मालूम। लेकिन जब कभी मैं अबाबीलों को नीची उड़ानें भरते देखता हूँ, मैं हमेशा अपने मामा लेवान, समुद्र, सूरज और ज़िन्दगी के बारे में सोचने लगता हूँ... और जब वे बहुत नीचे की ओर झपटते उड़ान भरती हैं, मैं किसी बच्चे की तरह ख़ुशी महसूस करता हूँ क्योंकि इसके साथ ही मुझे ख़्याल आता है, अब आकाश मेरे मामा की अज्ञात क़ब्र पर रोकर आँसू बहायेगा। क्योंकि आकाश, सूरज और समुद्र के अलावा धरती पर उनका कोई भी सम्बन्धी न रहा... आकाश, सूरज और समुद्र... और, शायद, अबाबील...

चाचा योरगी, यदि आप आज भी जीवित हैं तो मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैं लेवान का आदर करता था, मैं उनसे प्यार करता था और उनकी स्मृति में मैंने "अपनी नैया" का कभी परित्याग नहीं किया है बल्कि सारी कठिनाइयों को झेलते हुए, उसे समुद्र में, मुक्त समुद्र में खेकर ले गया हूँ...

वार्दकेस पेत्रोस्यान

शुभ प्रभात, जैक...

हम तीसरी मंजिल में रहते हैं। हमारी खिड़की सड़क की ओर खुलती है–यह अच्छा भी है और बुरा भी। यह इस लिए अच्छा है कि जब मेरे दोस्त मुझे नीचे से बुलाते हैं, मुझे हमेशा उनकी आवाज़ सुनाई दे जाती है। यह बुरा इस लिए है कि... इसके कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि सुबह देर तक सोये रहना असम्भव है। मेरी नीन्द प्राय: नौ बजे या कभी-कभी तो आठ बजे ही खुल जाती है। आठ बजे जाग जाने का मतलब है, मेरा पिताजी से आमना-सामना अवश्यम्भावी होगा। हमारे बीच आम तौर से इस तरह बातचीत होती:

"शुभ प्रभात, डैड।"

"इतनी जल्दी जाग गये? बीमार हो?"

"नहीं..."

"आज की तुम्हारी दिनचर्या क्या है?"

"वही जो कल होगी।"

"फिर भी, क्या होगी?"

"वही जो कल थी।"

"क्या नहीं सोचते, अपने लायक़ कोई काम ढूँढ़ने का यही समय है?"

"जीवन क्षण-भगुंर है। सोचने का समय ही नहीं।"

"यह लफ़ड़ेबाज़ी रोज नहीं चलेगी।"

"मैं भी रोज़ आठ बजे उठने का इरादा नहीं रखता। हाँ, बेसुरा आलाप भी महीने में दो-एक बार सुन लिया जा सकता है।"

"बस तुम्हारी सारी क़ाबलियत फूहड़ मज़ाक़ तक ही है।"

"हाँ, तो फिर मैं यह भी नहीं समझता कि आपने कारख़ाने में जो अपनी पूरी ज़िन्दगी बिता दी, वह बहुत बड़ी क़ाबलियत की पहचान है।"

"चुप रहो!"

आम तौर से उनके "चुप रहो!" कहने के साथ ही माँ बीच में आ टपकती।

"आर्तियुशा, ख़ाचिक गाड़ी ले आया है," वह कहती।

ख़ाचिक पिताजी का ड्राइवर है। इसका मतलब होता, गाड़ी आ गयी है, हमारी बातचीत ख़त्म। यह मेरी ख़ुशक़िस्मती ही थी क्योंकि आम तौर से पिता जी को बातचीत इसके आगे बढ़ाने का समय ही नहीं मिल पाता। माँ के बारे में मैं बाद में बताऊँगा। पहले, एक लड़की के बारे में सुन लीजिए।

हमेशा जैसी सुबह थी। अभी-अभी माँ मेरे लिए कॉफ़ी लायी थी और मैं उठ बैठने की तैयारी ही कर रहा था कि ऐन खिड़की पर आकाश से लटकता एक क्रेन दिखाई दे गया। सड़क के पार एक मकान बन रहा था और वहाँ काम करते क्रेनों में यह भी एक था। लेकिन इससे पहले ऐन खिड़की पर मैंने कभी इसे नहीं देखा था। खिड़की पूरी खुली थी। मैं सोच रहा था, क्रेन थोड़ी देर में वहाँ से हट जायेगा लेकिन नहीं... वह जहाँ का तहाँ टिका रहा। उसकी लम्बी भुजा नीचे-ऊपर जा-आ रही थी। देखते-देखते ऊबकर मैंने खिड़की के पर्दे खींच दिये। सिनेमा की तरह। जब कभी चल-चित्रों में कारख़ाने के साथ प्राकृतिक दृश्यों की झाँकी होती, मैं अपनी आँखें बन्द कर लेता था।

लेकिन दूसरे दिन भी सुबह में क्रेन वहीं खड़ा था। तोबा कीजिए! हमेशा की तरह, बिस्तरे में पड़ा-पड़ा मैं सोच रहा था कि उठूँ या नहीं। यार-दोस्तों को एक बजे का समय दे रखा था। तब तक क्या करूँ? मैं इधर सोचता रहा, उधर क्रेन अपना काम करता रहा—कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी बायें, कभी दायें। फ ऽ फू! मैं खिड़की बन्द करने के लिए खड़ा हुआ तो संयोग से क्रेन-चालक के कोष्ठ पर मेरी नज़र जा पड़ी। क्रेन-चालक लड़की थी। जी हाँ! और वह सीधे मेरी ओर देख रही थी। चूँकि मैं अधनंगा था, भागकर बिस्तरे में जा घुसा। मैं ज़रूर कार्टून-सा बन रहा होऊँगा क्योंकि वह दाँत निपोड़ रही थी। कैसी ढिठाई थी!..

मैंने माँ को आवाज़ दी। उसने पर्दे खींच दिये। तब उठकर मैंने कपड़े पहने। सुबह का तो सत्यानाश हो गया।

तीसरे दिन भी सुबह में वही क्रेन था, वही लड़की थी। मैंने यूँ हीं खिड़की खोल, हाथ हिलाकर उसका अभिवादन करने की सोची। उसने भी हाथ हिला दिया। तभी मुझे अहसास हुआ, वह ख़ूबसूरत भी है। हूँ ऽ! अब तक मेरी नजर इस ओर कैसे नहीं गयी?

"ओहो! आसमान से नीचे तो आओ!" मैं ज़ोर से बोला।

शीश कोष्ठ से सिर बाहर निकालकर लड़की बोली, "मैं पाँच बजे आसमान से उतरती हूँ!"

ठीक पाँच बजे मैं सड़क पर खड़ा था। वह कोई ५:१० पर आयी मैं तो उसे बड़ी मुश्किल से ही पहचान पाया क्योंकि उसने कपड़े बदल लिये थे और पहले से कहीं ज्यादा ख़ूबसूरत नज़र आ रही थी।

"मेरा नाम मेरी है," वह बोली।

"मुझे जैक कहते हैं।"

मैंने उसे अपना असली नाम नहीं बताया। यह मेरा सिद्धान्त था। किसी लड़की को मैं कभी अपना असली नाम नहीं बताता था। सबसे बड़ी बात उन में से हरेक को बताया अपना नाम याद रखने की थी।

वह मेरी ओर देखकर मुस्करायी।

"तो अब क्या प्रोग्राम है?.."

मैंने साथ-साथ सिनेमा देखने की बात सुझायी।

"मैं नहीं जा सकती। मुझे शाम को काम है।"

"क्या किसी को समय दे रखा है?"

"शायद।"

"और कल?"

"अगर आप चाहें तो..."

लेकिन कई घण्टे बाद ही दुबारा हमारी मुलाक़ात हो गयी। मैं दोस्तों के साथ सिनेमा के बाहर खड़ा था कि उस पर नज़र पड़ गयी।

"मेरी?"

"हलो, जैक।"

दोस्त मुस्कराये। आर्मेन बोला,

"यह पूरे छब्बीस हो गया..."

उसका मतलब था, यह मेरा छब्बीसवाँ नाम था। लेकिन इससे क्या। फ़र्क़ तो मेरी से पड़ता था। और वह मुड़कर मेरे आने के लिए रुकी थी।

"कहाँ से आयी?" मैंने पूछा।

"जहाँ से आ रही हूँ।"

"यह कौन-सी किताब है?"

"रेमार्क की 'तीन मित्र'।"

"अच्छा?" मैंने रेमार्क को थोड़ा-बहुत पढ़ा था लेकिन किसी क्रेन-चालक लड़की की साहित्य में अभिरुचि की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

"शायद तुम उसकी आलोचना के उद्देश्य से ही यह किताब पढ़ रही हो, क्यों? आज कल इसी की धमाचौकड़ी है।" यह मेरे शब्द नहीं थे। यह हेनरी ने मुझे रेमार्क की किताब देते समय कहे थे।

"मुझे उसके लिखने का ढंग अच्छा लगता है।"

"मैं तुम्हें अच्छा लगता हूँ?"

उसने इसे मज़ाक़ समझा।

"क्यों जैक, तुम छात्र हो न?"

न जाने क्यों, मैंने इनकार कर दिया।

"काम करते हो?"

"हाँ।"

"तुम ज़रूर रात की पाली में काम करते होगे क्योंकि सुबह देर तक सोते रहते हो।"

ज़ोरदार सूझ। बेशक, मैं रात की पाली में ही रहूँगा।

"पाली से पहले मैं बाहर ताज़ा हवा में थोड़ा घूम-फिर लेता हूँ," मैं बोला।

"चाहिए भी।" मैंने महसूस किया, मेरी ओर उसके देखने के ढंग में थोड़ा अन्तर पड़ गया था। मैंने उसकी बाँह थाम ली। उसने कोई विरोध नहीं किया।

"कल मेरे साथ सिनेमा चलोगी?"

"ठीक है।"

मेरी बातचीत की इच्छा नहीं हो रही थी। मैंने सितारों की ओर देखा। मेरे ख़याल से तारे वहाँ सिर्फ़ इसलिए ही नहीं चमकते कि उन पर कविताएँ लिखी जायें। किसी कवि के पैदा होने से पहले भी तारे चमकते

थे और, भला हो, जब कोई कवि नहीं रह जायेगा तो भी वे चमक रहेंगे। तारे प्रेमिका से झूठ बोलने में शायद आपकी सहायता देने को व चमकते हैं। लेकिन तभी मेरी बोल उठी, "मुझे घर तक छोड़ने की ज़रूरत नहीं। बहुत दूर है।"

मैं चुप रहा। मैं कर भी क्या सकता था? भला मैं अपने "काम पर नहीं जा रहा था क्या? उसने टैक्सी पकड़ी और मैं अपने काल्पनि काम की ओर रवाना हो गया।

दोस्त अभी तक सिनेमा के बाहर इर्द-गिर्द खड़े थे।

"क्या रंग है?.."

"कहाँ से पकड़ लाये?.."

"टाँगें लाजवाब थीं।"

"शायद मेडिकल में पढ़ती होगी..."

मैंने असलियत बता दी। पहले उन्हें विश्वास नहीं आया फिर वे ठहाका मारकर हँस पड़े।

"वैसी टाँगें क्रेन-चालिका की नहीं लगतीं," आर्मेन बोला।

"आओ, यहाँ से चलें," टॉम बोला।

हम अबोवियन मार्ग से चल पड़े। दो साल पहले मैंने माध्यमिक स्कूल की परीक्षा पास की और पिछले दो सालों में मैं इस सड़क से हज़ारों बा आ-जा चुका हूँ। निस्सन्देह, इसे दिल बहलाव तो नहीं कहा जा सकत लेकिन दूसरा कोई चारा भी न था। शहर में कोई ऐसी शानदार जगह थी जहाँ पान और नृत्य चल सके। आख़िर, हम हर रात एक-दूसरे घर पार्टी तो कर नहीं सकते थे। चुनाँचे, हम सड़क ही नापते थे। औ फिर, मुझे जूते कसे-कसे लगते थे। सड़कें भीड़ भरी थीं। मैंने भीड़ की ओर देखा लेकिन कोई दिखा नहीं मानो कोई वहाँ हो ही नहीं, कम कम मेरे लिए। अर्सा हुआ जब मुझे लोग अच्छे लगते थे। लेकिन अब बदल चुका हूँ। अधिकांश लोग मुझे फ़ालतू महसूस होते हैं। अगर वे होते तो सिनेमा में टिकट आसानी से मिलते, बसों में भीड़ दिखाई न देती और मेरे बेकार रहने या कोई लाभदायी काम करने के बारे में सवा पूछनेवाले इतने अधिक लोग भी न होते।

मुझे दोस्तों की बातचीत सुनाई नहीं दे रही थी। लेकिन अबोविय मार्ग की पटरियों की भाँति मैं उनकी बातें अच्छी तरह जानता था। मै

किन करना क्या था? गगनचुम्बी क्रेन भी उससे कोई बेहतर थोड़े ही था। फड़फू। सितारों को देखना अब और रुचिकर था।

"मैंने एक नया रेकॉर्ड ख़रीदा है। मेरे घर चलो और गाने का मज़ा लो," टॉम बोला।

हम उस के घर गये। अभी आधी रात भी नहीं हुई थी लेकिन अधिकतर खिड़कियों की रोशनियाँ गुल हो चुकी थीं। टॉम ने रेकॉर्ड प्लेयर चला दिया। यहाँ से तारे नहीं दिखाई देते थे, इसलिए मैं संगीत सुनने लगा। अच्छा था।

लेकिन यह कैसी आवाज़ थी? शायद कोई दरवाज़ा खटखटा रहा था। टॉम ने जा कर दरवाज़ा खोला।

"नीचे बच्चा बीमार है," एक आवाज़ आयी। "मेहरबानी करके आप कल तक के लिए अपना संगीत बन्द कर देंगे..."

"कल तक के लिए।" उन्हें तो हर चीज़ कल तक टालने की आदत है। लेकिन बच्चा आज ही बीमार क्यों पड़ गया?

मैं अपने घर की ओर रवाना हो गया।

"क्या तुम कभी ऊबती हो?" दूसरे दिन शाम को मेरी से मुलाक़ात होने पर मैंने सबसे पहले यही पूछा। उसने मेरी ओर अजीब नज़रों से देखा। फिर वह बोली,

"कभी-कभी।"

"तब क्या करती हो?"

"जैसे अभी फ़िल्म देखूँगी।"

उसने दुबारा मुझे ध्यान से देखा। "सच पूछो तो, जो जी में आये, कर सकते हो।"

मेरी आँखें फिर आकाश की ओर उठ गयीं लेकिन अभी शाम के सात ही बजे थे। तारे अभी निकले नहीं थे। हम सिनेमा गये। पहले तो मैंने पर्दे की ओर नज़र उठाकर देखा तक नहीं। बत्तियाँ बुझने पर मैं मेरी को ही देखना चाहता था। अन्धेरे में मैंने उसका हाथ टटोलने की कोशिश की। हाथ ठण्डा था।

"तुम्हें ठण्ड लग रही है?" मैं होंठों में ही बोला।

"नहीं," उसने कहा लेकिन हाथ खींचा नहीं।

"इसे आर्मेन के घर ले जाऊँगा," मैंने फ़ैसला किया। "आज रात वह घर पर अकेला ही है।"

मेरी ने हाथ खींच लिया।

"बहुत गर्म है," वह बोली।

मेरी आँखें अन्धेरे की आदी हो चुकी थीं। मैंने दुबारा उसकी ओर देखा। हाँ, आज उसे आर्मेन के घर ले ही जाना होगा।

"नज़रें पर्दे पर रखो और हाथ हटा लो," मेरी बुदबुदाकर बोली। मुझे बात माननी पड़ी।

मेरा हमेशा से विश्वास रहा है कि लड़की की छोटी-छोटी बातें मान लेनी चाहिएं जिस से बाद में वह कोई विरोध न करे...

हॉल से बाहर आते समय मैंने किसी को भी फ़िल्म के बारे में चर्चा करते नहीं सुना। मेरी भी बस इतना ही बोली,

"बड़ी वाहियात फ़िल्म थी।"

"मैं अब तुम्हारी मुलाक़ात हँसते-गाते लोगों से कराना चाहता हूँ," मैंने कहा। "तुम वहाँ संगीत से अपना मन बहला सकती हो।"

"मेरे पास बोर होने का समय ही नहीं। और फिर, तुम्हें भी तो काम पर जाने में देर हो जायेगी..."

ठीक ही था। मैंने ही उसे बताया था, पाली साढ़े दस बजे शुरू होती है।

एक मिलिशियावाले ने सीटी बजायी।

"हम सड़क पर चौकसी से नहीं चल रहे," मेरी बोली। "देख रहे हो? हमारी ओर ही इशारा कर रहा है।"

"उफ़... मेरे ख़्याल से हमें उसके कहे मुताबिक़ ही करना होगा। और फिर, क्या फ़र्क़ पड़ता है?"

* * *

"शुभ प्रभात, जैक। पाली कैसी रही?"

"बहुत अच्छी। बस थोड़ा थक गया हूँ," मैंने बिस्तरे से ही जवाब दिया।

मेरी ओर रूमाल हिलाकर वह अपने काम में लग गयी। क्रेन की भुजा ने एक पूरी की पूरी दीवार ही उठा रखी थी। नीरस। और मैं सचमुच थका था क्योंकि रात में काफ़ी देर से घर लौटा था। जाने अनजाने लड़के-लड़कियों के साथ मैंने ख़ूब मज़े किये थे। हम पीते, नाचते और बहस करते रहे थे। तीन-चार लड़कियों के मैंने चुम्बन लिये, दो से मुलाक़ात का समय। उनमें से एक, आल्ला तो सचमुच हसीन थी। आज शाम उसे आर्मेन के यहाँ ले जाने की मैंने ठान ली थी। जब किसी ने कहा था, "आइये, उनके लिए पीयें जो जीना जानते हैं," तो मेरी ओर झुककर मेरी आँखों को अपने उरोजों से सेंकते हुए वह बोली थी, "यह हमारे लिए ही है।" मैंने पी तो ली लेकिन न जाने क्यों बेकार ही मेरी के बारे में मैं सोचने लगा। क्या यह टोस्ट उस पर लागू नहीं होता था? क्या उसे जीना नहीं आता था? "यही सच्चा जीवन है," आल्ला कह रही थी। एक बाँह उसकी कमर में डाल, दूसरे हाथ में जाम थामे मैं इन सब को भाड़ में झोंककर मेरी के बारे में सोचे जा रहा था। अपने उस क्रेन को ठेंगा क्यों नहीं दिखा देती? वह वास्तविक जीवन क्यों नहीं जी सकती? वैसी टाँगोंवाली लड़की आधे अधर में लटकने की जगह कोई बेहतर काम नहीं पा सकती? आल्ला रेमार्क की "तीन मित्र" के सम्बन्ध में कुछ कह रही थी। "मुझे रैविक का हर क़िस्म की शराब पीना बड़ा अच्छा लगता है। हम लोगों की तरह नहीं।"

जब मैं घर पहुँचा, पूरी तरह मदहोश था।

सोने की इच्छा हो रही थी लेकिन मेरी हाथ हिलाकर मेरा अभिवादन कर रही थी। कपड़े पहनने होंगे।

अब मुझे मेरी तो नहीं दिखाई दे रही थी लेकिन नजर अधबने मकान पर ही टिकी रही। जब हम यहाँ रहने आये थे, सड़क के पार एक भी मकान न था। अब न जाने कितने बन चुके थे। मुझे लोगों की, हथौड़ों व औज़ारों की आवाज़ें मेरीवाले मकान से सुनाई दे रही थीं। पहले इन आवाज़ों से मेरे दिमाग़ का पारा सातवें आसमान पर पहुँच जाता था लेकिन अब मैं कान लगाकर लोगों की बातें सुनना चाहता था। मुझे कई शब्द व वाक्य सुनाई दिये...

तभी माँ की आवाज़ सुनाई दी,

"कॉफ़ी वहीं ले आऊँ या तुम यहाँ खाने की मेज़ पर आओगे?"

मैं भोजनवाले कमरे में चला आया। लेकिन अन्ततः सब ऊबाऊ-सा लगने लगा: कॉफ़ी-पान और भवन-निर्माण।

एक बज चुका था। मुझे चार घण्टे बर्बाद करने थे। मैं सिनेमा की ओर चल पड़ा। टॉम और वियुल वहाँ पहले से ही मौजूद थे। वे सिनेमा के बाहर बेसाल्ट खम्भों के सहारे झुके थे। मेरे मन में सवाल उठा, अगर लोगों ने इन खम्भों का निर्माण नहीं किया होता तो वे किन के सहारे इस समय झुके होते?

सब बोर।

"हलो!" टॉम मुझे देखकर गर्मजोशी से बोला।

"हलो!" मैंने जवाब दिया।

थोड़ा-थोड़ा खिसककर उन्होंने मेरे खड़े होने की जगह बना दी। हम खड़े-खड़े क़रीब से गुज़रती हसीनों का मुआयना करते रहे। सामने से दूसरे लोग भी गुज़रते थे लेकिन हम भूलकर भी उन पर नज़र नहीं डालते। हम उन्हें मिलिशियावालों और कवियों के लिए छोड़ देते।

"ज़रा देखो, क्या नितम्ब हैं," वियुल बोला।

किंचित तप्त बेसाल्ट बड़ा आरामदेह लग रहा था। टॉम जम्भाई लेकर बोला,

"आज रात हम क्या करेंगे?"

"मेरे लिए यह कोई समस्या नहीं," हम लोगों की ओर चली आती एक लड़की की तरफ़ इशारा करते हुए वियुल ने कहा, "मैंने रात बिताने का जुगाड़ कर लिया है।"

"हलो, छोकरो!"

"हलो!" हमने कहा।

वियुल चला गया। हम वहीं जमे रहे। सीधी-सपाट लड़कियों और लोगों से सड़क भरी थी। मैंने महसूस किया, कुछ लोग ख़ुश और कुछ दुखी लग रहे थे। एक आदमी अपने-आप बड़बड़ाये जा रहा था। एक लड़की रो रही थी।

"कृपया, रास्ता देंगे?" मालूम हुआ सामनेवाले खम्भे पर मेरे एक पाँव टिका देने से रास्ता जाम हो गया था। बोलनेवाला कोई नौजवान था। उसने सीधे-सादे कपड़े पहन रखे थे और शायद, पिछले दिन से दाढ़ी नहीं बनायी थी।

बग़ल में उसने एक किताब दबा रखी थी।

"माफ़ कीजिएगा।" मैं उसे घूर क्यों रहा था? मालूम नहीं। मैंने पाँव हटा लिया। टॉम और मुझ पर एक अजीब-सी नजर डाल वह आगे बढ़ गया।

काली क़मीज़ में गर्मी महसूस होने की बात जब मैंने कही तो टॉम बोला, पेरिस में यही चलन है। मैंने पूछा, तुम्हें कैसे मालूम तो जवाब देने की जगह उसने बताया कि दिन भर के लिए वह कुछ नये रिकॉर्ड माँग लाया है। घर जाकर सुना जा सकता है।

"हाँ, पड़ोसियों के सोने से पहले तक ही," वह कहते हुए हँसा।

मैं मन ही मन सोचता रहा कि उसे पेरिस के नये से नये फ़ैशन की जानकारी कहाँ से मिलती थी लेकिन सुस्ती में मैंने अपना सवाल दुहराया ही नहीं। सब कुछ एकदम निरानन्द लग रहा था।

पाँच बजे मैं मेरी से मिला।

"मेरे साथ वापस लौटोगे?" वह बोली।

हम साथ चल रहे थे।

"हाँ, तुमने मुझे अभी तक अपने काम की जगह के बारे में कुछ बताया ही नहीं है।"

मैं पल भर को हतबुद्धि रह गया। तभी मेरे होंठ स्वतः कह उठे, "यह एक सैनिक रहस्य है।"

"अगर नहीं चाहते तो मुझे बताने की जरूरत नहीं।"

एक शराबी सड़क पर चला आ रहा था। हर किसी पर दाँत निपोड़ता, वह दिन-दहाड़े "चाँदनी रात" के बारे में गीत गा रहा था। उसे देखकर मुझे अचानक पार्टीवाली लड़की याद हो आयी जिसने रेमार्क की चर्चा की थी।

"मैं शर्तिया कह सकता हूँ, इस अभागे ने बस वोद्का ही पी है," मैं बोला। "रेमार्क के उस पात्र जैसा नहीं जो हर क़िस्म की शराब पीता है..."

मेरी चकित दिखाई दी।

"रेमार्क कोई खाने-पीने का सूचीपत्र नहीं। मैं नहीं जानती, वे लोग क्या पीते हैं, क्या नहीं लेकिन रैविक को मैं बहुत पसन्द करती हूँ..." अचानक वह ख़ामोश हो गयी, शायद उसे शब्द नहीं मिल रहे थे।

ग्रीष्म की शाम उतर आयी थी। हम सिनेमा के पास पहुँच रहे थे। हमेशा की तरह वही सारे यार-दोस्त थे: वियुल, आर्मेन और टॉम।

"हलो, छोकरे" टॉम बोला।

अभिवादन में मैंने एकदम हल्के से बस हाथ को हिला दिया। हाथ बड़े भारी लग रहे थे।

"तुम उन्हें जानते हो?" मेरी ने पूछा।

"हाँ? इससे क्या?"

मेरी मुझे और मैं सड़क की ओर देख रहा था जिसे अनगिनत लोगों के जूते घिस रहे थे...

"यहाँ खड़े-खड़े वे लोग दिन में कितने घण्टे बिता देते होंगे?"

"कभी-कभी तो पूरा का पूरा दिन," मेरे स्वर में तीखेपन था। मुझे महसूस हुआ, यह सवाल सबसे पहले और सब से ज्यादा मुझ से सम्बद्ध था।

"ख़ूब काम है," वह पहलेवाले लहजे में ही बोली। "मेरे ख़्याल से तो उन्होंने अब तक खम्भों में अपनी पीठों से छेद कर दिये होंगे।"

अपनी ही सौम्यता से चकित मैंने खम्भों पर अपने बनाये छेद ढूँढ़ने के लिए नज़र दौड़ायी।

"वे करते क्या हैं?" उसने स्वर में द्वेष भरकर पूछा।

"वे इनसान हैं।"

"यह कोई काम नहीं।"

"कैसे नहीं है? मक्सीम गोर्की ने कहा है: दुनिया में सबसे सम्मान-जनक काम है, इनसान होना।"

मेरी हँस पड़ी।

"उन परजीवियों के तुम अच्छे वकील बन सकते हो।"

इससे पहले मुझे किसी ने भी परजीवी नहीं कहा था। और कहते भी क्यों? क्या कोई ऐसा क़ानून है कि सब को काम करना पड़ेगा?

"उन्हें तुम परजीवी क्यों समझती हो?" अपना भेद बनाये रखने की कोशिश करते हुए मैंने यथासम्भव शान्त ढंग से पूछा। मुझे नीति-उपदेशक पसन्द नहीं थे। उनका वश चले तो किसी को वे चैन से नहीं रहने दें।

"तुम उनसे कोई बदतर थोड़े ही हो। आख़िर अब तुम्हें रात भर जा-कर काम करना है..."

मैं उनसे किस तरह बदतर था? तनिक भी नहीं। इसीलिए तो मैं उन्हीं जैसा करता था। लेकिन, मेरी, तुम्हें अब घर जाकर जल्दी-से जल्दी सोने के लिए भागदौड़ करनी होगी क्योंकि कल काम पर देर नहीं होनी चाहिए। ठीक छह बजे उठना होगा। और तुम कभी नहीं सोचती, वास्तविक जीवन से तुम्हें देर हो जायेगी। तुम एक दिन उठोगी और जीवन की घड़ी की सूइयों को रात के ग्यारह बजाते पाओगी। तुम्हारे पास ज़िन्दगी का बस एक घण्टा बचा रहेगा। तब कोई कैफ़ियत ढूँढ़ोगी ही। क्या कैफ़ियत ढूँढ़ोगी?..

"क्या तुम्हें जीवन आसान लगता है?" मैंने कहा।

"नहीं।"

"मैंने सोचा था, वह हाँ में जवाब देगी, कहेगी कि उसका काम बहुत आसान है। लेकिन उसने न क्यों कह दिया था?

"तुम कॉलेज क्यों नहीं जाती?"

"मैं परीक्षा में सफल नहीं हो पायी। कुछ दिनों पहले मैं तीसरी बार परीक्षा में फेल हो गयी।"

"अब क्या इरादा है?.."

* * *

पिछले तीन दिनों से मैंने खिड़की बन्द रखी थी। मैं अधिक से अधिक सोने की कोशिश करता क्योंकि इससे अनिच्छित विचारों के लिए कम समय मिलता। हर कोई क्यों काम करे? यदि सब के सब अचानक काम बन्द कर दें? लेकिन यह सारी बातें उकतानेवाली थीं। यह सवाल आदमी को फ़लसफ़ाबाज़ी में फँसा देते हैं। मुझे चमकती लाल शराब का गिलास उससे कहीं ज्यादा पसन्द था।

मैं बाहर निकल आया। गर्मी थी। लेकिन न जाने क्यों मेरी नज़र मुड़-मुड़कर सड़क पार देख लिया करती थी? क्या मुझे मेरी की तलाश थी? न चाहते हुए भी मैं मुस्करा उठा। यह ख़्याल अजीब था कि यह लौह दैत्य उसका आज्ञाकारी ग़ुलाम था। शायद वहाँ कोष्ठ में मेरी ने किताबें रख छोड़ी हों। उतनी ऊँचाई से मैंने शहर को कभी नहीं देखा था। मेरी तीसरी मंज़िलवाली खिड़की से बस सड़क के पार तक देखा जा सकता था

जहाँ इन दिनों प्राय: उखड़ी-भुरभुरी मिट्टी पड़ी होती... मैं एक रेस्तराँ के अन्दर जा पहुँचा। इस समय बेयरों के पास काम नहीं होता था, इसलिए वे ख़ुद भोजन करने में लगे थे। एकमात्र ग्राहक गर्मी थी। मुस्कानों ने मेरा स्वागत किया। मैं एक कुर्सी पर जा बैठा। खिड़की से चौराहा दिखाई दे रहा था। कोई लड़की फूल बेच रही थी।

* * *

मेरी ने रिकॉर्ड प्लेयर चला दिया था।

...न मालूम क्यों मैं शाम को ठीक पाँच बजे अपने घर से बाहर निकल आया था। वह मेरी राह देख रही थी। मैंने उसे बताया कि कारख़ाने को एक नया ऑर्डर मिला है और पिछले तीन दिनों में मुझे शॉप से बाहर निकलने का तनिक भी समय नहीं मिल पाया लेकिन आज रात मैं ख़ाली हूँ। और इस समय मैं मेरी के घर पर था। उसकी माँ बग़ल के कमरे में थी। कहीं पढ़ाई कर रहा उसका भाई अपना क्षेत्रीय अनुसन्धान समाप्त कर अगले हफ़्ते लौटेगा। इन बातों में अपनी दिलचस्पी बढ़ते देख मैं हैरान हो रहा था। वायलिन पर कोई अपरिचित धुन बजा रहा था।

"क्या तुम्हें वायलिन पसन्द है?"

"नहीं।"

मेरी ने मुँह बिचकाया।

"लेकिन ऐसी कोई बात नहीं, मुझे यह धुन पसन्द है।" मुझे डर था, वह कहीं दुबारा उपदेश झाड़ना न शुरू कर दे। धुन बजती रही। अचानक मेरा दिल लरज उठा। तभी संगीत समाप्त हो गया। मेरी ने कोई रिकॉर्ड लगा दिया।

"नाचना चाहते हो?"

मैं जम्हाई लेनेवाला ही था कि अचानक कमरा मेरे लिए जीवन्त हो उठा। ज़रा सोचिये, यह वही नृत्य-संगीत था जिसे टॉम कहीं से माँगकर लाया था। क्या मेरी और टॉम की पसन्द भी एक हो सकती है? रिकॉर्ड प्लेयर की धुन पर मेरी के पाँव ताल देने लगे थे। वह मुस्करा रही थी।

"आओ नाचें," मैं बोला। "तुम्हें यह धुन पसन्द है? मेरा मतलब इस संगीत से है।"

"हाँ।"

"और वायलिन?"

"वह भी।"

"टॉम ज़रूर हैरान रह जायेगा।"

"टॉम कौन है?"

"टॉम?" क्या कहनेवाला था, मैं वही भूल गया। "अरे, टॉम। मेरी जान-पहचान का है। वह कहता है..."

हमने चुम्बन लिये। न जाने यह कैसे हो गया। मुझे याद नहीं। यह कुछ ऐसे हुआ जैसे मैंने पहली बार किसी लड़की का चुम्बन लिया हो। रिकॉड घूम रहा था लेकिन मैं वायलिन की कोमल, मधुर धुन दुबारा सुनना चाहता था।

"माँ वहाँ है..." मेरी होंठों में बोली।

मैं उसके चुम्बन लेता रहा। तभी दिमाग़ में ख़याल कौंधा, मुझे एक भी कविता कंठस्थ नहीं। मुझे याद आया, वियुल एक बार सचमुच प्यार का रोग लगा बैठा था और हमने उसका जीना हराम कर दिया था। तभी मुझे महसूस हुआ, मेरी दुबारा मेरे काम की जगह के बारे में पूछ सकती थी और इस ख़याल के साथ ही मेरे घुटने कमज़ोर पड़ गये। खिड़की के पास जाकर मैंने सिगरेट सुलगा ली। मेरी बोली,

"माँ ज़रूर गहरी नीन्द सो गयी है..."

वही स्पन्दनकारी संगीत बज रहा था। बाद में भी कई रिकॉर्ड बजाये गये। लेकिन मेरी नाचने की इच्छा न हुई। मैं शहर को निहारता रहा। यह मुझे अब एक घूमता रेकॉर्ड सा प्रतीत हो रहा था हालाँकि गतिहीन। मुझे लगा, पिता जी पूछ रहे हों, "कल की तुम्हारी दिनचर्या क्या होगी?" फिर मुझे महसूस हुआ, मैं फिर वही जवाब नहीं दुहरा सकूँगा: "जो कल थी।"

"तुम सचमुच प्यार करती हो..."

मेरी के मुख पर सलज्ज मुस्कान आ गयी। वह समझ नहीं पायी थी।

"इस संगीत को?" मैंने अपना वाक्य पूरा किया।

"हाँ।"

"लोगों की राय में यह परजीवियों का संगीत है..."

"संगीत का इससे कोई वास्ता नहीं।"

मैं सड़क पर चल रहा था और सोच रहा था, काश यह कभी ख़त्म न हो। सड़क ज्यादा दूर नहीं जाती थी। मेरे पास सोचने को बहुत कुछ था लेकिन दिमाग़ में बस वही स्पन्दनकारी संगीत, वायलिन की आतुर धुन और ,"माँ ज़रूर गहरी नीन्द सो गयी है," कहते समय मेरी की आँखें ही घूम रही थीं। कितने विद्वेष से उसने मेरे दोस्तों को परजीवी कहा था और कितने प्रेम से मेरे चुम्बनों का प्रतिदान किया था। मैंने शुरू में ही उसे अपनी असलियत क्यों नहीं बता दी थी? मैं भी एक परजीवी हूँ। लो, यह रहे यार सब ।

"हलो छोकरे!"

मैंने एकदम धीरे से सिर हिला दिया।

"आओ भी।"

मैं कहाँ रहा था, न तो किसी ने पूछा न यही बताया कि हम कहाँ जा रहे हैं। बस हम ही हम थे। चलते रहना था। परिचित रास्ते पर चलते हुए मैं गुज़रनेवालों को निहारता रहा। मैं उनसे किस तरह बदतर था? सिर्फ़ इसलिए कि मैं काम करना नहीं चाहता था? लेकिन क्या यह इतना महत्वपूर्ण था? मेरे पिता युद्ध में किस लिए लड़े थे? वे कारख़ाने में रात-दिन क्यों काम करते रहते हैं और कोई उनसे क्यों नहीं कहता: "आपने बहुत काम किया। अब आराम से ज़िन्दगी बिताइये।"

"कल हम एकत्र हो रहे हैं। उसे भी साथ लाओ," वियुल बोला।

"क्रेन ऑपरेटर को," टॉम ने बात जोड़ी। मैंने सिर हिला दिया। वह लड़की कहाँ से आ टपकी थी? मैं उसके साथ दूसरी लड़कियों की तरह क्यों पेश नहीं आ सकता। और फिर दिमाग़ से पिछले कुछ दिनों को निकाल देना इतना मुश्किल क्यों हो रहा था?

"चलो, अन्दर चलें," कोई बोला। हम रेस्तराँ में जा पहुँचे।

* * *

"शुभ प्रभात, जैक। रात काम कैसा रहा?"

वह आकाश से नहीं बोल रही थी। हम सड़क की पटरी पर खड़े थे। रात ठीक नहीं कटी थी। मैं सात बजे ही घर से बाहर चला आया था। फिर मेरी से भेंट हो गयी।

"इतना सबेरे कैसे?"

"बड़ी गर्मी है।"

तभी वह बोल उठी, "आकाश में चढ़ना चाहते हो?"

मुझे मज़ाक़ की हिम्मत हुई,

"बेल्का व स्त्रेल्का कुत्तों की तरह?"

"नहीं। बस छह मंज़िल की ऊँचाई तक। मेरे साथ।"

बात जम गयी। चलो, आकाश से भी जीवन पर एक बार दृष्टिपात करना चाहिए। अरे, बोर ही होना है तो यहाँ नहीं, वहीं सही।

हम निर्माण-हाते के अन्दर चले आये। चारों ओर से लोगों ने मेरी का अभिवादन किया।

"कोई नया शिष्य?" किसी ने पूछा। मेरी मुझे गर्व से देख रही थी।

"इसके ख़ुद अपने शिष्य हैं। जानते हो, कहाँ काम करता है?.."

बहरहाल, कहने को तो उसने कह दिया लेकिन फिर असहाय-सी वह मुस्करा पड़ी क्योंकि उसे मेरी काम की जगह के बारे में मालूम ही नहीं था। मेरी ने किसी से बातें कीं और मुझे उसके साथ ऊपर जाने की इजाज़त मिल गयी। मेरे हाथ-पैर स्वतः काम कर रहे थे। हम आकाश में जा पहुँचे। नीचे मेरा अपना शहर था। मुझे यह अब तक अनदेखा लगा। मुझे दर्जनों क्रेन दिखाई दिये। मुझे वे हाथ हिलाकर अभिवादन करते प्रतीत हुए। चारों ओर नये मकान खड़े किये जा रहे थे। और लोग ही लोग। मेरी कण्ट्रोल पर बैठी थी।

"अब मैं नीचे जाऊँगा। तुम अपनी किताबें कहाँ रखती हो?"

"नीचे जाना चाहते हो? यह यहाँ देखो।" फिर उसने लोहे की दीवार में टँगा शीशा दिखाया। "यह मेरी सिंगार-मेज़ है। तुम थक गये होगे?"

शीशे की ओर देखकर मैं मुस्कराये बिना नहीं रह सका। मेरी बोली,

"मैं पाँच मकान बना चुकी हूँ... मेरा मतलब है, हम सब ने," उसने तेज़ी से अपनी बात पूरी की।

पाँच मकान। और मैंने सिर्फ़ इस शहर में पैदा होने का काम किया था। बस।

* * *

सिनेमा के बाहर एक नौजवान हमारे पास आ पहुँचा।

"दीदी, माफ़ करना, मुझे देर हो गयी।"

"मेरे भाई से मिलो," मेरी ने कहा।

"जैक?" उसने मुझे ध्यान से देखने के बाद अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। "मेरी ने मुझे आपके बारे में बताया है।"

"मेरा नाम आर्सेन है।" कह नहीं सकता, मैं चीखकर बोला या धीमे से। मुझे लगा, हर किसी और हर चीज़ पर विश्वास कर लेनेवाले इन दोनों के साथ मेरी नहीं निभ सकेगी। मैंने मेरी का चेहरा ज़र्द पड़ते भी महसूस किया। उसके भाई ने हाथ थोड़ा परे खिसका लिया जो क्रेन की भुजा की तरह हवा में लटकता प्रतीत हो रहा था।

"जैक भी बुरा नाम नहीं," वह शालीनता से बोला। "जैक लण्डन मेरे प्रिय लेखक हैं। आपको उनकी पुस्तकें प्रिय हैं?"

मजबूरन मुझे हाँ करना पड़ा हालाँकि किसी लेखक के बारे में राय देने के लिए उसकी किताबें ज़रूर पढ़नी चाहिए।

मेरी अभी तक शान्त नहीं हो पायी थी। वह अभी यह सारी बातें समझने की कोशिश ही कर रही थी, सो अस्पष्ट स्वर में बोली,

"चलो, अन्दर चलें। देर हो जायेगी।"

"मुझे उम्मीद है, तुम माफ़ कर दोगी। मैं फ़िल्म देख चुका हूँ, फिर इसके अलावा..."

मेरी ने मेरे हाथ का स्पर्श किया।

"अभी तुम्हारी पाली शुरू होने में तो काफ़ी समय बाक़ी है।"

"मैं कहीं काम नहीं करता।" सच पूछिये तो मैं चीख़ ही पड़ा। लेकिन फिर उतनी ही शान्ति से बोला, "अलविदा, मेरी..."

यातायात के शोरगुल के बीच रास्ता तय करते मैं आगे बढ़ गया। तभी बेसाल्ट खम्भों से टिके दोस्त दिखाई दे गये।

"हलो!" टॉम चिल्लाया।

"हलो!" दूसरे भी ज़ोरदार आवाज़ में बोले।

लेकिन सड़क की भीड़ मुझे आगे खींच ले गयी। मुझे सिर्फ़ बेसाल्ट के खम्भे दिखाई दिये जिन्हें लोगों ने बनाये थे। मैं तो इस शहर में बस

पैदा हो हुआ हूँ। मैंने आँखें ऊपर उठायीं। तारे निकल आये थे। वे चमक रहे थे लेकिन मात्र इसलिए नहीं कि कवि उनके बारे में कविताएँ लिखें। वे वहाँ इस लिए भी मौजूद हैं कि जब किसी को, किसी भी चीज़ पर भरोसा नहीं रह जाता तब वह आसमान की ओर देखे। शायद लोगों का आमना-सामना या अपने हृदय का अवलोकन करना बाद में ज्यादा आसान हो जाता हो। शायद कोई बाद में अपनी आत्मा में कोई तारा ढूँढ़ सके।

* * *

पिछले तीन हफ़्तों से मैं लगातार सबेरे उठने लगा हूँ। पिता जी से मुलाक़ात नहीं हो पाती है और न ही मेरी को आवाज़ सुनाई देती है, "शुभ प्रभात, जैक। रात काम कैसा रहा?"

हाँ रात जा चुकी थी। अब सबेरा था।

अान्त मातेवोस्यान

एक साथी की तलाश

पर्वत-शिखर बर्फ़ के आवरण में था। बर्फ़ के ऊपर ही एक छोटा-सा बादल एड़ी चोटी का ज़ोर लगाते हुए कुहरे का धागा बुन रहा था और उससे नीचे एक लवा चिड़िया लहराती आवाज़ में गा रही थी। बादल से ऊपर, ढोरों से ऊपर, बाज़, पहाड़ों, चरागाह व जंगलों से ऊपर दूसरे देशों से आनेवाली स्वच्छ हवाएँ चिलचिलाते सूरज के विशाल गोल पिण्ड को अपने साथ-साथ लिये जा रही थीं।

गायों को अचानक अच्छी घास खाने को मिल गयी थी और उन्हें मालूम था, अच्छी घास खा डालने के लिए वनरक्षक उन्हें जल्दी ही हाँकने लग जायेगा। इसलिए वे बड़े उतावले ढंग से घास खा रही थीं। घास खाकर उनके पेट भर गये लेकिन फिर भी वनरक्षक दिखाई नहीं दिया था। हिमावृत्त शिखर से एक सोता फूटता था। यह ढलान से नीचे की ओर दौड़ता, ढोर के बीच से चक्कर लगाता गुज़रता था। गायों को सोते के निकट होने का अहसास होता था। घास खाने के बाद उनके थन दूध से भर गये और वे मन ही मन में सोच रही थीं, कहीं पास में ही सोता ज़रूर प्रवहमान् है।

भैंस तरह-तरह की गन्धों से पूरित छोटी घाटी में चर रही थी। हवाएँ उन गन्धों में से एक को भी उड़ाकर नहीं ले जा पायी थीं क्योंकि खड्ड तक वे पहुँच ही नहीं सकी थीं। अगर ढोर यहाँ आ पहुँचा तो ज़रूर ही सब कुछ रौंद डालेगा। घाटी को गन्दी कर डालेगा, सो, भैंस चरते-चरते सिर हिलाती जाती और धमकी भरे अन्दाज़ में कभी-कभार सिर से टक्कर

भी मार देती। सहसा घास उसके गले में चुभने लगी। सोता पास में ही था लेकिन उसे अपनी रीढ़ में सिहरन-सी हो आयी। यानी सूरज बादलों में जा छुपा था। अपनी चमड़ी झटककर उसने छाया को खिसका देने की कोशिश की लेकिन बेकार। आगे क्या होता है, यह देखने को उसने सिर ऊपर उठाया तो नसों में ख़ून की गति धीरे-धीरे रुक-सी गयी। उसके आसपास की दुनिया अन्धेरी हो गयी, सारी आवाज़ें दब गयीं। फिर सब कुछ छुपकर कहीं गुम हो गया और लवा चिड़िया, बयार व सोता—सब के सब ठहरकर किसी चीज़ की प्रतीक्षा करने लगे : अब शायद बादल फट पड़ेगा लेकिन तभी अचानक भैंस की नसें सुचारू रूप से काम करने लगीं और उनमें ख़ून आराम से बहने लगा।

वह छोटी घाटी से निकल आयी। चरागाह की झिलमिलाती रोशनी में दिखाई देती गायें सुन्दर थीं लेकिन उनमें एक भी भैंसा न था। उसका रक्त तप्त हो रहा था और दाह से टाँगों में पीड़ा व दंशन की अनुभूति हो रही थी। और रीढ़ में उसे गरदन से पूँछ तक ख़ुशगवार गर्मी उठती महसूस हो रही थी। पैरों का भार बदलकर उसने गायों की ओर बढ़कर उनके साँड़ पर हमले की बात सोची लेकिन फिर अपना विचार बदल दिया। उसका क्रोध कम होता जा रहा था।

इस हरित नन्दनकानन की नीरवता में घासों से अद्भुत सुरभि उठ रही थी। एक मधुर अवसाद ने उसे घर कर लिया था।

भैंस रंभा उठी।

गायें आवाज़ की ओर देखने लगीं : कहीं वनरक्षक तो नहीं? नहीं, यह तो भैंस थी।

और गायें समृद्ध मुलायम घास के बीच चरती रहीं जिसका कोई स्वामी न था। पास में ही अच्छा पानी था तथा अपना सांड़ भी। उनके थनों में तीव्र गति से दूध दौड़ रहा था। ऊपर गरम-गरम सूरज था।

भैंस गड़ेरियों के शिविर की ओर चल पड़ी। वह अपने थन को पिछले पैरों के बीच अत्यन्त सावधानी से लिये चल रही थी। वह अपनी स्वामिनी की ओर जा रही थी जिससे वह दूध दोह ले। पठार में लगा शिविर उसकी आँखों के सामने झिलमिलाया और लुप्त हो गया। एक छोटे दर्रे में वह घास का निवाला ले चबाने लगी। उसे एक बेचैनी-सी महसूस हुई।

ढोर अभी तक चर क्यों रहा था? ढोर यानी मामूली गायें। भैंस तो सिर्फ़ वही एक थी।

शिविर के बाहर रुककर उसने स्वामिनी को आवाज़ दी।

"लौट आयी?" स्वामिनी बोली। "अपराह्न भोजन के समय क्यों आयी हो? ढोर तो चरागाह में है और तुम यहाँ। अच्छा चलो, आ गयी हो तो तुम्हें दोह लूँ। लेकिन तुम्हारे थन में तो दूध ही नहीं। फिर तुम आयी क्यों?"

स्वामिनी ठीक ढंग से दूध नहीं निकाल रही थी, उसके चूचुकों को खींचे डाल रही थी। भैंस ने गहरी साँस ली: उसी की गन्ध थी, आवाज़ भी उसी की थी लेकिन आज वह ठीक ढंग से दोह क्यों नहीं रही थी। भैंस को दोहन से अनिच्छा हो आयी। दूर, बहुत दूर में, घिरे कुहरे में भैंसों का झुण्ड था और एक भैंसा उसे जंगलों, रास्तों के पार आने का आह्वान कर रहा था।

"मुझे रौंद रही हो?.. क्यों सातिक? फिर तुम्हें दोहेगा कौन? अरे, तुम तो सचमुच चिड़चिड़ा रही हो। मिनास! आज भैंस को कुछ हो गया है।"

"अरे कुछ नहीं हुआ! उसे साँड़ चाहिए।"

"तो मेरी सातिक को साँड़ चाहिए। हूँ। जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फ़रवरी, मार्च... अप्रैल, मई... अच्छे मौसम में बियाओगी, धूप रहेगी, सब कहीं हरा-भरा होगा। मैं तुम्हारे बछड़े को कुतरने के लिए ताज़े पत्ते दूँगी।"

पहाड़ी पर चढ़कर भैंस ने परमात्मा के हरित नन्दन कानन से लेकर दूरवर्ती धूप से झुलसे मैदानों तक नज़र डाली।

लोमड़ी मर गयी, दर्रे के बीच एक ऐसी जगह मर गयी जो सब कहीं से दिखाई देती है और चील उसे अवश्य देख लेगी। लोमड़ी ने बिलकुल ठीक ही किया इसी लिए बयार उसके समूर से अपनी इच्छानुसार खेल रही थी।

वहाँ, मैदानों में भैंसों का झुण्ड गर्मी के कारण चमकते पसीने से तरबतर इधर-उधर चल रहा था। उनमें से एक उत्तप्त रक्त, हृष्ट-पुष्ट, पौरुषसम्पन्न भैंसा सिर लटकाये उसे निमन्त्रण दे रहा था। आह भरकर भैंस घाटी की ओर उतर पड़ी...

"यह जानवर क्या कर रहा है!" लोमड़ी उसकी तरफ़ भागी। हज़ारों बार उसने ऐसी गन्दी ज़मीन पर मांद न बनाने की सोची... लोमड़ी भैंस के ऐन सामने से कूद पड़ी और उसके पैरों तले कुचले जाने से बाल-बाल बची लेकिन फिर भी भैंस को कुछ डराने में सफल रही जिससे वह भटक गयी। फिर लोमड़ी बैठकर उसे जाती देखती रही।

बिच्छू बूटियों से अटे पड़े चेरियोंवाले भूखण्ड को पार कर भैंस जंगल में जा पहुँची। जंगल में कोमल हरित प्रभा-सी फैली थी। पेड़ों की फुनगियाँ आसमान को छू रही थीं, तने नग्न थे और गाँठदार जड़ों से ज़मीन दिखाई नहीं दे रही थी। भैंस जंगल की शान्त हवा को कान लगाये सुनती रही। फिर ज़मीन मुलायम हो गयी और गाँठदार जड़ों का स्थान नम, सड़ते पत्तों की परत ने ले लिया। हवा में जंगली लहसुन की तीखी गन्ध बसी थी। पेड़ों के बीच सफ़ेद धारी की तरह आख़िर में जंगली स्ट्रॉबेरी के फूलों से आच्छादित सपाट मैदान दिखाई दिया। मधुमक्खियों की भनभनाहट पेड़ों की फुनगियों से भी ऊँची उठ रही थी। मुड़ी-तुड़ी जंगली झाड़ियों में भैंस के सींग उलझ गये और स्ट्रॉबेरी के फूलों की सुरभि ने उसे छा लिया। शीघ्र ही सपाट मैदान पीछे छूट गया। जंगल में ऐसी निविड़ निस्तब्धता थी कि उसे लगा, कान बहरे हो गये हों।

सड़े पत्तों से कुकुरमुत्तों की बू-सी आ रही थी। पैरों तले ज़मीन पंकिल थी और वह फिसलती-सी घाटी में उतरती चली गयी। कीचड़ से उसके पैर लथपथ हो रहे थे और उसकी पेशियों को ज़ोर लगाना पड़ रहा था। खड्ड से निकलकर वह जंगल के पास जा रुकी।

बीस दिनों बाद आदम नामक महागपक्कड़ शिकारी को लथपथ कीचड़ दिखाई दिया। उसे एक कुन्दा खड्ड में हाल में ही गिरा दिखाई दिया। वह सपाट भूखण्ड के पास थोड़ी देर खड़ा रहा लेकिन जंगली स्ट्रॉबेरी तोड़ने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। बाद में गाँव की बीच गली में खड़ा होकर पाइप में तम्बाकू डालते हुए उसने शेखी बघारी:

"आज मेरा सामना एक भालू से हो गया... स्साला, मेरी आवाज़ सुनकर छोटे-छोटे पेड़ों व स्ट्रॉबेरियों को कुचलता खड्ड में लुढ़क गया! मैंने उसका पीछा करने की सोची लेकिन तभी ख़्याल आया कि अभी शिकार का मौसम तो शुरू ही नहीं हुआ है..."

जौ के एक खेत के निकट दिन की सफ़ेद रोशनी को झेलती भैंस जंगल

के किनारे खड़ी थी। खेत के ऊपर सूरज का बहुत बड़ा गोला स्थिर था और जौ का हर पौधा धूप का मज़ा लेते हुए अन्न के दाने जमा करने में लगा था, पूरा का पूरा खेत उल्लासमय लहराता दिखाई दे रहा था।

एक जंगली गुलाब एक सफ़ेद फूल, एक कली और दर्जन भर कोढ़ियाँ लिये खेत के बीच में किसी प्रत्याशा में खड़ा था और अपनी ही सुरभि का पान कर रहा था। झाड़ी के आस-पास रोयेंदार जंगली मधु मक्खियाँ तेज़ी से भनभना रही थीं।

खेत के परे एक पुराना नाशपाती का पेड़ झिलमिलाती धूप में खड़ा लहरा रहा था। पेड़ पर मधु-पीत रंग के थोड़े से ही पत्ते थे। पिछले सत्तर सालों से वह मन्द-मन्द कराहता रहा था और बिजली के आघात से हुए घाव को भरने की कोशिश में लगा था। इसमें उसकी पूरी जवानी होम हो गयी थी और जब ज़ख़्म कमोबेश भर चुका था, मन्द बुद्धि कारान्त्स मत्साक वहाँ आ पहुँचा। उसने पेड़ में कुल्हाड़ी मार दी और नकियाते हुए कुछ इन्तज़ार किया फिर जैसे सूखी लकड़ी काट रहा हो तने के मध्य से उसने तीस चम्मचों और तीन डोइयों के लिए लकड़ी काट ली। बेचारा नाशपाती का पेड़ क्या करता, वह जौ के खेत के किनारे खड़ा उसके बाद लम्बे अर्से से अपनी मौत के दिन गिन रहा था।

वसन्त की दलदल अब सूख चुकी थी लेकिन भैंस के पैरों तले वह फिर से छप-छप करने लगी। सूखी घास की एक छोटी-सी पूली चारों ओर सेब की सुगन्धि फैला रही थी। जाम बनाने के लिए हरे अखरोटों के वास्ते तरुण तरु को बुरी तरह झकझोर डाला गया था। धूप से तन्द्रिल एक छोटा साँप अखरोट के पेड़ के नीचे गरमाई ले रहा था।

भैंस सुलगती कारानत्स पहाड़ी पर चढ़ रही थी। गर्मी से वह तप रही थी। भैंस को गर्म हवा की लहरों ने छा लिया, उसकी नाक व आँखें सूख गयीं। उतराई शुरू करने से पहले साँसों पर क़ाबू पाने के लिए वह रुक गयी। फिर उसने नीचे की ओर देखा।

पहाड़ी के तले बसा गाँव ख़ामोश था: फलोद्यान शान्त थे, सड़कों पर धूल भी नहीं उड़ रही थी। चकाचौंध रोशनी में लाल-काली छतें साफ़-साफ़ दिखाई दे रही थीं।

एक छोटा-सा सोता बाड़े के तले से कारान्त्स के बन्दगोभी के खेत की ओर जाता था। चौड़े-चौड़े पत्तोंवाले सूरजमुखी के फूल भैंस को सबसे पहले

दिखाई दिये। आदम के पोपलर के पत्ते ऊपर को उठकर मुड़ गये थे जिससे उनका रंग पीला दिखाई देता था। पोपलर व बन्दगोभियों के बीच में एक सेब का पुराना पेड़ था, आलू, खिलते खीरे की बेलों व मिर्च की क़तारें थीं। पोपलर ख़ुद सारा पानी पी डालता लेकिन ऐसा दिखाता मानो प्यास से मरा जा रहा हो और जल्द से जल्द वर्षा के आने की प्रतीक्षा कर रहा हो। सेब के पेड़ के नीचे एक भूरा कुत्ता लेटा था। मधुमक्खियों के छत्तों के पास हिमधवल दाढ़ी मूँछों व चमकती गंजी खोपड़ीवाले दादा सार्किस इधर-उधर डोलते फिर रहे थे। मधुमक्खियों की भनभनाहट के बीच उन्हें किसी के आने की पदचापें सुनाई दीं। उन्होंने सूरजमुखियों के बीच पुरानी जाकिट पहने खड़े पुतले की ओर देखा। पुतला चेरी वृक्ष की ओर निहार रहा था।

दादा सार्किस का घर सड़क के पास था। घर और गोशाला के बीच एक बड़ा-सा प्रांगण था। प्रांगण में चटाइयों पर अनाज सूख रहा था। अनाज के पास ही अपने अगले पंजों पर सिर टिकाये एक विशालकाय झबरा कुत्ता ऊँघ रहा था। वह कह रहा था: मैं बसर हूँ। मैं गेहूँ की रखवाली कर रहा हूँ। इस समय गौरैयों को नीन्द आ गयी है। बसर बोला: यह तो कोई साँड़ है। मुझे जानना चाहिए, इस गर्मी में यह कहाँ जा रहा है। धरती के ज़रिये सुनाई दे रही धमक रुक गयी। नीन्द में ही बसर को किसी की क्षुब्धकारी उपस्थिति तथा बोझिल दृष्टि की अनुभूति हुई। कुत्ते ने हल्के से पलकें ऊपर उठायीं: अरे, यह तो भैंस है! वह उसे सूँघने के लिए दौड़कर उसके पास जा पहुँचा फिर गायों का स्वागत करने फाटक से बाहर चला गया। लेकिन रास्ता सुनसान था। पल भर हिचकिचाने के बाद वह बाड़े के साथ-साथ दौड़ पड़ा। आख़िरी बिल्ली के पास पहुँचकर वह उलझन में पड़ा ठहर गया: पड़ोसी के बाड़े से गुज़रती कारान्त्स की खुली पहाड़ी तक जाती सड़क भी सूनी थी। बसर की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। नतमस्तक प्रांगण में लौटकर वह अनाज व भैंस के बीच में लेट गया।

कुत्ते पर आँखें टिकाये, गहरी साँस छोड़ भैंस गोशाला की ओर बढ़ गयी। ढूसकर दरवाज़ा खोल वह अन्दर जा पहुँची। अन्धेरी गोशाला में सर्द आँखें दमक रही थीं। हवा में क्रन्दन की आवाज़ थी—शायद कोई भयानक चीज़ अन्धेरे में छुपी थी। जाले में छुपा मकड़ा तो नहीं था जिसे

देखकर भैंस डर गयी थी? नाँद में सेंधा नमक का एक बड़ा-सा टुकड़ा पसीजकर धुँधली नमी फैला रहा था।

भैंस उलटे पाँव लौट ग्रायी ग्रौर इधर-उधर देखकर रँभायी। वह रही बन्दगोभी की क़तारें, वह रहा बाड़ा, वह रहा बसर ग्रौर वहाँ ग्रनाज सूखने को पड़ा था। लेकिन उसे क्या चाहिए? दूर, ग्रतिदूर भैंसों का झुण्ड धूप से झुलसते सपाट मैदानोंवाले गर्म सोतों की ग्रोर बढ़ रहा था ग्रौर एक हृष्ट-पुष्ट, पौरुषसम्पन्न भैंसा था उनमें, तप्त रक्तवाला। भैंस तेज़ी से सड़क की ग्रोर भागी। बसर उसके पीछे-पीछे ग्राया। वह बोला: हम देखें, भैंस कहाँ जा रही है। भैंस बाड़े के सहारे-सहारे चल दी।

बाड़ा जहाँ ख़त्म होता था, वह एक दूसरा मकान था। मकान के सामने लोहित रंग के फूलोंवाली लोबियों की बेलें थीं ग्रौर लोबियों के बीच एक कटखनी कुतिया भटक रही थी। ग्रगर वह किसी गुज़रनेवाले को काट न लेती या कम से कम वहशियाने ढंग से उस पर भौंक नहीं लेती, उसे ग़ुस्से के मारे ग्राँसू ग्रा जाते। इसी कारण बसर भैंस को पीछे छोड़कर लो-बियों की बेलों की तरफ़ दौड़ पड़ा। धमकी भरे ग्रन्दाज़ में सिर-पूँछ उठाकर उसने ग़ुस्से से ग्रपने दाँत दिखाये। लेकिन पता नहीं क्यों कुतिया ने कोई जवाब न दिया ग्रौर इसलिए बसर गर्वपूर्वक भैंस को सुरक्षित बाड़े के ग्रागे तक पहुँचा ग्राया। फिर उसके साथ-साथ सोते से ग्रागे, एक परित्यक्त फलोद्यान पार कर ग्रौर एक प्रार्थनागृह से गुज़र वह गाँव के ग्राख़िरी सिरे तक जा पहुँचा। सोते में बच्चे छपछप कर रहे थे। नूनिक व गयाने लड़कि-याँ थीं, इसलिए जाँघिया पहने थीं लेकिन ग्रोविक, तिग्रान न मानुक लड़के थे, सो, नंगे नहा रहे थे। सोता स्वच्छ था, बच्चों की ग्रावाज़ें भी ग्रौर बड़ा, विशाल सूरज सबको गर्मी पहुँचा रहा था। एक ग्रकेली भैंस, जिसके पीछे-पीछे कुत्ता चल रहा था, सड़क से नीचे की ग्रोर ग्रा रही थी। भैंस व कुत्ता, दोनों ने बालू की ग्रोर देखकर नाक चढ़ा ली। भैंस सोते को पार कर गयी ग्रौर कुत्ता सोता पार करने के लिए किसी सँकरी जगह की तलाश करने लगा। सँकरी जगह ढूँढ़कर जब कुत्ते ने छलाँग लगाकर सोता पार किया, भैंस ढलान से उतरना शुरू कर चुकी थी। कुत्ता तेज़ी से उसके पीछे दौड़ पड़ा।

थोड़ी देर बाद ही के दोनों कॉरनल पहाड़ी पर जा पहुँचे। नीचे मैदान से सूखे पराग की लहर ऊपर तक पहुंच रही थी। भैंस ने मुड़कर देखा:

बसर एक जगह बैठ गया था और आस-पास नज़र डालकर जगह को अपनी याद में बैठाने की कोशिश कर रहा था जिससे जब उससे पूछा जायेगा: "बसर, भैंस कहाँ गयी थी?" तो वह यह जगह दिखा देगा। "लेकिन मुझे नहीं मालूम, वह यहाँ से कहाँ गयी।" पगडंडी के मोड़ तक भैंस को जाते कुत्ता देखता रहा। भैंस से जुदा होने पर उसे अफ़सोस हो रहा था। फिर उसे इसका दुख भी महसूस हुआ कि मालकिन बसर को तीन साल से गर्मियों में चरागाहों पर नहीं ले गयी थी। फिर बसर उछलकर उठ खड़ा हुआ और घर की ओर लौट पड़ा। गौरैयों की नीन्द खुलने ही वाली होगी और सब की सब गेहूँ के दानों पर टूट पड़ेंगी और एक-एक दाना चट कर डालेंगी।

भैंस मुड़कर खड्डवाली राह पर चल पड़ी। प्यास लगी थी, इसलिए उसे वहाँ सोता मिलने की उम्मीद भी लेकिन तभी जुती ज़मीन की नम गन्ध उसकी नाक से आ टकरायी। धूप से झुलसे अनन्त मैदानी इलाक़े में कहीं क़रीब ही काली मिट्टी के ताज़ा टुकड़े होने चाहिए, एकाकी नाशपाती का पेड़ और उसके तले थोड़े से बैल व बग़ल में दो भैंसे होने चाहिए। एक भैंसे ने सिर उठाकर किसी भैंस की उपस्थिति महसूस की। भैंस की पदचाप उसके पेशी पिण्डों में महसूस हो रही थी।

उकसाती गन्ध लेती भैंस छोटी पहाड़ी पर जा चढ़ी। चारों ओर झुलसते मैदान ही मैदान थे। उसके नथुनों में बसी काली जुती मिट्टी की नम गन्ध को गर्म लहरें सुखा गयीं। भैंस रँभायी। उसका करुण क्रन्दन चारों ओर फैले रेगिस्तान के निपट सूनेपन में गूँज उठा। पैरों को सहारा दे, उसने जुताई के कम्पनों को धरती से ग्रहण करने की कोशिश की: साँड़ों की जोड़ी जैसे-जैसे हल को खींचते आगे बढ़ती जाती, घास जड़ों से उखड़ जाती और ज़मीन दो हिस्सों में बट जाती। उनके अगले पैर ज़मीन पर ज़ोर लगा रहे थे।

एक गहरी साँस ले भैंस सभी आवाज़ों व सूखी घासों की गन्ध को रौंदती आगे भाग चली।

"उससे ग़लती हुई थी। खेत का नामोनिशान तक न था। आगे सिर्फ़ पत्थर व चट्टानें थीं जो उसके भारी क़दमों तले डोलती भी नहीं। भैंस रुक गयी। पथरीली ज़मीन पर उसके वज़न का कोई असर न था। भैंस पीछे खिसक आयी। पत्थर भी पीछे खिसके। फिर वे ग़ायब हो गये, उन्हें

धरती निगल गयी। कहीं खेतों के बीच ताज़े जोत के ऊपर हल्का कुहरा उठ रहा था, कहीं इन खेतों के सिरे पर कोई भैंसा था और उसकी बोझिल नज़र भैंस की पीठ पर केन्द्रित थी। फिर भैंस को उसकी आवाज़ सुनाई दी। उसने कान लगाकर सुनने की कोशिश की लेकिन तब कोई आवाज़ ही नहीं थी। वह आगे बढ़ती गयी। ज़मीन छोटे-छोटे नालों में बटी थी। नाला उसके खुरों से धारा को बहाकर एकाकी साँड तक ले जा रहा था।

भैंस से फिर ग़लती हो गयी थी क्योंकि खेत एक पादपर्वत के पास समाप्त होता था। ढलान की उतराई अधिकाधिक सीधी होती जा रही थी और उसके ऊपर की मिट्टी की परत अधिकाधिक पतली—फिर थोड़ा आगे बढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता था जैसे हवा पूरी तरह मिट्टी को उड़ा ले गयी थी और मात्र पथरीली चट्टान ही बची रही थी। एक दरार का अथाह शून्य उसे लुभा रहा था। भैंस रँभा उठी, वीरान ख़ामोशी काँपकर एक गूँज में बदल गयी और दरार से किसी लोमड़ी एवं पक्षी की सड़ी दुर्गन्ध निकलकर भभा उठी। भैंस फुनफुनायी और वहाँ से मुड़कर सुदूर धुँधलके की ओर देखने लगी जहाँ शायद परमात्मा ने उसके लिए कोई भैंसा रख छोड़ा था या शायद नहीं भी छोड़ रखा हो। उसके खुरों तले से मिट्टी की आख़िरी परत खिसक गयी। भैंस के क़दम लड़खड़ा गये, उसके हवास बिगड़ गये। वह नीचे की ओर दौड़ पड़ी। फलाँगती, पता नहीं पाँव तले क्या-कुछ कुचलती वह सरपट भाग रही थी। सिर में ख़ून धमक रहा था और आक्रोशपूर्ण हुँकार की आवाज़ सिर्फ़ उसे ही सुनाई दे रही थी। यहाँ दरार और खड्ड के अलावा कुछ न था। भैंस को फिर धोखा हुआ था। आकाश में रहनेवाले परमात्मा की ओर आँखें उठाकर वह पूरी शक्ति से रँभायी, फिर दुबारा रँभायी। उसकी आर्द्र पुकार सुदूर खेतों की ओर बढ़ चली, धूप में सूख गयी और अनादि सरसराहटों एवं दारुण प्रत्याशाओं में घुलमिल गयी। यह रहे पाटल कुसुम जो नमी की एक बूँद से वसन्त में परागित हो उठे थे; यह रहे आहरिस फूलों के पौधे जिन्होंने अपने सुपुष्ट बीज सम्भाल कर रखने के लिए बहुत पहले ही धरती को सौंप दिये थे; और यह रहे अहिपुष्प जिन्होंने ओस व ऊष्मा का अपना हिस्सा हज़म करने के बाद अब शान्तिपूर्वक मौत की प्रतीक्षा शुरू कर दी थी, अपने बीजों को उन्होंने मज़बूत छीमियों में समेट लिया था; यह रहे सू

डण्ठलों में झींगुर जो अपने शिशु पैदा करने के बाद शाम की प्रतीक्षा कर रहे थे जिससे वे अपनी चहक शुरू करें; और यहाँ चलमोथा किसी तलाश में ख़ामोशी से लुढ़क पड़ा था और वहाँ खेत के परे दुनिया पर नज़र डालती भैंस किसी काली, बेडौल आकृति-सी दिखाई दे रही थी।

भैंस अपने सफ़र पर सम व झूमती चाल में तंरगायित घाटी के पार चली जा रही थी–कभी किसी खड्ड में उतरती, कभी किसी टेकरी पर चढ़ती।

आँखों पर टोपी डाले हलवाहा नाशपाती के पेड़ तले ऊँघ रहा था। सोते की ओर जाते बैल की आवाज़ धीमे से उसके कानों में पड़ी। अब उसने थूथने पानी में डुबोये और अब धीरे-धीरे खेत की ओर लौट पड़ा था। अब उन्हें फिर से हल में जोतने का समय हो गया था; यह सब सोचने के साथ-साथ वह पुष्ट उरोजों व चिक्कण दृढ़ पेशीपिण्डों वाली नग्न औरत का सपना भी देख रहा था; उस औरत की तप्त हँसी उसमें दाह पैदा कर रही थी और वह मुस्कराते हुए उससे कह रहा था, "तुम क्या कर रही हो।" झुककर हंकवाहे ने मुट्ठी भर मिट्टी उठायी तो पानी में काने बैल की परछाईं हिलती दिखाई दे गयी। हलवाहे को हवा में एक नयी ताजगी की अनुभूति हुई : शाम की शीतलता का रूपवरण कर लेने कोई चीज़ अपने पंख फैलाये जा रही थी। अपने पीछे किसी की दृष्टि का अहसास हुआ। फिर "यह क्या है" कहकर वह बैठ गया और घबड़ाहट से इधर-उधर देखने लगा: उके सामने वही पहले जैसा खेत था, पहले जैसा ही सूरज चमक रहा था। वह क़रीब आते बैलों की पदचाप सुन रहा था। बूट डालकर वह उठ खड़ा हुआ, फिर उसने आराम से जँभाई ली और हँकवाहे को कोसने के लिए अपना मुँह खोला हालाँकि यह हँकवाहे की ग़लती नहीं थी कि नंगी औरत अचानक ही ग़ायब हो गयी थी। उसके पीछे एक भैंस खड़ी थी।

"तू कहाँ से आ टपकी? क्या तुझे अब तक हम लोगों ने कसाई घर नहीं भेजा?"

भैंस रँभाई, मुड़ी और खेत में एक हलरेखा के साथ-साथ चल पड़ी।

"नहीं," हलवाहा बोला, "तू हमारी भैंसों में से नहीं। तुझे साँड़ की तलाश है। तो तेरी क़िस्मत ही खोटी है। भैंसे को तो कसाई घर भेज दिया गया।"

जब काना भैंसा पानी के गबड़े से बाहर आया, उसे अपनी बिरादरी की गन्ध मिली। उसी पल उसे किसी भैंस की करुण पुकार सुनाई दी। उसी वसन्त में काने भैंसे के जोड़ीदार को कसाईघर भेजकर अब उसे एक फ़सादी बैल के साथ जोत दिया गया था। तेज़ी से सिर मोड़ा तो उसे भैंस दिखाई दे गयी। अपनी सगोत्रजा के प्रति उसमें एक चाहत-सी उत्पन्न हो आयी। रँभाते हुए वह भैंस की ओर बढ़ गया। एक-दूसरे के क़रीब पहुँचकर उन्होंने गले मिलाये। उसने महसूस कर लिया, यह उसका गुमशुदा जोड़ीदार नहीं, उससे गले मिलते समय वह परमात्मा से अपने गुमशुदा जोड़ीदार को वापस लौटा लाने की प्रार्थना करना चाहता था लेकिन गड़बड़ाकर मन की बात भूल गया क्योंकि उसी पल एक लपट-सी उठी और राख में मिल गयी--वह लपट जानी-पहचानी लेकिन उसके साथ ही अनजानी-सी थी--उसके नरत्व की सहज प्रकृति में विचित्र-सी हलचल हुई। फिर भी यह हलचल उसकी इच्छा की अभिव्यक्ति नहीं बलिक उसके प्रचण्ड बधियेपन की परत पर घबड़ाहट भरी कँपकँपाहट-सी थी।

भैंस की पीठ पर सिर टिकाये ही टिकाये भैंसा ज़ोरदार आवाज़ में रँभा उठा। दूसरे बैल उसकी आँखों के सामने से गुज़र गये। उन्हें जोतने को ले जाया जा रहा भा।

भैंस इन्तज़ार करती रही। लेकिन भैंसा बस रँभाकर रह गया। मादा ने उसे अपने पहलुओं से सहलाया, उसकी गर्दन से अपनी गर्दन चिपका दी, अपनी मधुर गन्ध से उसका सिर, उसके नथुनों व पेशीपिण्ड को आच्छादित करते चक्कर लगाया लेकिन नर हलरेखा के बीच में किसी मूर्त्ति की तरह बस खड़ा रहा--काना, थका-हारा, भावहीन।

भैंस ने हलवाहे से एक दिन व एक रात के लिए नर सौंप देने की माँग की और एवज़ में वह बड़े सिर वाला एक बछड़ा उन्हें लौटा देगी लेकिन उसकी बात सुने बिना हलवाहे भैंसे को कान से पकड़कर जुए की ओर ले जा रहे थे और नपुंसक ने बिना किसी अवज्ञा के अपना सिर झुका लिया था।

भैंस हल के साथ-साथ खेत के आख़िरी सिरे तक गयी फिर बैलों के क़दम से क़दम मिलाती दूसरे सिरे तक लौट आयी। वहाँ पहुँचकर एक किनारे खड़ी हो उसने भैंसे को अपने साथ चलने का इशारा किया लेकिन वह पूँछ हिलाते हुए शांतचित्त व भावहीन खेत जोतने में लगा रहा। भैंस

ने हल्के से उसे ढूसा लगाया। जुए के तले से काने भैंसे ने अपनी आँख नचाते हुए उसे देखा। वह दयनीय व निरीह प्रतीत हो रहा था, उसकी गर्दन पर झुर्रियाँ पड़ी थीं। भैंस एक बार फिर हल के साथ-साथ गयी लेकिन वह काना बस मामूली बैल भर था, बोझ ढोनेवाला मामूली जानवर। एक जगह रुककर अनिश्चिततापूर्वक उसने पैरों का भार बदला। हल खेत में चलता रहा।

एक राह पकड़ वह क़रीब की झाड़ियों तक पहुँच पीछे मुड़-मुड़कर देखने लगी। धीमे-धीमे और सिलसिलेवार ढंग से बैलों की जोड़ी काली मिट्टी की पिण्डित परतों को जोत रही थी। वह झाड़ियों को रौंदती आगे बढ़ गयी। आगे ढलान थी। पल भर के लिए सोते की ओर जानेवाली राह उसकी आँखों से ओझल हो गयी। राह उसे फिर मिल गयी लेकिन यह पददलित, पुरानी राह थी जो चट्टानों में गुम हो जाती थी। ढलान के अन्त में खड़ी चट्टान थी, राह दरार से गुज़रकर एक महाखड्ड में जाती थी और सोते के पास समाप्त हो जाती थी। आगे एक नदी बहती थी। नदी में बस ट्राउट मछलियाँ ही रहती थीं। वहाँ नरकुल उगे थे, पोदीने के दो झुरमुट थे, मरकत-सी हरित बालुका थी और अन्दर पानी में दो-एक रविरश्मियाँ थीं, ऊपर मँडराती चार मक्खियाँ थीं और माँ मछली, बाप मछली व दर्जन भर उनके बच्चे थे। लेकिन... लेकिन...

भैंस को सोता नहीं मिला। उसका अस्तित्व ही कहीं नहीं था। भैंस को उसकी उन्मत्तकारी भीनी-भीनी गन्ध व मन्द-मन्द मर्म ध्वनि सुनाई दे रही थी लेकिन स्वयं सोता कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। अदृश्य सोते की सुरभियों के बीच वह कभी इधर, कभी उधर जाती-आती रही–हर बार उसे महसूस होता कि सोता क़रीब में है और फिर ग़ायब हो जाता। दरअसल उसके नथुनों से बचता सोता शून्य में विलीन हो जाता। पहले धरती गीली थी। फिर वह ठोस हो गयी। भैंस के खुरों के नीचे कोई चीज़ ठनक उठी। यह ढलवाँ लोहा था। सोता उसके नीचे से बहता था। पानी तक पहुँचने के लिए भैंस घुटनों को मोड़ नीचे झुक आयी लेकिन लोहे ने उसका सिर धकियाकर परे कर दिया। वह उठ खड़ी हुई, उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाने के बाद फिर घुटनों के बल झुकी लेकिन दुबारा लोहे ने उसके थूथने को परे हटा दिया। लोहा दुर्धर्ष व निष्प्राण था। वह उठ खड़ी हुई और लोहे से अपना सिर टिकाकर सींगों से उसे धकेलने की कोशिश करने

लगी। लोहा न तो अपनी जगह से हिला, न उखड़ा। वह हज़ारों साल तक उसी स्थिति में बना रह सकता था। लोहे के किनारे से ही भैंस ने पानी की गन्ध का रस लिया। वह क्रोधोन्मत्त हो उठी क्योंकि गन्ध तो गन्ध ही थी। दुबारा लोहे से सींग टिकाकर बेसब्री से उसने उसे जकड़ लेने की कोशिश की लेकिन लोहा चिकना व फिसलन भरा था। उसने लोहे पर ज़ोरदार टक्कर लगायी और आघात से वह ख़ुद घुटनों के बल गिर पड़ी, उसका सिर चकरा गया था। उसने फिर मुड़कर देखा। नहीं, वहाँ पानी था ही नहीं लेकिन दरअसल पानी वहाँ था। भैंस लोहे से सींग घुसेड़ डालने की कोशिश करती प्रतीत हुई लेकिन वह सन्तुलन खोकर खुरदरे कंक्रीट पर गिर पड़ी, उसके सींग अचानक ही फिसल गये थे।

और अब एक अकेली, थकी-हारी भैंस शाम से कुछ पहले किसी काली आकृति-सी वक्र पहाड़ी उपत्यका में चली जा रही थी। फिर सभी झाड़ियों से बयारें बह चलीं और बीते दिन की सारी आवाज़ों से भरी तंग चोटी के पास जमा होने लगीं। लेकिन उनमें से एक भी उसके साँड़ का निमन्त्रण नहीं लायी थी। अन्धेरा होने को था। मैदानी हिस्सा एक उदासीन झुटपुटे में आवृत्त था। पहाड़ी चोटियों पर सूर्य की सर्द परछाइयाँ मोमबत्तियों की तरह दमककर बुझ गयीं। एक अज्ञात अनुभूति के वशीभूत भैंस रँभायी और मैदान के अन्धेरे में उतर पड़ी।

जल की कलकल ध्वनि निस्तब्धता में छुपी थी। नीचे की ओर आगे बढ़ती भैंस को महसूस हुआ कि पानी शायद गुनगुना था और प्रवाहहीन। थोड़ी ही देर बाद एक घोड़ा दिखाई दिया। उसने भय से कान फड़फड़ाये फिर देखा कि अरे, यह तो भैंस है। फिर घोड़ा रात के अन्धेरे में किसी चीज़ के लिए शोक मनाते हुए सिर झुकाये वहाँ निस्पन्द खड़ा रहा। पास में ही पानी था और जिसके कारण एक बाग़ की क़तारों के बीच गबड़े बन गये थे, कुछ गबड़े दमक रहे थे, कुछ नहीं। हवा में अपनी चिपचिपाहट भरते अदृश्य चमगादड़ गबड़ों के ऊपर उड़ रहे थे। भैंस टहनियों के एक बाड़े के पास जा पहुँची और एक सूखी डाल से टाँगें रगड़ने लगी।

"कौन है?"

भस रुक गयी।

"तू घोड़ा तो नहीं?"

बाड़े में एक छेद था। उस छेद में सिर घुसाकर भैंस ने बाग़ से गुज़रने की कोशिश की। सूखी, परस्पर बँधी डालियाँ कड़कड़ायीं व गिर पड़ीं।

"मैंने कहा: कौन है वहाँ?"

वहाँ सड़ते तरबूज़ की बू फैली थी। फिर गोली छूटने का एक धमाका हुआ।

रास्ता अचानक जीवन्त हो उठा। दो छोटे-छोटे मोड़ों के बाद यह एक खड़ी चट्टान के पास पहुँचकर एक सोते तक चला जाता था। रास्ता कुछेक परित्यक्त सायबानों व जंगल-झाड़ियों में ख़त्म होता था। जंगल में या परित्यक्त सायबानों में कोई उल्लू पहले बच्चे की तरह क्रन्दन करने के बाद पागलों की तरह हँस पड़ा था। बीच के पेड़ के पीछे सफ़ेद पोशाक में कोई औरत भैंस की प्रतीक्षा कर रही थी। कहीं कोई भूला-भटका बच्चा रो उठा और पारदर्शी आकृति अचानक लुप्त हो गयी। उसकी जगह किसी सड़ते ठूँठ ने ले ली। फिर वह ठूँठ दुबारा औरत की आकृति में बदल गया और भैंस उसकी दृष्टि अवरुद्ध करती जुगनुओं से भरी एक खुली जगह में जा पहुँची।

उभरी पसलियों के नीचे ढीले-ढाले, खाली चूचुकों, लम्बे शरीर, चौड़े सीने व चपटी-सुखट्टी खोपड़ी वाली एक मादा भेड़िया निःशब्द झाड़ियों से छलाँग लगा दरार की ओर दौड़ती एक चट्टान से जा चिपकी। धरती के हल्के कम्पनों से उसे किसी की पदचाप सुनाई दे रही थी। क़दम धीमे-धीमे पड़ रहे थे जैसे आगन्तुक किसी सोच में हो। फिर पदचापें एकदम ही थम गयीं। आँखें बन्द कर मादा भेड़िया ने अपनी साँस भी रोक ली।

क़दमों की आहट फिर से आने लगी थी लेकिन चौकस। भैंस दरार की ओर, कमीनगाह की ओर बढ़ती रही। फिर वह रुक गयी। दरार दरार थी, मगर रास्ते पर कोई था। वह एक क़दम आगे बढ़ी। उसे किसी की उपस्थिति की भनक साफ़-साफ़ मिली थी। रुककर उसने कान खड़े कर लिये। हाँ, ज़रूर वहाँ पर कोई था और दरार से भेड़िये की दुर्गन्ध आ रही थी। घृणा के साथ भैंस फुनफुनायी। कंकड़ों को बिखेरती, घुटनों को रगड़ती भैंस उभार पर जा पहुँची और जम-सी गयी। फिसलती हुई उसकी दृष्टि चट्टान पर, भेड़िये पर जा टिकी। भेड़िये को घूरने के बाद उसकी दृष्टि उसकी खोपड़ी पर बोझिल हो टिक गयी। मादा भेड़िये

के रोंगटे खड़े हो गये, धीमे से उठ खड़ी होने के बाद अपने स्प्रिंगदार चारों पैरों पर झूमते हुए उसने दाँत बाहर निकाल लिये।

भेड़िये को सींग घोंप देने की तत्परता से भैंस आगे बढ़ी। भैंस सहमकर लौट जायेगी, इस आशा से मादा भेड़िया इन्तजार करती रही लेकिन भैंस आगे ही आगे बढ़ती आ रही थी और भेड़िया सन्तुलन के लिए पैरों को फैलाये थोड़ा पीछे हट गयी। सींग घुसेड़ देने के लिए भैंस आगे बढ़ी और मादा भेड़िया दुबारा पीछे खिसक गयी। चट्टान के पास थूथने को रगड़कर भैंस ने भेड़िये की बू ली। उसके खुरों से टकराकर कंकड़ जमीन पर बिखर रहे थे और पूँछ को टाँगों के बीच दबाये मादा भेड़िया पीछे की ओर खिसकती जा रही थी। भैंस की गर्दन बड़ी मांसल थी, गला भी मांसल था, थन भी भरे थे... सिर ढूसकर भैंस ने उसे जता दिया कि पीछे ही पीछे खिसकते जाने में उसका भला था और मादा भेड़िया ने उसकी आज्ञा का पालन किया। सिर हिलाकर भैंस फुनफुनायी और वह आवाज किसी बलात धक्के से कम न थी, मादा भेड़िया और पीछे खिसक गयी। भैंस का क्रोध सातवें आसमान पर था, उसके गले में थरथराहट हो रही थी और मादा भेड़िया ने पीठ दिखा देने में ही अपना कल्याण समझा... खोह में चार चार शावक उसकी राह देख रहे थे, वे उसके चूचुकों से ख़ून निकाले ले रहे थे; बाप भेड़ की तलाश में गया था और लौटा था बुरी तरह ज़ख्मी होकर। थोड़ी देर तक खोह के आस-पास उदास पड़े रहने के बाद वह मर गया था।

भैंस सुदूर में विलीन होती जा रही थी। उसके पिछले पैरों के बीच मुलायम, गर्म थन था... बस उसका आधा ही मिल जाता... बस थोड़ा सा ही... बस थन का... एक ही कौर। कितना मुलायम था! मादा भेड़िया उसका स्वाद याद करने लगी तो आँखों के आगे सारी दुनिया छिटकती प्रतीत हुई।

कौन जाने, धरती कितनी देर तक अन्धेरी व ख़ामोश रही। फिर रोशनियाँ व आवाजें भर उठीं। खोह में चार भूखे शावक थे। बड़े सिरवाले ने दो चूचुक चूस डाले थे और यहाँ भैंस ने उसे लथाड़ दिया था। ज़िन्दगी मीठी लेकिन कड़वी थी। उसे अपनी हड्डियों व पेशियों से दूध तैयार करना पड़ेगा क्योंकि पेट में पित्त के अलावा कुछ भी न था। भैंस की पीठ पर छलाँग लगाकर, उसकी गर्दन में दाँत चुभोकर वह पेट भर खा लेती।

खैर, कोई बात नहीं! जल्दी ही अच्छे मददगार तैयार हो जायेंगे। बस बड़ा सिरवाला शावक एक साल का हो जाये...

"किसे ढूँढ़ निकाला है तुमने?" गड़ेरिये ने कुत्ते को आवाज़ दी।

जंगल से रास्ता तय करने के बाद भैंस खुले स्थान पर आ पहुँची थी। वह राहत से रँभा उठी। गायों ने उसकी आवाज़ सुनकर सिर उठाया लेकिन उसे पहचाना नहीं। लेकिन साँड़ का आचरण भिन्न था। भैंस का सामना करने वह तेज़ी से पलट आया, उसकी क्रुद्ध आँखें भैंस को मार डालने को तत्पर थीं। भैंस ने ढोर की ओर देखा। क्या इतनी सारी गायों में एक भी भैंसा न था?

"तू कहाँ से आ गयी? अँ? साँड़ तलाश रही है? क्यों? तो यहाँ एक भी भैंसा नहीं," गड़ेरिया बोला। "अरे, तू त्समाकुत की दादी मार्गो की भैंस है न! अइ-अइ-अइ! जंगलों व पहाड़ों को पार करके तू यहाँ तक कैसे आ पहुँची? तुझे तो बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ी होंगी... अइ-अइ-अइ! तो दादी मार्गो अभी तक ज़िन्दा है? लेकिन उसका बेटा बेचारा लड़ाई से ज़िन्दा नहीं लौटा। मुझे उससे जाकर कहना था कि उसके लड़के को बाल्तिक सागर में दफ़न किया गया लेकिन मुझे उसे ऐसी ख़बर सुनाने की कभी हिम्मत ही नहीं हो पायी..."

रास्ते में चींटियों की बाँबियों को कुचलता साँड़ धीरे-धीरे चला आ रहा था जबकि भैंस गायों के बीच भैंसा तलाश रही थी, उसे इसका तनिक भी अहसास नहीं था कि साँड़ लड़ने को उतारू था। गर्दन झुकाये तेज़ क़दमों से वह साँड़ की ओर बढ़ चली लेकिन तब तक साँड़ ने पीठ फेर ली थी और गड़ेरिये ने उसे खदेड़कर ढोर में वापस भेज दिया था।

"अरे, वह औरत है, मूर्ख। औरत से कोई नहीं लड़ता-भिड़ता है," गड़ेरिया बोला।

"और तू, तुझे देखकर लगता है, तुझे लड़कर मजा मिलेगा, हालाँकि तू औरत है। तू बड़ी सुन्दर है। मुलायम, चिकनी और एकदम भरी-भरी... दस साल से मुझे भैंस के दही का स्वाद लेने को नहीं मिला... तेरे थन में किसने काट खाया है? कुत्ते ने? या भेड़िये ने? चुपचाप खड़ी रहो... आह, बदमाश ने दाँत गहरे चुभो दिये हैं।"

गड़ेरिये के पास से भागकर वह ढोर की ओर बढ़ गयी क्योंकि उनके बीच कोई भैंसा भी जरूर ही होना चाहिए था। रुक-रुककर हर गाय को

सूँघती हुई वह ढोर के कभी ग्रन्दर जा पहुँचती, कभी बाहर निकल ग्राती लेकिन वहाँ सब की सब गायें ही थीं जो घास चबाकर उसे दूध में बदलती जातीं। उन से दूध की बू ग्रा रही थी। गायें पूर्णतया तुष्ट थीं: घास स्वादिष्ट थी, पास में ही ताज़ा पानी बहता था, जगह काफ़ी बड़ी थी ग्रौर वहाँ उनके पार्श्व में ही उनका मुलायम व चिकना साँड़ शान्तिपूर्वक चर रहा था। उनकी सपाट पीठ के पार भैंस ने दूर में दृष्टि डाली, उनकी पीठें मिलकर एक हो गयी थीं। भैंस शोकपूर्ण ढंग से रँभायी। उसकी रँभाहट में दूसरों की निश्चिन्तता भरी प्रसन्नता के प्रति किसी तरह की ईर्ष्या न थी लेकिन उसकी तत्क्षण इच्छा कहीं ग्रौर चले जाने की, वहाँ से भाग जाने की थी।

एक बार भैंसों के ढोर धूपमय मैदानों से गुज़रकर गर्म, सुदूर प्रतीप जल तक गये थे। सींगों की जगह सिर में उभार लिये बड़े-बड़े माथे वाली पतली गरदनवाली भैंसों के बछेड़े डगमगाते क़दमों से उनके साथ चल रहे थे; जवान बछिया मातृत्व को ललक रही थी; बार बार रुककर साँड़ पीछे की ग्रोर मुड़कर देख लेते कि कहीं उनकी बिरादरी का कोई पीछे तो नहीं छूट गया। ढोर धूप भरे मैदानों के परे चलते ही चले गये थे। वे गये कहाँ थे?

"तुझे किस रास्ते पर डाल दूँ जो तू ख़ुश हो जा?" गड़ेरिये ने कहा ग्रौर उसकी पिण्डली ग्रस्थि पर डण्डे से चटाख से मार दिया।

वह केचुत जाना चाहती थी लेकिन ग्रब केचुत को मज़दूरों की बस्ती बना दिया गया था जहाँ लकड़ियाँ लाकर कुर्सियां बनायी जाती थीं। कुर्सियों को ईरान भेजा जाता था।

भैंस ने पलटकर देखा। गड़ेरिया उसकी ग्रोर हाथ हिला रहा था मानो कह रहा हो: "बढ़ती जाग्रो। बढ़ती जाग्रो ग्रब!" वह नीचे झुका मानो कोई पत्थर उठाना चाहता हो ग्रौर भैंस बेढंगी चाल से दफ़ा हो गयी।

एक ग्रार्द्र, फफूँदयुक्त चैपल का ग्रन्धकारमय दरवाज़ा जंगल के किनारे हॉर्नबीम की डालों के पीछे छुपा दिखाई दिया। चैपेल के पास एक शिलापट्ट का टुकड़ा हिला, थमा ग्रौर फिर हिला। यह किसी बूढ़ी ग्रौरत की पीठ थी। वह प्रार्थना कर रही थी, हथेलियों की ग्राड़ में उसने एक जलती मोमबत्ती ले रखी थी। बूढ़ी ने पलटकर सीने पर सलीब बनाया ग्रौर जब वह प्रार्थना ग्राख़िर तक बुदबुदा चुकी तभी उसे मालूम हुग्रा कि उस की

आँखों के सामने मौत नहीं, एक भैंस खड़ी थी। भला हो भगवान का कि यह कोई सपना नहीं था। बूढ़ी ने राहत की साँस ली। अगर सपने में भैंस दिखाई दे तो इसका मतलब था गम्भीर बीमारी या मौत। भैंस की ओर एकटक देखते हुए, उसने हाथ से अपनी लकुटिया तलाशी। फिर उसका सहारा ले, परमात्मा की दया से सड़क पर आ गयी।

दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। फिर भैंस भी चल पड़ी और वृद्धा को अपने दिल की धड़कन रुकती-सी महसूस हुई। वह तो उसकी बहन मार्गो की भैंस थी। कई साल से वृद्धा अपने बेटे स्तेपान को बहन मार्गो से मुलाक़ात के लिए पतझड़ में ले चलने को कहती आ रही थी। वह वहाँ वसंत तक के लिए रह जाती और मार्गो तथा उसके पोते के साथ एचमियादि्ज़न की ओर रवाना हो जाती। वहाँ आर्क बिशप का हाथ चूमकर वे कहती, "परमात्मा, हम तुम्हारे जीवनोपहार से सन्तुष्ट हैं।"

"तू कहाँ जा रही है? मार्गो ने तुझे किसी के हाथ बेच तो नहीं दिया? या तू रास्ता भटक गयी है? जब मैं लड़की थी, अपने गाँव से यहाँ आने के लिए पहाड़ों को पार करने में मुझे तीन दिन तीन रात का समय लगाना पड़ा था। रास्ते भर सारंगी बजती रही थी क्योंकि मेरा ब्याह हुआ था। मेरी बहन रो रही थी क्योंकि मुझे खो देने का दुख उसे सता रहा था, भाई त्योरी चढ़ाये घोड़े पर कोड़े बरसाये जा रहा था। मेरा प्यारा भाई, मेरी प्यारी तेरह साल की बहन, मेरे सहृदय पिता..."

लेकिन अब तक भैंस दूर जा चुकी थी।

"अरे! अरे! वह रही!"

वृद्धा इस उम्मीद में चिल्लायी कि कोई उसकी आवाज़ सुनकर भैंस को रोकेगा। लेकिन फ़सल कटाई के बाद मुरझाये फूलों से बदरंग खेत पूरी तरह सुनसान पड़े थे। ग़ायब होती भैंस की ओर निहारती रहने के कारण वृद्धा की आंखें दुखने लगी थीं। वृद्धा किसी ऐसे आदमी की तलाश में गांव लौट आयी जो फ़ोन करना जानता हो। वह केचुत, येरेवान, गुगार्क और वहाँ से त्समाकुत फ़ोन करके लाइन पर उसकी बहन मार्गारिता को बुला देगा। वह कहेगा, "हलो, तुम्हारी भैंस सातिक दज़ोरागियुख के पास दिखाई दी थी और भगवान ही जाने, वह कहाँ जा रही थी। तुम्हारी बहन को भैंस तो दिखाई दी लेकिन वह उसे रोक नहीं सकी। तुमने सातिक को बेच दिया है या भटककर पता नहीं वह कहाँ जा रही थी?"

अचानक भैंस के नथुनों तले से हवा फिसलकर पहाड़ी की ढलान के नीचे की ओर चली गयी। भैंस रुक गयी। फूल, मधुमक्खियाँ, पत्ते, घास—सब मिलकर एक नयी क़िस्म की हवा पैदा कर रहे थे। वह अपनी राह पर आगे बढ़ गयी।

फिर समझ में न आनेवाली किसी चीज़ ने उसका रास्ता रोक लिया, पहले वह चीज़ एकरस, लयबद्ध शोर के रूप में थी फिर वह ठनठनाती, खनखनाती, गर्म, भापदार व कार्बाइड की दमघोंट गन्ध में बदल गयी। उसने वृक्षहीन, मृत ढलानों से लेकर वृक्षों से भरे नीले पहाड़ों तक की सभी गन्धों व बयारों को सोख लिया था, पत्तों के बीच के सभी—रिक्त स्थानों, पेड़ के सभी कोटरों व पुष्प पुंजों को छा लिया था; उन्हें निचोड़ कर, श्वेत तप्त रूप देकर कार्बाइड की झुलसाती लपट बनाकर भैंस पर उसका झोंका डाल दिया था। इसने लोहे से लोहे को झाल दिया, अस्फाल्त से अस्फाल्त को ढक दिया, मिट्टी को ढलवाँ लोहे में बदल दिया और एक बार फिर से वृक्षहीन, मृत ढलानों से लेकर वृक्षों से भरपूर नीले पहाड़ों तक की सभी गन्धों व बयारों को सोख लिया। यहाँ सब कुछ कंक्रीट के तले गड़ा था: प्राचीन हरी-भरी घाटी, देवदार का अकेला पेड़, नरकुल, चार के चार अहिपुष्प, ख़ुशबूदार जंगली गुलाब, जंगली मधुमक्खियों का रोयेंदार परिवार, जौ का सफ़ेद खेत, भैंसा, गड़ेरिये का भूरा कुत्ता और भैंस का बछेड़ा और अन्य भैंसों की पदचापें—सब के सब यहाँ ज़मीन के तले थे। यह प्राकृतिक आपदा शायद इसलिए आयी थी क्योंकि साँड़ को ज़मीन तले डाल दिया गया था? पुराने ज़माने में लोग कहा करते थे: अगर लाल गाय ज़मीन तले रँभायेगी, ज़रूर भूकम्प होगा।

सन्देहों से ग्रस्त, प्रतीक्षारत भैंस एक विशाल चट्टानी टुकड़े पर खड़ी थी...

जवानी के दिनों में भैंस-पालन का काम करनेवाले दादा तिग्रान अपनी छठी मंज़िल की बालकनी में बैठे थे। सिर झुकाये वह माला जप रहे थे और मौत के मधुर बुलावे की प्रतीक्षा में नगर की दमघोंट हवा और परमात्मा के बारे में सोच रहे थे।

"वह क्या है?... भैंस? शायद नहीं?... हर चीज़ का अपना अन्त होता है... फिर लेवान घोड़ा दौड़ाता आया... भैंस है? शायद नहीं?.. भलाई बुराई परमात्मा..." वह बड़बड़ाये।

भैंस राह छोड़ शहर की ओर चल पड़ी। सूरज क्षितिज में डूबने को था लेकिन पठार में शहर का कोई अन्त ही न था। नारंग सूरज की ओर सिर उठाकर भैंस दुखपूर्वक रँभायी मानो सूरज से कहना चाहती थी, इस बेगानी दुनिया में अपनी बच्ची को किसके भरोसे छोड़े जा रहे हो। फिर वह अकेली कगार पर खड़ी रही। दूर खड्ड में रात उतर रही थी। अस्त-व्यस्तकारी शोरों की दीवार ढहती, विलीन होती जा रही थी। खड्ड में असंख्य रोशनियाँ जगमगा उठीं और शहर किसी भव्य, दमकती छत से आच्छादित प्रतीत होता था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे दूर में अस्पष्ट दिखते पहाड़ों तक इस छत से जाया जा सकता था। भैंस खड़ी चट्टान के पास पहुँचकर पीछे खिसक गयी। नगर के आख़िरी छोरों को हासिल करने की कोशिश में वह खड्ड के किनारे-किनारे कठिनाई से चल रही थी—चलते-चलते वह ढलान के क़रीब जा पहुँचती और भयभीत हो फिर हट जाती। अचानक कोई जानी-पहचानी, आरामदेह चीज़ उसे छू गयी। शायद थन में जमा हो गये दूध से मुक्ति पाने की यह उसकी इच्छा थी; शायद कुत्ता बसर दौड़ता उसका स्वागत करने चला आया हो या तिरते कुहरे में वही साँड़ डकारा था जिसकी उसे तलाश थी। वह अनिश्चय की स्थिति में थी। घर को जानेवाली राह उसके दिमाग़ में गड़बड़ा गयी थी, मालकिन के रूमाल की दुर्गन्ध वह भूल गयी थी, साँड़ वास्तविक साँड़ न था—हालाँकि वह डकारा ज़रूर था। भैंस की आँखों में हल्के आँसू आ गये।

शहर सोया था। सुबह के समय ठिठुरन हो आयी। वह शहर के बहिर्वर्ती हिस्सों में पहुँच गयी थी। कोई अदृश्य कुत्ता भौंक रहा था। एक मुर्गा बाँग दे उठा। तन्द्रा ने भैंस को आ घेरा था और कल्पना में उसे अपने क़दमों की आहट दूर से आती महसूस हो रही थी। हवा में नम ऊन की बू व्याप्त थी लेकिन यह तो असम्भव बात थी क्योंकि पहाड़ काफ़ी पीछे छूट चुके थे। उसे भेड़ की मेमियाहट सुनाई दी। फिर उसकी मालकिन बोली, "बहुत ख़ूब। आज तो तेरे थन में काफ़ी सारा दूध है।" क़दम लड़खड़ाने से भैं।ा चौंक उठी। भेड़ों की तेज़ चाल से धरती काँप रही थी। उसे हँकवाहे की सीटी सुनाई दी। नहीं, उसे धोखा नहीं हुआ था। फिर पहली वाली भेड़ लगातार तीन बार मेमियायी। ढोर का सांड़-भेड़ा ढाल पर कुछ देर तक खड़ा रहा फिर नीचे भैंस की ओर दौड़ पड़ी। उसके पीछे-पीछे रेवड़ भी दौड़ पड़ा।

"उसे तो देखो!" हँकवाहे बोले।" नगर में भैंस आ पहुँची है।" हँकवाहे तथा उनके इर्द-गिर्द दौड़ती भेड़ें व कुत्ता—सब के सब भैंस के लिए परिचित थे। उनके रहते, उसे नगर का कोई भय नहीं सता सकता था।

सड़क की रोशनियाँ पीली पड़ गयीं। मकानों की क़तारों के बीच सिकुड़ी सड़क थकी भेड़ों की पदचापों से जीवन्त हो उठी थी। पहलेवाली भेड़ एक बार फिर कर्कश आवाज़ में मेमियायी और शून्य में उसकी गूँज खोह-सी प्रतीत हुई। सचमुच यह बड़ी विचित्र बात होती अगर इस ख़ाली स्थान में भेड़ों के बाड़े होते, गड़ेरियों की शिविराग्नि होती और भेड़ों पर चौकसी बरतते कुत्ते होते। निश्चय ही यह सड़क चरागाह को नहीं जा सकती थी। भैंस की नाक में ख़ून की लोनी गन्ध आयी। उसके शरीर के जोड़-जोड़ को जैसे लकवा मार गया और वह लँगड़ा उठी मानो किसी गर्म दलदल में फँसकर मौत की ओर बढ़ रही हो लेकिन कुछ कर पाने में असमर्थ। शायद यह कल्पना मात्र थी या शायद वास्तविक: अब ख़ामोश खड़े ढोर के ऊपर कोई चीज़ बड़े ज़ोरों से अपने पंख फड़फड़ा रही थी। भैंस समझ नहीं पा रही थी कि यह चीज़ कोई पक्षी थी या स्वयं मौत क्योंकि आश्चर्य के मारे उसका दिमाग़ काम नहीं कर पा रहा था।

एक-दूसरे को धकियाती और काँपती भेड़ें लोहे के फाटकों से चिपकी थीं। भेड़ों का रखवाला कुत्ता भी सहमकर पीछे हट गया। फिर कुत्ते ने भैंस के पैरों से चिपककर निकलनेवाली चीख़ गले में ही दबा ली। भेड़ें भौचक्की थीं, उनका भय कम हो रहा था और एक तन्द्रा ने उन्हें छा लिया था। फिर फाटक के ताले खोल दिये गये, फाटक झटके खाकर खुल गये। भैंस को बाड़े के सुदूर सिरे पर दो अपलक आँखें दिखाई दीं। वे उस पर केन्द्रित थीं। रेवड़ चुपचाप बाड़े के अन्दर चला गया। कोई अदृश्य शक्ति भैंस को लगातार फाटकों की ओर धकेल रही थी।

फिर कोई उसकी ओर चीखा। यह हँकवाहों में एक था। अपना डण्डा उसके कान के पीछे लगाकर उसने ज़ोरों से उसे धकिया दिया। भैंस को मजबूरन सिर पीछे कर लेना पड़ा। फिर उसकी बग़ल में तमाचा जड़ते हुए वह बोला,

"चलती बनो! तुम्हारा भी समय आयेगा। जाओ, अपना घर ढूँढ़ो..."

"चलती बनो!" हँकवाहे ने कहा और पीठ पर चपत जड़ दी।

लेकिन कोई अदृश्य शक्ति भैंस को फाटक की ओर खींच रही थी। वह लड़खड़ा गयी लेकिन हँकवाहे ने दो बार उस पर ज़ोरों से प्रहार किया और उसकी बग़लियों में दर्द की लहर रेंग गयी। उसने दर्द को झटक देने की कोशिश की लेकिन दर्द उसे फाटक से बाहर खदेड़ रहा था।

भैंस उसकी जानी-पहचानी है या नहीं, यह याद करते हुए एक खुजली ग्रस्त दोग़ले कुत्ते ने थोड़ी देर तक उसका अनुसरण किया। फिर एक जगह ठहरकर वह कुछ सोचने-विचारने लगा लेकिन उसकी क्षीण स्मृति में कोई भी काम की बात नहीं आ सकी। इसलिए भैंस को छोड़ वह कसाईघर की ओर दौड़ पड़ा।

उसी समय येर्वान्द खाचातुरियान नौजवानों के पर्यटक कैंप में स्नान कर रहा था। शरीर पर ठंडा पानी डालते हुए वह ख़ुद को पौरुष का साक्षात प्रतीक और किसी आर्मीनियाई की तरह जोशीला व किसी यूरोपवासी की तरह पढ़ा-लिखा सोच रहा था। अपने आप से वह कह रहा था कि रूसी भाषा अंग्रेज़ी की तरह ही एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है और दल में आयीं चालीस की चालीस पोलिश लड़कियाँ उस पर बुरी तरह फ़िदा थीं और एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्याभाव से पीड़ित थीं क्योंकि वह जैतूनी रंगवाला, बालदार व संयमित था।

"नाश्ते के लिए आपके पास पन्द्रह मिनट हैं," चालीसों लड़कियों को सम्बोधित करते हुए वह बोला, हालाँकि वह किसी की ओर भी देख नहीं रहा था।

"उस्ताद, मेरे ख़्याल से पन्द्रह मिनट में बस तैयार मिलेगी," बस ड्राइवार की ओर देखे बिना उसने कहा।

आर्मीनिया आधुनिक नगरीय नियोजन, प्राचीन स्मारकों तथा अच्छे मार्गों से परिपूर्ण है। आर्मीनियाई लोग परिश्रमी व आतिथ्यपरायण हैं। अगर प्रथम विश्व युद्ध के दौरान आधी आर्मीनियाई जाति हलाल नहीं हो गयी होती, आर्मीनियाई लोग सारी दुनिया को अपनी भोजन की मेज़ पर आमन्त्रित कर सकते थे। हमारे पहाड़ कठोर व आदिम हैं लेकिन हमारे यहाँ के लोग सौहार्द एवं मैत्रीपूर्ण हैं। इसी कारण आर्मीनिया की इस छोटी-सी धरती को विरोधाभासों की धरती कहा जाता है। एक ओर कठोर, निर्मम पहाड़ हैं, दूसरी ओर मैत्रीपूर्ण लोग हैं!

एक-दो बार भोंपू बजाकर बस रुक गयी। अरे! एक विचित्र जीव

सड़क पर धीमे-धीमे चला जा रहा था। वह बस को आगे जाने देने को तत्पर प्रतीत नहीं होता था। बस से उतरकर ड्राइवर ने उसे सड़क से खदेड़ दिया। फिर ड्राइवर सीट पर जा बैठा लेकिन भैंस दुबारा बीच सड़क पर चली आयी थी। खिड़की से सिर निकाल कर येर्वान्द खाचातुरियान ने गड़े-रिये को आवाज़ लगानी चाही लेकिन उन्हें कोई ढोर दिखाई नहीं दिया। वहाँ एकमात्र वही भैंस थी। ड्राइवर ने फिर भोंपू बजाया लेकिन भैंस ने किसी तरह की हड़बड़ी तक नहीं दिखायी। बस लगभग उससे जा टकरा-यी। "आर्मीनियाई बड़े ताव खानेवाले होते हैं!" लड़कियाँ बोल उठीं।

फिर येर्वान्द ने नीचे उतरकर भैंस को सड़क से खदेड़ दिया। उसे भैंस के थन पर घाव दिखाई दिया। भैंस का कान पकड़े, वह बस के क़रीब आने की प्रतीक्षा करता रहा। जब वह बस में चढ़ा, उसका अन्दाज़ साँड़ से लड़नेवाले एकदम किसी स्पैनी जैसा था। नंगे घुटनों, सुपुष्ट, उछलते उरोजों के बीच पूर्ण औपचारिकता के साथ वह मुलायम सीट पर तशरीफ़ रखते हुए बोलने लगा।

"मेरे ख़्याल से इस जीव को भैंस कहते हैं। काकेशिया में आज भी बहुत से पशु-पालक हैं। पोलेण्ड में आर्मीनियाइयों की पहली बस्तियाँ मध्य-युग के आरम्भ में क़ायम हुई थीं। आरम्भकाल की बस्तियों के स्वायत्त शासन से लेकर हर चीज़ के लिए हमारे पूर्वज पोलैण्डवासियों के ऋणी हैं। सुविदित है कि ग्रुनवाल्द की लड़ाई में एक पूरी की पूरी आर्मीनियाई रेजिमेन्ट ने भाग लिया था। सुप्रसिद्ध पोलिश फ़िल्म निर्माता येजी कवालेरोविच आर्मीनियाई हैं। हर पोलिश आर्मीनियाई येजी कवालेरोविच बन सकता है क्योंकि हर पोलिश औरत जन्मजात एवं प्रतिभाशाली अभिनेत्री होती है। ध्यान दीजिये! हमारी बस अगाव्नावान्क मोनैस्ट्री की चढ़ाई शुरू कर रही है। मोनैस्ट्री की स्थापना ८२५ में की गयी थी। हमें इसके वास्तु-कार का नाम नहीं मालूम है लेकिन हम उसे त्रदत कहेंगे..." और इस प्रकार सिर झुकाये, हरे धूप चश्मे व कॉलर के पास से ढीली टाई के साथ वह लड़कियों के दिलों व उनके कैमरों की फ़िल्मों पर अंकित हो गया था।

फिर रँभाने की आवाज़ पर धूप चश्मे से सुशोभित उनके चेहरे दूसरी ओर मुड़ गये। मोनैस्ट्री के गुम्बद की ओर इंगित करते उस के हाथ पर किसी का ध्यान नहीं रह गया था। अगाव्नावान्क के वास्तुशिल्प से भैंस का कोई सम्बध न था और लड़कियाँ मुस्करा उठीं। लेकिन येर्वान्द खाचा-

तुरियान किसी भी तरह पल भर के लिए श्रोताओं को अपना अस्तित्व भूलने नहीं देगा।

"आइये, अब थोड़ा विषयान्तरण करें," उसने कहा और अब लड़कियों का ध्यान भैंस व येर्वान्द, दोनों पर था। वह भैंस के पास जा पहुँचा। अपनी आँखें बन्द कर भैंस को सींग से पकड़ कैमरों से मुख़ातिब हुआ:

"यह तस्वीर आप को अफ़्रीका की याद दिलायेगी।"

भैंस की पीठ पर कोड़े का ज़बर्दस्त निशान पड़ा था, भेड़िया या कुत्ते ने उसके थन में दाँत चुभो दिये थे, निस्सन्देह, उसे पीड़ा हो रही होगी क्योंकि चूचुक कसे-कसे थे। भैंस को साथी की ज़रूरत थी। इस लिए वह ज़ोर-ज़ोर से रंभा रही थी! और अभी तक अपनी आँखें बन्द किये हुए येर्वान्द खाचातुरियान ने विकृत, मूर्खतापूर्ण मुस्कान बिखेर दी। फिर उसे या तो थपथपाकर या चपत लगाकर अपने आप बड़बड़ाया,

"तू कहाँ जा रही है? तेरे क्या हाल हैं, सातिक? मेरी दादी कैसी है? और मैं अब तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?"

ड्राइवर भोंपू बजाये जा रहा था। होंठ पर होंठ जमा कर, जेबों में हाथ घुसेड़ येर्वान्द खाचातुरियान बस की ओर बढ़ गया। आदमी जीवन से बहुत कुछ लेता है और उसे बहुत कुछ देना भी पड़ता है।

पिछली बार गर्भ धारण के चक्कर में भैंस को बहुत दुख उठाना पड़ा था क्योंकि अपने साँड़ से उसकी मुलाक़ात लौटते समय हुई थी। उसके साथ उसने थोड़ा समय गुज़ारा था लेकिन वह गर्भवती नहीं हो पायी थी। एक महीने बाद उसकी बेचैनी फिर बढ़ गयी थी और एकाकी देवदार के पास तंग घाटी की ओर वह अपने पुराने रास्ते पर चल पड़ी थी। वहाँ उसने दो दिन बिताये थे। उस साल अगस्त के आख़िर में उसके बछड़ा पैदा हुआ था। ठण्डी पतझड़ के कारण दो हफ़्ते बाद ही बछड़े को ठण्ड लग गयी। बुख़ार में कराहने, छटपटाने के बाद वह मर गया था।

धूप से झुलसी झाड़ी के पास दो बकरों की मिमियाहट और पैरों के पास किसी साँप के सरकने की आवाज़ से भैंस सहमकर परे हट गयी। किसी घोड़े की तरह छदाँन से बँधी एक गाय चरागाह के सिरे पर रँभायी। भला गाय को भी छदाँन से बाँधना चाहिए? गेहूँ की बालियाँ दो जगहों पर हिल रही थीं—ज़रूर दोनों मेमने खेत में जा घुसे होंगे।

पहरेदार कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। दूर में एक पहाड़ की ढलान

पर गड़ेरियों के सफ़ेद तम्बू दिखाई दे रहे थे। भैंस खेत के किनारे-किनारे चल पड़ी। और फिर किसी सुविधाजनक स्थान से खेत पर आँखें टिकाये पहरेदार को चौंकाती भैंस किसी परिचित आवाज़ के जवाब में खेत के बीच से दौड़ पड़ी। गेहूँ की बालियाँ उसके थन में चुभ-चुभ जातीं। उसे कहीं पास में ही साँड़ की गन्ध मिल गयी थी। ख़ुशियाँ क़दम चूमने ही वाली थीं कि अचानक खेत के बीच में एक अस्फाल्त सड़क आ गयी। कार की बग़ल की घास पर बैठा चँदिमल मोटा व भलामानस नपुंसक एरवर्द अयरापेतियान क़रीब में बैठी दो औरतों को मीठी-मीठी बातें सुना रहा था। लेकिन उसके शब्द धूल के बराबर थे क्योंकि शब्द तो शब्द ही होते हैं। रूमाल से गंजी खोपड़ी पोंछकर भैंस की ओर देखते हुए वह बोल उठा,

"तोरो! अरे, तू क्या शानदार जीव है!" लेकिन वह सच नहीं बोला था: भैंस बेडौल थी, भद्दी। फिर वह स्पेन में होनेवाली साँड़ व इनसान की मुठभेड़ों के बारे में बताने लगा, औरतें बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रही थीं। उसके बताने का ढंग बड़ा सुन्दर था लेकिन वह झूठ बोला था क्योंकि खेत पार करके जानेवाला जीव साँड़ नहीं, भैंस था जो गर्भधारण के चक्कर में थी। फिर वह औरतों के गोल-गोल घुटनों की रेशमी चिकनाहट की तारीफ़ के पुल बाँधने लगा लेकिन वह उन घुटनों के प्रति उदासीन था क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो वह इतनी सचाई से एक साथ उन चारों घुटनों की प्रशंसा नहीं करता। फिर उसने प्रसंगवश औरतों को बताया कि उनके देश में प्रकृति पूजा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता लेकिन वह ख़ुद प्रकृति का एक तत्पर उपासक था और जिस त्रासदी में आज उनका ग्रह ग्रस्त था, उससे निकलने का एकमात्र तरीक़ा यही था। लेकिन इसके बावजूद उसके शब्द खोखले थे क्योंकि जहाँ तक भैंस, बिजली की कड़क, घास-कटाई और फ़सल-कटाई से उसके प्रेम का सवाल था, यह आज उसके द्वारा खाये ख़ासिल की क्वालिटी पर निर्भर करता था। उसने औरतों को बताया, साँड़ के सींग खुजलाते रहते हैं और यह साँड़ भी लड़ने के लिए साँड़ तलाशने निकला था, इसके सींग भी खुजला रहे थे।

एक खड़ी चट्टान के पास दिन समाप्त हो गया। पहाड़ों पर लगे जिन तम्बुओं को भैंस ने गड़ेरियों के तम्बू मान लिया था, वे किसी भूगर्भ-खोजी दल के तम्बू थे। भूगर्भशास्त्री अपने बरमे छोड़कर चिल्ला पड़े,

"स्वागत है!"

जब वह उनसे आगे बढ़ गयी, उसे अपनी थकान का ख़्याल आया, उसके पैर जवाब देने को थे और जाने की सच में कोई जगह न थी। सिर फेरकर वह रँभायी और थोड़ी घास कुतरने के बाद उसने वहीं रुकने का फ़ैसला किया क्योंकि तम्बुओं के घेरे में हवा नहीं थी। अच्छी जगह की तलाश में कई बार चक्कर काटने के बाद वह एक जगह लेट गयी। कुछ पलों के बाद पैरों को शरीर के भारी बोझ से अलग कर उसने ज़मीन पर सिर टिका दिया। धीरे धीरे वह ऊँघने लगी। उसकी दोनों ओर बरमे खनखना रहे थे। उसने ख़ुद को हवा में तैरते महसूस किया और गहरी नीन्द में खो गयी।

सपने में वह अपने गत साल के बछड़े का ललाट चाट रही थी। बछड़ा क्षीण स्वर में कराहा। गड़ेरिये मिनास व दादी ने उसे बुद्धू बनाया था; उन्होंने गाय के बछड़े पर उसके बछड़े का ऊनी चमड़ा डालकर ऊपर से नमकीन पानी छिड़क दिया था। सपने में अपने बीमार बछड़े का बड़ा-सा सिर चाटते हुए वह सुबक रही थी। यह सौम्य दुख नीन्द जितना ही स्वास्थ्यप्रद था। फिर दूसरे बछड़े के ऊपर से ऊनी चमड़ा गिर पड़ा और गाय की बू देनेवाला दूसरा बछड़ा उसकी पिण्डली-पेशियों के बीच काँप रहा था। उसे ढूँसकर वह ज़ोरों से डकार उठी।

जागकर भैंस विवेकशून्य आँखों से चारों ओर देखने लगी। बरमे अभी भी खनखना रहे थे। उसने उठ खड़ी होने की सोची लेकिन थकान के मारे फिर पैरों को पेट तले दबाकर सिर कन्धे पर टिका दिया। उसका थन धीरे-धीरे आकुंचित हो रहा था, मालकिन किसी भी समय आकर दूध दोहना शुरू कर सकती थी लेकिन दूध निकलेगा ही नहीं। चूचुक उसने ढीले छोड़ दिये। दूध दोहनेवाली कोमल ढंग से लेकिन मज़बूती से चूचुकों को खींच रही थी लेकिन वे अभी भी सिकुड़े थे और दुख रहे थे।

जब उसकी नीन्द खुली, आधी रात बीत चुकी थी। अपने ठहराव की जगह को याद करने की कोशिश करते हुए उसने कान खड़े कर लिये। तम्बू में लोग सोये थे। धरती के एकदम किनारे एक कुत्ता भौंक रहा था। गड़ेरिये की शिविराग्नि प्रदीप्त थी और तारे ठण्डी, प्राणदायी रोशनी बिखेर रहे थे। उठ खड़ी हो, कमर सीधी कर वह रात में ही चरने लगी। पौ फटने के समय जब दो भूगर्भशास्त्री पेशाब करने निकले भैंस उन्हें दि-

खाई दी। सिर उठाकर वह रँभायी मानो कहना चाहती हो, कितने शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के वातावरण में हमने रात बितायी। वे हँसे और मज़ाक़ में बोले,

"अरी मर, कुवेशी!"

"कौन है?" किसी तम्बू से मोटी आवाज़ सुनाई दी।

"कुछ भी नहीं," एक ने जवाब दिया। "कलवाली भैंस हमें शुभ प्रभात कह रही है..."

"ज़रूर भटक गयी है..."

फिर एक आदमी ग़ुस्से से फट पड़ा तो दूसरे लोग ठहाके लगाकर हँस पड़े।

बाद में जब सब जाग गये, उनमें से एक भैंस से बोला,

"हमारी सेवा में दही पेश करने का इरादा है क्या? बहुत ख़ूब!"

उसे मंज़िल का कोई पता न था। निस्सन्देह, दुनिया बहुत बड़ी है और लगातार बढ़ती ही चली जाती है, भैंस को अब इसमें कोई आकर्षण नहीं रह गया था क्योंकि दुख ग़ायब हो रहा था, धरती पर उसका नामो-निशान मिट रहा था। बस, घास ही घास रह गयी। उसे कहीं पास में ही ढोर की मौजूदगी का अहसास हुआ लेकिन बेचैनी जाती रही थी। रास्ते में नमदे के तम्बुओं, कुत्तों, पनीर, दही व रबड़ के बूटों की गन्ध व्याप्त थी। इस लिए वह पहाड़ की दूसरी ओर गड़ेरियों के तम्बुओं और भैंसे की कल्पना नहीं कर सकती थी। उसे कुछ मिली तो बस सोते के पानी पर तैरती गुज़रे ढोर की ताज़ा गन्ध। चूँकि पानी बड़ा स्वादिष्ट था, पेट भर पीने के बाद वह ख़ुश हो भैंसे की तरह ज़ोरों से डकार उठी। भौंकते कुत्ते से डरे बिना पानी के लिए दो बाल्टियाँ लेकर आती कुरद जाति की छोटी लड़की को देखकर भी वह रास्ते से हटी नहीं। भौंकते कुत्तों के बीच वह बड़ी-सी, काली और मज़बूत भैंस वहाँ खड़ी थी, उसकी बोझिल निगाह ज़मीन में गड़ी थी। कुरद जाति का एक आदमी दिखाई दिया। कुत्तों पर चीख़ते हुए, उनकी ओर छड़ी दिखाते हुए वह भैंस के पास आ पहुँचा। उसने उसका कान बकोट लिया। उसकी माँ भी पीछे-पीछे आ गयी। अपने ढीले-ढाले स्तनों को बाँहों का सहारा दिये उसने हर तरफ़ से भैंस का जायज़ा लिया। फिर कूल्हों के बल बैठकर थन को छूकर दे-

खा, चूँचियाँ गिनीं—सब सही सलामत थीं। "एक, दो, तीन, चार," उसने गिना। फिर उठ खड़ी हो, दमक उठी।

"श्खो," भैंस के थूथने को प्रशंसा भरी नज़रों से देखते हुए वह बेटे से बोली, "तुझे जनने में तेरी माँ को बड़ी पीड़ा सहनी पड़ी थी। तू अपनी माँ के लिए एक भैंस क्यों नहीं ख़रीद देता, श्खो?"

भैंस का कान पकड़े वह आदमी तम्बू की ओर चल पड़ा।

"थोड़ा-सा नमक ले आओ," वह अपनी माँ से बोला। "नहीं, नहीं, वह बढ़ियावाला नमक। और एक पगहा भी ले आओ।"

"अपनी माँ के लिए कम से कम एक भैंस ख़रीद दे, श्खो, और तेरी माँ सौ साल तक ज़िन्दा रहेगी। तेरे बच्चों को पोसेगी, पालेगी, तेरी भेड़ों को दूहेगी और श्खो, तेरे लिए भैंस का दही तैयार करेगी।"

भैंस के पार्श्व को थपथपाने के बाद वह जाकर तम्बू के पास चहलक़दमी करने लगा। फिर लौटकर उसने भैंस का पुट्ठा थपथपाया, फिर कान बकोटा और अगले ही पल उसका कान छेदकर उसमें राख मल दी। अब उसके पास पचास भेड़ें थीं, एक भैंस थी, चार गायें थीं, तीन बकरियाँ थीं, एक घोड़ी थी, एक अश्वशावक था, दो कुत्ते थे—सब के बायें कान इसी प्रकार छेदे थे। भैंस को वह नार्गोज़ कहकर बुलायेगा। और कौन कहता था, उसने घोड़ी चुरायी थी? यह रहे उसकी रजिस्ट्री के काग़ज़। किसी को भी वह दिखा सकता था।

"इसे दूहो," उसने अपनी माँ से कहा।" थन भरा है। यह रहा तेरे लिए नमक," वह भैंस से बोला। "लो खाओ। कान में अब दर्द तो नहीं?"

सीने पर बाँहें रखे बुढ़िया वहाँ खड़ी थी और आँसू बहा रही थी। फिर आँसुओं के बीच मुस्कराते हुए वह बोली,

"अगर इसे तुमने छोड़ दिया, ज़रूर कोई भेड़िया खा डालेगा, श्खो। क्यों, ठीक है न? यह बहुत बुरी बात होगी, श्खो। क्यों, ठीक है न?"

आदमी भैंस का कान बकोट रहा था।

"इसमें क्या शक है," वह बोला, "भेड़िया मूर्ख होता है। वह यक़ीनन भैंस को मार डालेगा। हमारी भैंस ग्यारह साल की है।"

पानी की दोनों बाल्टियाँ लिये उसकी बेटी लौट आयी। जब लड़की

ने ख़ुशी से ताली बजायी, उसके हाथों की चाँदी की चूड़ियाँ बज उठीं। फिर भैंस के सामने वह रुककर बोली,

"कितनी अच्छी भैंस है मेरे पास ! लेकिन इसका बछड़ा कहाँ है?"

श्खो की माँ तांबे की एक बाल्टी धोकर ले आयी। चुपचाप भैंस के पेट के पास झुककर रोती हुई और साथ ही गुनगुनाती हुई, वह कोमल ढंग से दूध दूहने लगी: हूश-हूश-हूश। भैंस ने एक गहरी साँस ली: औरत से भेड़ की बू आ रही थी। फिर पिछली टाँगों को परे खिसकाकर उसने जान बूझकर चूचियाँ ढीली छोड़ दीं। पहाड़ी ढलान से नीचे की ओर फिसलती ठण्डी बयार बह रही थी लेकिन भेड़ व गड़ेरिये के शिविर की गन्ध ज्यों की त्यों बनी थी। धूप छायी थी लेकिन गर्मी न थी। ऊँचे आसमान में बादलों का एक छोटा-सा सफ़ेद टुकड़ा चुपचाप अपनी आवृत्तकारी पोशाकें उतार रहा था। बादल के नीचे अपने गीत की स्वचछ चहक से झूमता एक लवा पक्षी प्रमुदित हो रहा था: सूरज चमक रहा था, शीतलता छायी थी, यहाँ मैं हूँ, यह बादल है और भैंस दूहती एक बूढ़िया है। जीवन कितना अद्भुत है!

सहसा ही भैंस की चूचियाँ तन गयीं।

"क्या बात है?" बुढ़िया ने चिन्तापूर्वक कहा।

नीन्द से धुँधलाती आँखों से भैंस ने नीचे घाटी को धीरे-धीरे नीन्द से जागकर स्पन्दित होते देखा। आस-पास की हरेक चीज़ धुँधली हो रही थी लेकिन पाद-पर्वत में बसी घाटी रोशनी से अधिकाधिक उजागर होती जा रही थी। अचानक तपती घाटी में जैसे हवा से पैदा हो गये साँड़ों के एक दल से उसका साँड़ अलग होता दिखाई दिया—वह अधिकाधिक काला, अधिकाधिक विशाल होता जा रहा था। वह ज़ोरों से डकारा।

भैंस वहाँ खड़ी-खड़ी कब से उसके निमन्त्रण का जवाब दे रही थी। वह अन्धी-बहरी हो उठी थी। सिर ऊपर की ओर किये, वह उसकी तरफ़ दौड़ी। उसके खुर ज़मीन पर नहीं थे। लेकिन किसी चीज़ ने उसकी गर्दन ही तोड़कर रख दी, गर्दन बिल्कुल मुड़-सी गयी। यह चीज़ उसके गले की रस्सी थी जो एक खूँटी से बँधी थी। रस्सी खोलने के लिए भैंस आदमी की प्रतीक्षा करने लगी। मगर आदमी रस्सी खींचने लगा जिससे रस्सी छोटी होती चली गयी। भैंस ने कभी उसे इधर, कभी उधर से झटका दिया। गाँठ कसी थी, रस्सी से उसके सींग के सिरे आहत हो रहे थे। फिर

खूँटी और आदमी, दोनों ही भैंस द्वारा ज़मीन चटा दिये गये। ऊँची छलाँगें लगाती वह भाग रही थी। कुत्ता रोषपूर्वक दौड़-दौड़कर कभी उसके आगे, कभी उसके पीछे भौंके जा रहा था। रस्सी उसके खुरों की दरार में फँस गयी, फिर छूट गयी। खूँटी उसके पेट से टकरा रही थी, कुत्ता कहीं दूर में भौंकता रह गया था। रस्सी दुबारा खुर से फँस गयी और वह घुटनों के बल भहराकर गिर पड़ी, उठी—अपने ही ग़ुस्से से हैरान-परेशान। वह रुकी और न देखती आँखों को ऊपर उठाकर रँभायी। बिना हिले-डुले साँड़ खड़ा था। वह भी डकारा।

फिर हर क़दम पर रुकती, वह धीरे-धीरे घाटी में उतर गयी और उतना ही धीरे-धीरे उसके पास जा पहुँची। दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। उसके बाद ख़ुद उन्होंने कुछ भी नहीं किया। उसके बाद सारा काम खेतों व भैंसों के देवता ने कर दिया। उसने उनकी दूरी मिटा दी। उसने भैंस का गला साँड़ के गले के नीचे ला दिया, उनके ख़ून की धारा आपस में मिला दी, आहों, सुस्ती, बहरापन, अन्धापन के अभेद्य घेरे में डाल दिया। और जब वे एक हो गये, वहाँ कोई भैंस नहीं रह गयी क्योंकि अब वह कोई भैंस नहीं थी बल्कि वहाँ सिर्फ़ लाल-दग्ध गर्भाशय का अस्तित्व रह गया था। और जब उसका ख़ून ठण्डा व शान्त हुआ, वह साँड़ से परे हट गयी और अपने में सिमटी, अलग वजूदवाली एक काली-सी भैंस बन गयी जिसने गर्भधारण कर लिया था। पहाड़ों की आवाज़ें उसके कानों को सुनाई देने लगी थीं, अन्धेरा ग़ायब हो गया था, दिन का उजाला लौट आया था। पहाड़ों व भैंसों की आकृतियाँ थरथरायीं, फिर ठोस बन गयीं। दुनिया पुनर्जीवित हो उठी थी।

भैंस ने जी भर पानी पी लिया, सिर ऊपर उठाया और बीते दिनों के धुँधलके में उसे अपनी मालकिन दिखाई दी। वह जब लौटने को थी, रस्सी फिसलकर फिर उसके खुर में फँस गयी। अपनी आँख के कोने से उसने साँड़ की ओर देखा जो अब एक विचित्र-सा, हास्यास्पद जीव प्रतीत हो रहा था। रस्सी उसे फिर बाधा डालने लगी। वह रुक गयी। उसे अपने पीछे पदचाप सुनाई दी। यह साँड़ था। कितना मूर्ख था जो उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था क्योंकि वह उसके पहाड़ों का रहनेवाला नहीं था... रस्सी उसे ग़ुस्सा दिला रही थी। उससे छुटकारा पा न सकने के कारण हताश हो वह रुक गयी और तभी उसे अपनी पीठ पर कुछ भारी

सा महसूस हुआ। पीछे मुड़कर उसने बेगाने साँड़ को ढूँस दिया, वह बेगाना ही नहीं उसे मूर्ख भी लगा। रास्ते के बीच में खड़ा हो वह उसकी ओर उलझन भरी दृष्टि से देखे जा रहा था। खुर की पीड़ा आँख में आग बनकर उभर रही थी। रुककर उसने अपनी पीड़ाओं की थाह ली: गर्भाशय में धीरे-धीरे एक जीवित प्राणी रूप ग्रहण कर रहा था, आँख में पीड़ा थी, खुर के छेद में, पसली में, पाश्वों में, कान के कोनों में। इन सारी पीड़ाओं के बीच उसे साँड़ के क़दमों की आहट मिल रही थी। धमकी भरे अन्दाज़ में पलटकर उसने गर्दन टेढ़ी कर ली। उलझन में पड़ कर साँड़ रुक गया और मूर्खों की तरह इधर-उधर देखने के बाद घास चरने लगा।

भूगर्भशास्त्रियों ने उसका रास्ता रोक लिया। वे हँसते हुए उसकी ओर देखकर कुल्हाड़ियाँ व बाँहें हिलाने लगे। पता नहीं क्यों उन्होंने भैंस को घुटने टेकने पर मजबुर कर दिया। जब उसने हार स्वीकार कर ली, तभी उसे जाने दिया।

बड़ी सावधानी से क़दम रखते हुए वह चल पड़ी। वह नज़ाकत से चलती और रुक जाती। अब रस्सी के कारण उसके खुरों को तकलीफ़ नहीं हो रही थी। एक पल और रुकने के बाद, सींगों को झटककर रस्सी की याद से ख़ुद को मुक्त करते हुए वह लम्बे-लम्बे, विश्वासपूर्ण डग भरते चल पड़ी।

पाँचवें दिन जब झुटपुटा होने को था, जब दूध से बोझिल गायें अपने घरों को लौट रही थीं, वह गड़ेरिये के शिविर में पहुँची। खेत की जुताई से लौटे किसी बैल की तरह, खेतों से लौटे फ़सलकट की तरह, आधी रात को घर लौटे किसी मुसाफ़िर की तरह, गाँव की ग्रीष्मकालीन सन्ध्या की तरह वह शिविर के अन्दर जा पहुँची। चूँ-चरख चाल से वह पड़ोसी की गायों के पास से गुज़रते हुए, नमदे के एक तम्बू के पास रुककर रँभायी।

"सातिक!" मालकिन ने आवाज़ दी। "तू लौट आयी, प्यारी?"

एबिग अवाक्यान

अन्तिम रेखा

कुदाल ज़मीन में घोंप गेगम-ऐरिक ने इर्द-गिर्द नज़रें दौड़ायीं। चारों ओर कुहरा ही कुहरा था। वहीं सब्ज़ी की क्यारी के पास गीली मिट्टी के ढेर पर वह भहराकर बैठ गये और आँखों से अन्धेरा दूर करने के लिए उन्हें मलने लगे। अचानक मौत का फ़रिश्ता उनकी आँखों के सामने आ पहुँचा। वह बाग़ के खुले फाटक पर खड़ा दिखाई दे रहा था। उसने एक हाथ में बेंत की हरी डाल और दूसरे में दराँती पकड़ रखी थी। पाँवों के पास कुहरे लिपटे थे।

"चलो, गेगम..."

आवाज़ कुएँ के तल से आती प्रतीत हुई।

गेगम को महसूस हुआ, वह फरिश्ते को पहले भी देख चुका है। लेकिन कहाँ? बाइबिल में बनी किसी तस्वीर में? या सपने में? उसे कुछ याद नहीं आया। उसे ठण्डा पसीना छूटने लगा। पलटकर गेगम ने आवाज़ लगायी, "सतेनिक! वार्सेनिक! सिरुन!"

और सीढ़ियों से उतरकर बहुओं के आने तक बाग़ के खुले फाटक पर खड़ी आकृति से उसने किसी तरह पूछ ही लिया,

"क्या थोड़े समय बाद नहीं आ सकते थे?"

"नहीं," उत्तर मिला। "वहाँ तूती तुम्हारी राह देख रही है..."

औरतों की पदचापों से भयभीत हो आकृति शायद ग़ायब हो गयी थी। हाँ, वृक्षों पर व अन्यत्र व्याप्त कोहरा अभी तक था।

"मुझे सीढ़ियों से ऊपर ले जाने के लिए किसी से मदद माँगो। मेरी घड़ी आ गयी है। मैं दुनिया छोड़ रहा हूँ..."

औरतें सकते में आ गयीं। सिरुन बिलखने लगी। बड़ी बहू सतेनिक ने उसे डपट दिया,

"मूर्खा, तेरी जीभ उखाड़ लूँगी।"

पड़ोसियों को बुलाकर वे गेगम-ऐरिक को ऊपर ले गयीं।

अपने जीवनकाल में न जाने कितने देशों का सफ़र करनेवाला यह आदमी इस समय असहाय पीठ के बल पड़ा था। उसकी आँखें बन्द थीं...

एक निश्चित रेखा होती है जहाँ इनसान ज़रूर पहुँचता है और वहाँ पहुँचकर पीछे देखने के लिए रुकता है। क्या देखता है वह? अपने पीछे क्या छोड़ा है?

यह दुनिया कितनी अधूरी, कितनी दोषपूर्ण है! दूर-दूर के रास्तों की धूल झाड़कर आप किसी पेड़ की छाया तले आराम करने, अपने अवकाश का आनन्द लेने की सोचते हैं कि बाग़ का फाटक चरमराकर खुलता है और एक आवाज़ आती है, "चलो, गेगम..."

"सतेनिक! वार्सेनिक! सिरुन!"

सबसे छोटीवाली बहू सिरुन उसके बिस्तरे की बग़ल में अपने आँसू पीती बैठी सोच रही थी, "मैं चोटी पर से कूद मरूँगी... गेगम-ऐरिक के बिना इस तुच्छ दुनिया में रहने की मेरी कोई इच्छा नहीं..."

फिर भय निराकरण के लिए उसका दिमाग़ कई विचारों में लग गया:

"सम्बत जल्दी ही घर आ जायेगा... मेरा पति सम्बत आयेगा, धूप से थका-हारा, पसीने से तर-ब-तर, गाड़ियों की धूल से सना। वह मेरे पार्श्व में आरा पर्वत की तरह खड़ा होता है... गेगम-ऐरिक कह रहे हैं: मैं दुनिया छोड़ रहा हूँ। लेकिन हममें से कौन इस दुनिया में हमेशा बना रहेगा?.. हमेशा से मुहब्बत रही है और लोग भी हमेशा रहे हैं। सम्बत से मेरी मुहब्बत एक क़िस्म की है और गेगम-ऐरिक से दूसरी तरह की। आह, बूढ़े को दफ़नाकर हमें कितना अफ़सोस होगा। उन्हें तो आसमान में कालीनोंवाले शानदार आसन पर बैठाना चाहिए।"

"नहीं!" शोकार्त हो वह ज़ोरों से चीख पड़ी। "हमें नहीं छोड़ जायेंगे!"

तभी एक सुराही लिये सब से बड़ी बहू सतेनिक अन्दर आ पहुँची।

वह पहले की ही तरह "तेरी जीभ उखाड़ लूँगी, मूर्ख!" कहनेवाली थी कि बीचवाली बहू वार्सेनिक अन्दर आ पहुँची।

क्षण-क्षण क्षीण पड़ते वृद्ध को निहारती वे अगल-बग़ल बैठ गयीं।

हड़बड़ी में उसके बेटों ख़ाचातुर, सार्गिस और सम्बत के हाथों फाटक टूटते-टूटते बचा। उनके क़दमों की आहट पर गेगम-ऐरिक आँखें खोलकर बोले,

"किसी को बच्चों को बुलाने भेज दो।"

पड़ोसी गरसेवान बच्चों को लाने चला गया। अँगुलियों व चेहरों पर स्याही के धब्बे लगाये गेगम-ऐरिक के पोते जल्दी ही आ पहुँचे। वह उन्हें काफ़ी देर तक निहारते रहे—ठीक वैसे ही जैसे कोई आख़िरी बार देखता है। फिर बच्चों के माँ-बाप से बोले,

"मैं चाहता हूँ, तुम लोग डॉक्टरों के पीछे कोई भागदौड़ न करो! नहीं तो मैं आराम से नहीं मर सकूँगा।"

बाग़ की ओर से दुखित आहों व क्रन्दनों की आवाज़ सुनाई दी। मौत की आहट पहचानकर पड़ोस की बूढ़ी औरतें वहाँ जमा हो गयी थीं।

"बूढ़ियों को बाग़ से बाहर खदेड़ दो। मैं चाहता हूँ, यहाँ कोई भी न रोये!" गेगम-ऐरिक ने कहा।

सब हड़बड़ाते कमरे के बाहर आ गये। गेगम-ऐरिक ने फ़ाटक के फटाक से बन्द होने और अपने परिवार के लोगों के क़दमों की धीमी आहट सुनी। यही परिवार तो उनकी सारी सम्पदा था, सारी दुनिया... सीढ़ियों से कोई आवाज़ न हो, इसलिए वे बहुत धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहे थे।

"सतेनिक! वार्सेनिक! सिरुन! पर्दे खींच दो, रोशनी आँखों को काटती है। फिर मुझे अकेला छोड़ दो। मैं सोना चाहता हूँ। जब ज़रूरत होगी, तुम्हें बुला लूँगा।"

लेकिन गेगम-ऐरिक सोना नहीं चाहते थे। सीने के ऊपर बाँह पर बाँह रख उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। वह उस रेखा पर पहुँच गये थे जहाँ रुक-कर आदमी पीछे की ओर देखता है। ऐसे लोग होते हैं जो मृत्यु को निकट भाँपकर अपने दिल की बातें खोलकर कहना, अपने पापों का प्रायश्चित करना, धरती पर बच रहे लोगों से आख़िरी अल्फ़ाज़ कहना चाहते हैं। गेगम-ऐरिक की एकमात्र इच्छा थी, पीछे मुड़कर तय किये अनेक रास्तों को देखें। वे उन बढ़ों की तरह नहीं थे जो दिन भर बैठकर माला फेरते,

दिमाग़ को अतीत की सैर कराते, किसी भीषण क़त्ले-आम या भयानक अन्याय की याद करते रहते। गेगम-ऐरिक भी वान प्रदेश के ही थे, उन्होंने भी क़त्ले आम देखा था, उनके भी मां-बाप मारे गये थे और उनका पालन-पोषण भी अभावग्रस्त अनाथालयों में हुआ था। इसके बावजूद, अपनी मातृभूमि से दूर रहकर उन्होंने हमेशा कठोर परिश्रम किया था। कठोर परिश्रम में व्यस्त होने के कारण उन्हें माला फेरने या शिकवा करने का वक़्त ही नहीं बचता था। उन्होंने इस छोर से उस छोर तक इस बृहत् तथापि छोटे संसार का भ्रमण किया था। वह जहां कहीं भी गये, ख़ामोशी से पीड़ा सहते रहे। ऐसी प्रलयकारी पीड़ा थी कि उसे यदि वान झील में डाल दिया जाता तो उसका सारा पानी मथ उठता, किनारे तोड़कर बह निकलता...

यहां मेगरी में वान प्रदेश के बहुत से लोग थे–गुकास, मेस्रोप, श्मावोन, और सब के सब, चाहे सुननेवाले को पसन्द आये या नहीं, उसे प्रभावित करने के लिए यह कहना अपना कर्तव्य महसूस करते थे, "मैं वान प्रदेश में पैदा हुआ था! .." गेंती या कुदाल लेकर श्रम करने की जगह वे जाड़े में धूप में बैठे और गर्मियों में किसी ठण्डी दीवार के सहारे झुके माला फेरते रहते थे। उनके मस्तिष्क हमेशा अतीत की याद करते होते...

गेगम-ऐरिक के दिमाग़ में उनके पिता, खाचातुर-ऐरिक वान के सच्चे सपूत थे। हाथ में कुल्हाड़ी ले वह बन्दूकों व कटारों से लैस लूटेरे तुर्कों पर टूट पड़े थे। उन्होंने तीन की खोपड़ियां तोड़ दी थीं और पुराने अख़रोट के पेड़ तले जब चौथे पर वह हमला बोलनेवाले थे, उन्हें गोली लग गयी... फिर तुर्क घर के अन्दर दौड़ते जा घुसे। फिर...

फिर वे ख़ाचातुर-ऐरिक की बेटियों पर टूट पड़े। उन्होंने अपनी बेटियों अलमस्त व फिरियुज़ को प्रांगण में मिट्टी के बड़े-बड़े मर्तबानों में छुपा दिया था। लड़कियों का झोंटा पकड़कर बाहर निकाल वे उन्हें तहख़ाने में ले गये... सूखे पत्तों के ढेर के पीछे छुपे गेगम ने यह सब देखा था... पहले उनकी आंखों के आगे अन्धेरा छा गया, फिर उनमें ख़ून उतर आया। वह दौड़कर अखरोट ले पेड़ तले गये थे और कुल्हाड़ी से तहख़ाने की सीढ़ियों पर पहले एक को फिर दूसरे तुर्क को धराशायी कर दिया था... उसके बाद, आज की ही तरह सब कुछ कुहरे में घिर गया था।

"मैं बच कैसे गया था?" उन्होंने सस्वर हैरानी ज़ाहिर की।

उनकी आँखें बन्द थीं, फिर भी उन्होंने जान लिया, बहुएँ कमरे में उनकी ओर झाँक रही हैं।

... फिर लम्बे रास्ते शुरू हुए। ज़ारान्त्स के चक्कीवाले ख़ाचातुर का बेटा, गेगम वान से एचमियादिज़न की ओर और फिर वहां से यूरोप, यूरोप से अमरीका रवाना हो गया... वह रद्दी बटोरनेवाले का सहायक, अख़बार बेचनेवाला छोकरा और सड़क बुहारनेवाला लड़का रहा था। भूखे, ठण्ड से सिकुड़ते, पुलों के नीचे और पार्क की बेंचों पर उसने कितनी निद्रारहित रातें बितायी थीं? मातृभूमि वान के सौन्दर्य से किसी भी चीज़ का मुक़ाबला नहीं हो सकता था: न आकाश, पानी, धरती, पेड़, चांद और न तारों का ही... सब यूँ ही थे। ऐसा लगता था, इन्हें प्रकृति ने नहीं, इनसान के हाथों ने बनाया हो। अमरीका में बदकिस्मती के अलावा कुछ भी न मिलने पर वह फिर अपनी यात्रा पर निकल पड़े थे। अगर कोई उनसे पूछता, "गेगम, कहाँ जा रहे हो?" तो वह शायद जवाब देते, "क्या फ़र्क़ पड़ता है? वान वापस तो जा नहीं सकता।"

इस तरह आख़िरकार वह फ़ारस पहुँचे...

कज़विन नगर उनके दिमाग़ में स्फटिक-सा स्पष्ट दिखाई देने लगा। उन्हें पोपलर वृक्षों की मर्मर ध्वनि, पहाड़ियों से खिलखिलाकर नीचे दौड़ते झरने, चाँदनी में झींगुरों के एकरस कूजन, आटे से भरी चक्की और... तूती, वह जिप्सी बाला याद हो आयी जो वसन्त की एक बरसाती रात में किसी भयभीत हिरनी-सी उनके सूने जीवन में आ दाख़िल हुई और बाद में उनके तीनों बेटों ख़ाचातुर, सार्गिस और सम्बत की माँ बनी...

अपनी स्मृतियों के अकथ सौन्दर्य से गेगम का चेहरा खिल उठा। पिछले तीस वर्षों में आज की तरह तूती की इतनी स्पष्ट छवि उन्हें कभी भी नहीं दिखाई दी थी।

उनकी स्मृति में अतीत का एक और टुकड़ा आ गया। उन्हें वह दिन याद आया जब पेटी के थैले से अपने जीवन भर की कुल कमाई, छह सौ तुमान निकालकर उन्होंने जीर्ण चक्की के मालिक को सौंपते हुए कहा था,

"अब तुम जा सकते हो।"

रसूल नामक चक्की वाला सोते के किनारे जा बैठा, उसे सूझ ही

नहीं रहा था, अपनी चक्की, अपनी दुनिया को छोड़कर वह कहाँ जाये।

तब गेगम ने जो उसकी दुनिया का मालिक बन चुका था उसके पास जाकर पूछा,

"भाई रसूल, अब तुम कहाँ जाओगे?"

रसूल मौन था। शायद वह सोच रहा था, "चाहे कहीं भी जाऊँ, क्या फ़र्क़ पड़ता है, चक्की में तो रुक सकता नहीं।"

...गेगम-ऐरिक ने अपनी आँखें खोल दीं, कुछ भी नज़र नहीं आया: न तो छत, न खिड़कियाँ, न पर्दे, न दरवाज़े के बाहर मौन खड़े लोग... अचानक वह चीख पड़े,

"भाई रसूल, अगर वान वापस नहीं जा सकता तो कहाँ जा सकता हूँ?!"

औरतें कमरे के अन्दर दौड़ पड़ीं। भावावेश में सिरुन ने खुद को रोने से रोकने के लिए अपनी अँगुली ही काट खायी। अपनी बीवी वार्सेनिक की राह रोके सार्गिस दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ और ख़ाचातुर...

"इसे ले जाओ," ससुर के लिए अनार का रस लेकर आयी अपनी बीवी सतेनिक से वह बोला। सुराही को बालकनी से फेंकते हुए वह ज़ोर से बोल उठी,

"आप मुझे यहाँ सबसे बुरी समझते हैं!"

"सतेनिक!.." उसके शौहर खाचातुर ने कहा।

वह कमर में हाथ डालकर कहनेवाली थी, "गेगम-ऐरिक के बाद इस घर में सबसे बड़ी मैं हूँ!" लेकिन तभी ग़ुस्से से जलती आँखों से उसकी ओर देखते हुए ख़ाचातुर ने कहा, "तेरी ज़बान खींच लूँगा।"

वार्सेनिक सहारा देकर सिरुन को सीढ़ियों से नीचे ले गयी। सतेनिक भी उनके पीछे हो ली। तीनों कुएँ के पास जा बैठीं। गहराइयों से ऊपर आती इसकी कष्टकर नमी और जलतल से उठती म्लान-सी चुप्पी उन्हें एक-दूसरे के क़रीब लाती प्रतीत होती थी। उनमें से हरेक की अपनी ज़िन्दगी थी लेकिन वे तीनों गोतनियाँ भी थीं और दुनिया की कोई ताक़त उनके बीच फूट नहीं डाल सकती थी। उनके शौहर भी अग़ल-बग़ल बैठे, चुपचाप सिगरेट पी रहे थे। ऊपर स्वच्छ नीला आकाश था जहाँ उनके पड़ोसी गरसेवान के सफ़ेद कबूतर चक्कर लगा रहे थे। बाग़ के अहाते के

पास से आने-जानेवालों की परछाइयाँ तेज़ी से गुज़र जातीं। वे भला कहाँ से जानते, इस घर में कोई मौत की घड़ियाँ गिन रहा था?

तूती गेगम के पास आ पहुँची थी, उसकी आँखों में अनवरत याचना थी।

उसका चेहरा भटके मृगशावक-सा था। उनकी मुलाक़ात वान के थके बाशिन्दों-सी हुई जो एक-दूसरे के आमने-सामने ख़ामोशी से रुक जाते हैं और जिनकी ख़ामोशी इस दुनिया के सारे शोर, विक्षोभ की धज्जियां उड़ा देती हैं।

वसन्त की वह एक बरसाती रात थी। किसी ने चक्की के दरवाज़े पर दस्तक दी। कौन हो सकता है?

"कौन है?" गेगम ने आवाज़ दी। "अगर बुरे इरादे से आये हो तो दफ़ा हो जाओ! अगर नहीं तो अभी दरवाज़ा खोल दूँगा।"

जवाब तो नदारद रहा लेकिन दस्तक बदस्तूर जारी थी। लेकिन यह दस्तक तो कम, दरवाज़ा तोड़ने की कोशिश ज्यादा थी। दीवार से लगे रैक पर से गेगम ने झपटकर कुल्हाड़ी उठा ली फिर तेज़ी से दरवाज़े को भड़ाक से खोल दिया। नहीं, यह कोई प्रेतात्मा न थी। वहाँ वर्षा से सराबोर एक जिप्सी लड़की खड़ी थी। उसकी आँखें हरी थीं, भौंहों के बीच हरी-सी बिन्दी थी और उसकी पोशाक भी हरी थी। वह दौड़कर अन्दर चली आयी। एक हाथ से उसने सीना दबा रखा था, दूसरे से वह रात के अन्धेरे में इशारा कर रही थी। दूसरे तट पर नीली पतलूनें पहने तुर्क खड़े थे। उनमें से एक चिल्लाया, "ऐ, चक्कीवाले! तुम्हारा घर लूटें, इससे पहले लड़की को बाहर खदेड़ दो!"

गेगम ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता था, "ज़रा कोशिश तो करके देखो! मैं तुम कुत्तों को जानता हूँ! मैं वान का रहनेवाला हूँ। मैंने तुम्हें अपना घर लूटते, ख़ाचातुर-ऐरिक को गोली मारते और तहख़ाने में अपनी बहनों को घसीटकर ले जाते देख चुका हूँ।"

लेकिन वह यह सारी बातें कह सकता था?

सो, इसकी जगह अपनी कुल्हाड़ी हिलाते हुए उसने चीख़कर कहा, "ज़रा मेरा घर लूटने की कोशिश तो करो! तुम लोगों की ऐसी गत करूँगा कि क़ब्र में लेटे तुम्हारे पुरखे भी काँप उठेंगे!"

दूसरे तट के लोगों ने घुसर-फुसर के साथ आपस में बातचीत की और फिर उनमें से एक चीखकर बोला,

"चक्कीवाले, इसे हम याद रखेंगे।"

भयभीत हरी आँखों, भौंहों के बीच हरी बिन्दी और हरी पोशाकवाली जिप्सी लड़की दीवार से चिपकी थी। गेगम ने उसे ज़रा ध्यान से देखा, मानो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं आ रहा हो। फिर दरवाज़े की कुण्डी लगा, एक पत्थर पर पड़े अपने नमदे के चोग़े की ओर सिर से इशारा करते हुए बोला,

"लड़की, बैठ जाओ। डरो मत। कोई तुम्हें चोट नहीं पहुँचायेगा। तुम कहाँ रहती हो?"

सिर हिलाकर लड़की ने अपने होंठों का स्पर्श किया।

"डर से शायद ज़बान ही अकड़ गयी है," उसने सोचा।

चक्की के पाट एकरस खर्र-खर्र करते चक्कर खा रहे थे, तट पर बेंतों में वर्षा मर्मर ध्वनि कर रही थी और सुबह अनन्त काल तक दूर मालूम पड़ती थी। लड़की जहाँ बैठी थी, वहीं गहरी नींद में सो गयी। गेगम उसे उठाकर कोच पर लेटा आया और उसके गीले कपड़े उतार देने की इच्छा के बावजूद लाज के मारे ऐसा न कर सका। बस, उसे अपने नमदे के गर्म चोग़े से अच्छी तरह ढक भर दिया...

गेगम-ऐरिक को एक दिन पहले ज़िला-सोवियत के अध्यक्ष से हुई मुलाक़ात की, न बातचीत की ही कोई याद थी। उन्हें यह भी याद नहीं था कि सुबह किसने यह बात कही थी, "बाग़ों को देखने कब आओगे, गेगम?"

लेकिन गेगम को वसन्त की उस बरसाती रात और चक्की की धूल के एक-एक कण की स्पष्ट याद थी...

आख़िर वसन्त की सुबह आ ही गयी। शायद पानी की आख़िरी बून्द तक बरसाकर बादल ग़ायब हो गये थे। गेगम प्रांगण में निकल आया। बेंत की झुकी डालियाँ वर्षा से सराबोर लड़की की तरह काँप रही थीं। फिर उसने धुँधले जल और अपनी इस दुनिया की ओर देखा जिस पर उसके छह सौ तुमान ख़र्च हुए थे। इस के साथ ही उसे वान का ख़्याल हो आया।

"ख़ाचातुर-ऐरिक," गेगम ज़ोरों से बोल उठा, "ग्राप को ग्रपने ग्रोसारे में कोई ग्रच्छी-सी बन्दूक रखनी चाहिए थी न कि कुल्हाड़ी ग्रौर शराब!"

...नदी तट पर कोई जिप्सी ग्रौरत चली ग्रा रही थी।

"भाई चक्कीवाले, शुभ प्रभात," गेगम के पास पहुँचकर वह बोली। "उन जानवरों से मेरी बेटी को बचाने के लिए तुम्हें हज़ारों-हज़ार शुक्रिया।"

"तो क्या वह तुम्हारी बेटी है?"

"हाँ, मेरी इकलौती बेटी।"

"डर से वह बोल नहीं सकती।"

ग्रौरत के चेहरे पर दुखी मुस्कान ग्रा गयी।

"वह बोल नहीं सकती क्योंकि वह गूँगी, बहरी है।"

"ग्रोह। उसके पिता नहीं?"

"दक्षिण को गये तो लौटे ही नहीं।"

गेगम विचारमग्न हो उठा। फिर उसने उससे पूछा,

"तुम यहाँ किस लिए ग्रायी हो?"

"ग्रपनी बेटी के लिए। हम खेमा उठाकर दक्षिण की ग्रोर रवाना हो रहे हैं।"

"किस लिए?"

"काम के लिए। यही ग्रफ़ीम बटोरने का समय है ग्रौर यहाँ हम जिप्सियों के लिए कोई काम भी नहीं।"

"तुम्हारी बेटी का नाम क्या है?"

"तूती*।"

तभी चरमराकर चक्की का दरवाज़ा खुला। तूती बाहर ग्रायी ग्रौर माँ को देख वापस दीवार से जा लगी। एक हाथ सीने पर रख, दूसरे से वह बदहवास-सी झटका देते हुए मानो कह रही थी, "नहीं! नहीं!"

माँ ने उससे बात की लेकिन तूती ने फिर हाथ झटकने शुरू कर दिये।

"वह तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहती।" गेगम बोला।

"यह तो मैं देख रही हूँ।" बूढ़ी जिप्सी ने सहमति जतायी। "ले-

---

* तूत, शहतूत

किन्तु क्या करूँगी? यहाँ तो वह कुत्तों की मौत मरेगी। उन जानवरों की नज़र पड़ गयी तो इसकी मौत ही समझो।"

"मैं उन्हें ले जाने दूंगा तब न। मैं उनकी पसलियाँ चूर दूंगा!" गेगम गुस्से से बोला। "उसे यहीं रहने दो। घर की देख-भाल करेगी। कौन जाने किसी गड़ेरिये या किसी और से उसकी मुलाक़ात हो जाये और वह शादी कर ले। ख़ूबसूरत लड़की है।"

औरत के चेहरे पर फिर दुखी मुस्कान आ गयी।

"किसे बहरी-गूंगी बीवी चाहिए?"

आख़िर रूमाल के कोने से आँसू पोंछ वह चल पड़ी।

"ठहरो!" गेगम ने ज़ोर से आवाज़ दी। फिर पेटी से थैला निकाल उसे कई मुड़े-तुड़े नोट थमाते हुए बोला,

"इन्हें रख लो। तुम्हें दूर जाना है, पैसे काम आयेंगे।"

"नहीं भाई, शुक्रिया। मेरे पास काफ़ी है।"

कई क़दम आगे बढ़ जाने के बाद वह वापस लौटी और फ़ीरोज़ी मनके से युक्त एक पतली-सी सोने की अँगूठी अँगुली से निकाल उसे देते हुए बोली,

"यदि भगवान की इच्छा हुई तो तूती विवाह कर लेगी। तब उसे यह अँगूठी दे देना। अगर वह मर जाये तो कफ़न के साथ रख देना।"

न जाने क्यों गेगम सिर झुकाये, आँखें ज़मीन पर टिकाये, विचारों में खोया उस औरत के साथ-साथ चल पड़ा। जब वे बेंतों और पोपलरों की सीमा पर पहुँच गये तो गेगम वहीं रुक गया। वह एक पत्थर पर जा बैठा। जिप्सी औरत आँखों से ओझल हो गयी। वह वहाँ काफ़ी देर तक बैठा रहा, हज़ारों क़िस्म के विचार उसके दिमाग़ में आते-जाते रहे। उसके विचार इस दुनिया के बारे में थे—ख़ुदा की बनायी यह दुनिया कितनी दोषपूर्ण थी! विचार धकमपेल मचाते आ-जा रहे थे। "हम लोगों का क्या दोष था? हमारे घर जला क्यों दिये गये थे, हमारी औरतों के साथ बलात्कार क्यों किया गया था, हमारे मर्दों को मार क्यों डाला गया था? हम दुनिया भर में इधर-उधर बिखरे-बिखरे क्यों हैं? और धूप की किरण सी प्यारी तूती जन्म से बहरी-गूंगी क्यों है? जिप्सी इन खिलते बाग़ों, पोपलरों और बेंतों को छोड़ दक्षिण की ओर, जलती धूप में अफ़ीम चुनने क्यों जा रहे थे? और अगर किसी को सच कहना पड़े तो यह दुनिया आख़िर किस से मिलती जुलती है?"

"किसी भी चीज़ से नहीं!"

उनकी आवाज़ सुनकर बेटे अन्दर आ गये। एप्रन से हाथ पोंछते सिरुन भी उनके पीछे-पीछे आ पहुँची।

"किसी भी चीज़ से नहीं!" गेगम-ऐरिक ने कहा। "हरे-भरे बाग़ हैं। और पोपलर वृक्ष... और वर्षा से झुके बेंत... खाचातुर!" वह ज़ोरों से बोले।

"मैं यहीं हूँ पिता जी।"

"सब यहाँ से चले जाओ। मैं सोना चाहता हूँ।"

सिर्फ़ सिरुन ही कमरे से बाहर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पायी। मन ही मन मेडोना के चोग़े का किनारा पकड़ वह विनती करने लगी: "पवित्र मरियम; गेगम-ऐरिक के प्राण न लो... उन्हें थोड़ा और जीने दो..."

...उधर गेगम ऐरिक फिर यादों में खो चुके थे। जब गेगम चक्की पर लौटा, आँगन को बुहारकर पानी छिड़क दिया गया था। फिर... रातों में गरज के साथ वसन्त की आँधियाँ चलती रहतीं। पोपलर वृक्षों और चक्की के ऊपर से नागिन-सी बल खाती बिजली कौंध जाती, अन्धेरे में आटे का बगूला और गेगम के चोग़े से ढके पत्थर पर बैठी तूती की आँखें चमक उठतीं...

और उनके बीच प्यार जाग उठा।

दूसरे तट पर दुबारा तुर्क दिखाई दिये। वे चीखकर बोले,

"चक्कीवाले, अच्छा होगा, अगर तुम लड़की हमें सौंप दो। नहीं तो तुम्हारी चक्की धूल में मिल जायेगी।"

फिर अन्धेरा-सा घिर आया था और बूँदा-बाँदी हो रही थी। कुछ किसान पास के गाँव गदीमाबाद से गधों पर लादकर अनाज लाये थे। वर्षा में खड़े-खड़े गेगम नीली पतलूनोंवाले आदमियों को घूर रहा था।

"चले आओ!" वह चीखकर बोला। "तुम लोगों को एक-आध हाथ दिखा दूँ।"

किसानों में एक बूढ़ा आदमी था। न जाने क्यों, गेगम ने उसे भी वान का रहनेवाला समझ लिया। शायद इसलिए कि वह भी थका-हारा, और हमेशा कन्धों के पीछे देखते रहनेवाला था। लोग, आख़िर सदा पीछे

देखते क्यों हैं? चाहे जो भी करो, ईश्वर की बनायी यह धरती गोल थी और पीछे मुड़कर जितना भी देखो, यात्रा के अन्त में ख़ुद को ही देखना पड़ता है...

बहरहाल, बूढ़ा न तो आर्मीनियाई था, न वान का। बस इतनी-सी बात थी कि दूसरे किसानों के साथ वह भी चक्की पर अपना अनाज लाया था। एक पेड़ तले बैठकर तम्बाकू रगड़ने के बाद पाइप में भर, उसे सुलगाकर वह पीने लगा। पाइप से नीले धुएँ का छल्ला उड़ने लगा।

"भूखे कुत्तों की तरह तुम लोग आदमियों के पीछे-पीछे क्यों लगे रहते हो?" दूसरे तट के आदमियों से उसने चिल्लाकर कहा। "चूहो कहीं के, अपना काम-धाम या अपने परिवार की देखभाल क्यों नहीं करते?"

तुर्क हँसे लेकिन फिर वहाँ से चलते बने।

गेगम बात-बात में चक्की के अन्दर आता-जाता रहा। तूती पाटों के पास बैठी थी। "रसूल इस समय कहाँ होगा? उसने मुझे अपनी यह लड़खड़ाती दुनिया छह सौ तुमान में बेच दी। दुनिया में किसी का साथ हो तो कितना अच्छा," बूढ़े किसान के सिर से परे दूर-दूर देखते हुए गेगम सोच रहा था। "दुनिया में अकेला न होना बड़ा अच्छा है। इसी दुनिया में रसूल है, गदीमाबाद से अनाज लेकर आया वह बूढ़ा आदमी है और लम्बी-लम्बी बरौनियों से आवाज़ें सुननेवाली हरितनयना तूती है।"

वसन्त समाप्त हो रहा था। बादाम के वृक्षों के फूल झड़ रहे थे। गेगम चक्की की छत पर सोता था। एक रात उसे नीन्द ही नहीं आयी। आकाश में तारे एक-दूसरे को आँख मार रहे थे... दूसरे तट पर एक शराबी दरवेश गा रहा था:

"कैसे पा सकता हूँ पथ,
जो ले जाये मुझे घर वापस?"

...उस दिन हर चीज़ स्फटिक-सी साफ़, हल्की और उमंग भरी लग रही थी। गेगम जाकर नदी में स्नान कर आया। चक्की में वापस आकर सन्दूक से काली पतलून और सफ़ेद क़मीज़ निकाल उसने पहन ली। मूँछों और सिर के बाल पर गुलाब जल छिड़क लिया। फिर अन्दर आकर वह तूती से बोला, "चलो, शहर चलें। हमें वहाँ कुछ काम है।"

रुपहले वृक्षों के तले पैदल चलते वे कागज़-वान पहुँच गये। जुलाई की

धूप छन-छन कर पत्तों से आ रही थी, इससे उनकी मादक ख़ुशबू दुगुनी हो गयी थी।

गेगम तूती को हाजी नबी की दूकान पर ले जाकर वहाँ काम करने-वाली महिला से बोला,

"जब मैं इसे वापस लेने आऊँ, इसे पूरी तरह नये कपड़ों से सजी सँवरी होना चाहिए।"

फिर वह कगरमानख़ान की भट्ठी पर जा पहुँचा। कगरमान बैकगैमन* खेल रहा था। पाँसे को बन्द हथेलियों में हिलाकर वह ज़ोरदार ढंग से बिसात पर पटक देता। गेगम ने दो बोतल शराब का ऑर्डर दिया। एक को वहीं पर गटककर दूसरी बोतल उसने अगली मेज़ पर रख दी। फिर सबकी मंगल-कामना कर वह दरवाज़े की ओर चल पड़ा। दहलीज़ पर रुककर उसने पाइप सुलगाया। साफ़ आकाश पर नज़र दौड़ायी और सीने पर तीन बार सलीब का निशान बनाया। वाह, क्या सुबह थी! वान की सुबह !

तूती नयी हरी पोशाक में सज-सँवर गयी थी। उसके सँवारे बाल कन्धों पर खुले-खुले फैले थे। तूती ने हरे जूते पहन रखे थे। हल्के गुलाबी रंग के पावडर से उसके गाल रंगे थे; बदन पर गुलाब जल छिड़का था। गेगम ने मुट्ठी भर सिक्के थैले से निकालकर दूकान की मेज़ पर डाल दिये।

अब वे फुटपाथ पर चल रहे थे। हाथ पीछे पीठ पर रखे गेगम आगे आगे चल रहा था। वह गिरजाघर के पास पहुँचकर रुक गया। उसने इशारे से तूती को वहीं रुके रहने को कहा।

सार्वजनिक उपासना ख़त्म होने के बाद तीन बार सीने पर सलीब का निशान बनाकर गेगम फ़ादर ओवान्नस की ओर बढ़ गया।

"वान के वासी गेगम, तुमने गिरजाघर आने में देर कर दी," फ़ादर ओवान्नस मूँछों में बुदबुदाये। "मैं तो माफ़ कर दूँगा लेकिन ईश्वर नहीं।"

"ईश्वर दयालु है," गेगम ने कहा और आस-पास नज़रें दौड़ायीं। गिरजाघर ख़ाली हो चुका था। डीकन मोमबत्तियाँ बुझा रहा था।

---

* चौसर जैसा एक खेल जो दोहरी बिसात पर खेला जाता है।

"मुझे लगता है, तुम किसी काम से आय हो। क्या काम है?"

सिर झुकाकर गेगम धीमे स्वर में बोला,

"फ़ादर, मैं गिरजाघर में विवाह करना चाहता हूँ।"

"यह तो बिलकुल सही है, चक्कीवाले गेगम। इसका समय बहुत पहले हो चुका है। क्या कगरमान की बेटी है?"

"नहीं, फ़ादर।"

"रातेओस की बहन?"

"नहीं।"

"हूँ, तो जरूर शोगेर होगी!"

"नहीं, फ़ादर, वह ईसाई नहीं, जिप्सी है। उसे मौत के मुँह से निकाल लाया हूँ और अब शादी करना चाहता हूँ।"

फ़ादर ओवान्नस को काटो तो ख़ून नहीं।

"तुम किस धर्म के हो, गेगम?"

"धर्म?"

"तुम्हारी जातीयता क्या है?" फ़ादर ओवान्नस चीख़ पड़े।

"मैं आर्मीनियाई हूँ। मैं वान का ईसाई हूँ।"

"और क्या इस धरती पर अब एक भी ईसाई लड़की बची नहीं रही है?"

गेगम एक बुझायी मोमबत्ती से सफ़ेद धुएँ वक्राकार ऊपर उठते और क्षीण पड़ते देख रहा था।

कन्धे से गिरजाघर का दरवाज़ा धकेलकर वह बाहर सड़क पर आ गया। गिरजाघर की दीवारों तथा तूती पर नज़र डालकर उसने सीने पर क्रास किया। "फ़ादर ओवान्नस बेकार हैं," उसने सोचा, "लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि गिरजाघर भी बेकार है।"

"आओ चलें।"

एक बार फिर रुपहले वृक्षों के तले वे पैदल चल पड़े। जुलाई का सूरज आसमान पर चढ़ आया था और धरती पर धूप-छाँह बिखेर रहा था। गेगम के भारी-भारी डगों के तले सड़क धँसती-सी प्रतीत होती थी।

"वापस लौटते-लौटते पहाड़ियाँ नीली हो उठेंगी," उसने मन ही मन सोचा।

उनके लौटते-लौटते पहाड़ियों में झुटपुटा रेंगने लगा था।

गेगम की निगाहें चोटियों पर टिकी थीं। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जहाँ ढलानवाली पगडंडियों पर कृष्णबदरी की झाड़ियाँ हैं, भयभीत मृगशावक अपनी माताओं की खोज में इधर-उधर भटक रहे हैं।

नदी धुंधला गयी थी। शाम की बयार ने बेंत की शाखाओं को पानी में डूबो दिया था और पोपलरों को एक-दूसरे के क़रीब ला दिया था।

"आओ, छत पर चलें," गेगम ने तूती से कहा। "आज पीसने को अनाज भी नहीं। पाटों को आराम करने दो।"

डाँवाँडोल सीढ़ियों से वे सपाट छत के ऊपर जा पहुँचे। गेगम ने थैले से वह छोटी-सी सोने की अँगूठी निकाल ली जिसमें फ़ीरोज़ी मनका जड़ा था। तूती ने अपनी अँगुली बढ़ाकर सिर गेगम के सीने पर टिका दिया। "मैं तुम्हारी हूँ," वह गूँगी बहरी लड़की दुनिया की हर भाषा में कह रही थी।

अनावृत चाँद पहाड़ियों के पीछे से खिसक आया और सर्वाधिक दीर्घकाय पोपलर से जा सटा...

"ईश्वर की कृपा से ख़ाचातुर १६३१ में पैदा हुआ," गेगम ने बाइबिल के अन्दर के पेज पर लिखा। फिर उसने नवजात बेटे के सीने पर तीन बार क्रास किया।

"सार्गिस १६३३ में पैदा हुआ।" "सम्बत १६३५ में पैदा हुआ।"

"जैसी ईश्वर की मर्ज़ी, मेरी लौकिक परम्परा से विवाहित धर्मपत्नी तूती ने १६३६ में प्राण त्याग दिये। कोई पुरोहित न था, कोई धार्मिक अनुष्ठान भी नहीं किया गया। सोमवार को हमने उसे क़ब्र में सुला दिया।"

"१६३६ की गर्मियों के आख़िरी महीने में मैं अपने बेटों के साथ शराब वगैरह ख़रीदने कागुज-वान गया। जब हम लौटे, देखा, चक्की तोड़ डाली गयी थी। इसे नीली पतलूनवाले तुर्कों ने नष्ट कर दिया था।"

"चक्कीवाले रसूल से तेहरान में हमारी मुलाक़ात हुई। वह नशे में था और एक सोते के पास बैठा शायद अपनी चक्की के बारे में सोच रहा था। ५ तुमान देकर मैंने उससे कहा, "मेरे बदक़िस्मत भाई रसूल, मैं अपने बेटों के साथ वापस अपनी मातृभूमि जा रहा हूँ।"

"जुलाई १६४६ में हम उस स्वर्गोपम धरती की ओर रवाना हुए जिसे माँ आर्मीनिया कहते हैं।"

पेज में जगह नहीं बची थी इसलिए गेगम ने मार्जिनवाली जगहों पर

लिख रखा था। उसने बेटों के ब्याह और पोतों के जन्म की तारीखें लिख रखी थीं। जब मार्जिन भर गये, उसने लिखना छोड़ दिया।

"ख़ाचातुर के बेटे गेगम, याद करने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है," गेगम-ऐरिक ने सोचा। "इस बड़ी दुनिया के इस छोर से उस छोर तक तुम हो आये लेकिन कभी किसी को तुमने चोट नहीं पहुँचायी। तुमने एक बहरी-गूँगी लड़की से शादी की और उसके साथ छह वर्षों तक रहे। और अगर फ़ादर ओवन्नास, उनकी आत्मा को ईश्वर शान्ति दे, बुरे इनसान थे और हमारी शादी को नाजायज़ समझते थे तो इसके बदले में ईश्वर ने हमें तीन शानदार, लम्बे-तड़ंगे बेटे, तीन ख़ूबसूरत बहुएँ और पाँच पोते दिये..."

"और क्या यह काफ़ी नहीं, फ़ादर ओवन्नास?"

एक बार फिर गेगम-ऐरिक ने आँखें खोल दीं। पर्दे के पीछे उन्हें फिर मौत का फ़रिश्ता दिखाई दिया। उसके एक हाथ में बेंत की हरी डाल और दूसरे में दराँती थी।

"मैं आ गया हूँ, गेगम..."

"मैं अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुका हूँ," गेगम बोले। "खाचातुर ऐं-रिक की तरह... अगर तुम कहते हो कि दूसरी दुनिया में तूती मेरी राह देख रही है तो मैं चलता हूँ। लेकिन मैं नहीं जानता, आख़िर मेरे बदक़ि-स्मत भाई रसूल का क्या बना? और मैं यह भी नहीं जानता, इस बड़ी, अनन्त दुनिया में लोग अपने लिए जगह क्यों नहीं ढूँढ़ पाते?"

गेगम-ऐरिक ने कसकर आँखें बन्द कर लीं। उनके गालों पर आँसू लुढ़क पड़े।

यह मई का एक चमकता दिन था। अपनी मातृभूमि आर्मीनिया के मेगरी नगर में बेटों, बहुओं और पोतों से घिरा चक्कीवाला गेगम, खा-चातुर का बेटा और ज़ोरन्त्स का निवासी चिर निद्रा में सो गया।

नोरेयर अदालियन

ऊँट गुज़र जाते हैं, पहाड़ अपनी जगह बने रहते हैं...

बहुत-बहुत पहले, किसी ज़माने में जलयानों, वायुयानों और स्वचालित वाहनों की अपेक्षा धरती पर ऊँटों की संख्या कहीं अधिक थी। लोग एक शहर से दूसरे शहर, एक गाँव से दूसरे गाँव और एक देश से दूसरे देश की यात्रा ऊँटों से ही करते थे। ऊँटों पर सवार हो वे अपने दुश्मनों में आतंक फैलाते थे, उनके ऊँट उन्हें ज़मीन पर पैरों तले रौंद देते थे।

उस ज़माने में ऊँटों का व्यापार सम्मानित व्यवसाय था। ऊँट बेचे जाते थे। ऊँट ख़रीदे जाते थे। ऊँटों को आमने-सामने भिड़ाया जाता था और लोग उन्हें उड़ते गुबारों में लड़ते देखते थे...

फिर ऊँटों की क़ीमत गिरने लगी। ऊँट गधे से भी ज्यादा सस्ता हो गया, जल्दी ही ऐसा समय आ गया जब लोग ऊँट को बोरी भर गेहूं या बाल्टी भर सेब के बदले ख़रीद सकते थे और इस बात से किसी को कोई हैरानी नहीं होती थी...

अब तो यह ज़माना आ गया है कि समाप्त होते असहाय ऊँटों को देखना है तो सरकस जाइये या किसी चिड़िया-घर में।

और अगर किसी ने नये ज़माने की लड़की या लड़के को ऊँट की अस्थियों के किसी टुकड़े को दिखा दिया तो वे उसे किसी मैमथ या डाइनोसौर का समझेंगे और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि वह टुकड़ा इतना ही विचित्र, असामान्य और विलक्षण लगेगा...

आदमी की याद से न जाने कब के भूले-बिसरे ऊँट एक दिन फिर प्राचीन नैरी की युवा राजधानी की सड़कों से गुज़रते दिखाई दिये।

उन्हें देखकर सनसनी-सी छा गयी! उनके इर्द-गिर्द एक बड़ी-सी भीड़ इकट्ठी हो गयी और हर आदमी आश्चर्य व उत्तेजना से भरा था।

"देखो, देखो, ऊँट हैं!" कोई इस तरह बोला मानो उसे भय हो कि ऊँट हक़ीक़तन कहीं कुछ और न निकल जायें।

"अरे, उनके तो कूब निकले हैं!" दूसरा ऐसे बोला मानो अब तक सीधी पीठवाले ऊँट हुआ करते थे।

"पागल पशु है!" कोई दूसरा बोला और दोस्तों, अजनबियों से व ख़ुद अपने मन में तब तक दुहराता रहा जब तक उसे यह बात सच नहीं लगने लगी।

चौथे ने चश्मदीद गवाह जैसे विश्वास से कहा:

"किसी ने ऊँटों से उनकी गर्दन मुड़ी होने का कारण पूछा तो उन्होंने जवाब दिया: 'हम सर्वत्र ऐसे ही हैं'..."

"अरे, क्या कहते हो?" सब विस्मय से बोल उठे। उनके आश्चर्य, अचम्भे का कोई ठिकाना न था।

उधर इस शोर भरी प्रशंसा से उदासीन ऊँट धीमे-धीमे, शानदार ढंग से आगे बढ़ते रहे, उनकी घण्टियाँ टिन-टिन बज रही थीं।

धूप में सड़क का कोलतार पिघल गया था। झलमलाती धूप में ऊँटों का कारवाँ किसी पुराने पूर्वी गीत की तरह अनन्त प्रतीत होता था।

सड़कें नगर के केन्द्र में मिलती थीं और सड़कों के मिलने से वहाँ बड़ा सा चौक बन जाता था। इन सड़कों के नियम क़ानून थे और उन्हें तोड़ना मना था।

लाल बत्ती के बुझते ही पैदलों की बाढ़-सी सड़क के पार चल पड़ी।

जब हरी बत्ती बुझी, सड़ाक-सड़ाक कारों का ताँता गुज़र गया।

पीली, लाल और हरी बत्तियाँ, सभी उनके आदेश पर चल रहे थे।

तभी अपनी घण्टियाँ टिनटिनाते ऊँट वहाँ आ पहुँचे...

गड्क ने अपनी पाँचवीं मंज़िल की बालकनी से उन ऊँटों को देखा, वह हैरानी से चिल्ला उठा। सीढ़ियों से दौड़कर जब वह नीचे जाने लगा, उसे दरवाज़ों के बन्द होने और सीढ़ियों पर लोगों के दौड़ने की आवाज़ें सुनाई दीं...

सब को जल्दी मची थी, कोई ऊँटों को देखने से चूकना नहीं चाहता था...

बच्चे घरों से सरपट निकल, एक-दूसरे को आवाज़ देते, कारवाँ के पीछे-पीछे दौड़ पड़े।

छुट्टी का समय था। स्कूल बन्द थे। नगर में बच्चे छा गये थे...

कारवाँ में पल भर को कुछ गोलमाल हो गया। आगेवाले ऊँट, नार को किसी बात से ग़ुस्सा आ गया था और वह अड़कर एक जगह खड़ा हो गया। शायद पिछले कुछ घण्टों में दिखाई दी मालिक की उदासीनता से वह क्रुद्ध हो उठा था। या शायद किसी और वजह से वे एक-दूसरे के विरुद्ध अड़ गये थे। कौन जाने?..

ऊँटों की लम्बी पाँत सिकुड़ गयी थी। यातायात ठप, गर्मी असह्य थी।

आदमी और ऊँट नज़रों से हरा देने के लिए एक-दूसरे को घूरने लगे।

कुछ चमका और उनकी आँखों में बुझ गया।

आदमी विजयी रहा था।

टिन-टिन, टिन-टिन करता एक कारवाँ नगर की सड़कों से चला जा रहा था। सन्दिग्ध विचार आदमियों और पशुओं, दोनों को पीड़ित कर रहे थे।

विशालकाय अट्टालिका में रहनेवाले बच्चे धीरे-धीरे कारवाँ से पिछड़ने लगे और दूसरे बच्चे उनकी जगह जा पहुँचे। भीड़ ऊँटों के पीछे-पीछे चलती रही। लोग तो बदल रहे थे। लेकिन उनकी संख्या भीड़ में कम नहीं हो रही थी। वृक्षों से झड़कर गिरनेवाले पतझड़ के पत्तों की तरह लोग एक-दूसरे से टकराते, फिर अलग होते और सड़कों व गलियों में गुम हो जाते थे।

उन सब में बालों में हल्के गुलाबी रंग का रिबन बाँधे एक छोटी-सी लड़की बराबर कारवाँ के पीछे-पीछे चलती रही। वह दौड़ती, फिर रुक जाती, रुकती, फिर दौड़ने लगती। उसकी आँखें आश्चर्य से फैलीं और ख़ुशी से चमक रही थीं।

तुम्हारा नाम क्या है?" गइक ने पूछा।

"अन्ना," उसकी ओर देखने की भी ज़हमत किये बिना उसने जवाब दिया। "और तुम्हारा?"

"गइक।"

वे साथ हो लिये।

"तुम कितने साल की हो?" गइक ने पूछा।

"तेरह," वह बोली। उसकी आँखें कारवाँ पर टिकी थीं। "और तुम कितने साल के हो?"

लड़का चौदह का था लेकिन उसने तेरह बताया क्योंकि वह उसे पीछे छोड़कर आगे नहीं बढ़ना चाहता था...

एक जनाज़े के गुज़रने तक ऊँटों और कारों को मुख्य मार्गों में से एक पर रुकना पड़ा। जाड़े की बात होती तो मर्दों ने अपनी टोपियाँ उतार ली होतीं लेकिन यह तो भीषण गर्मी का समय था।

कारवाँ का मालिक भेड़ की खालवाला अपना सफ़ेद फुलफुला टोप उतारना भूल गया क्योंकि वह अर्से पहले अपनी मातृभूमि के रीति-रिवाज भूल चुका था।

बाजेवाले कोई दुखी, धार्मिक धुन बजा रहे थे। जनाज़े की कारें व गाड़ियाँ शोकपूर्ण ढंग से भोंपू बजा रही थीं। कई लोग रो-कलप रहे थे।

पल भर के लिए सब खुद को असहाय व क़सूरवार लगे। लेकिन बस पल भर ही...

"भूगोल में तुम्हारे अंक कैसे हैं?" गइक ने पूछा।

"सबसे ऊँचे," अन्ना जवाब दे मुस्करायी।

दोनों एक-दूसरे को इस तरह भा गये कि बात करने में उन्हें संकोच हो रहा था।

"गइक, मुझे सबसे आगेवाला ऊँट बहुत पसन्द है," अन्ना बोली।

"अन्ना," गइक बोला। "मुझे भी सबसे आगेवाला ऊँट बहुत पसन्द है।"

दोनों की पसन्द भी एक थी लेकिन आगे क्या करें, यह दोनों को नहीं मालूम था।

"आओ, ऊँट से चिपककर देखें!" आखिर अन्ना बोली।

"आओ, उसके पैरों तले लोट जायें!" गइक बोला।

लेकिन दोनों ने वैसा कुछ भी नहीं किया क्योंकि यह कपोल-कल्पना ही था।

"तुम सोच भी नहीं सकते, मैं उसके मालिक से कितनी ईर्ष्या करती हूँ।"

"मैं भी..."

"वह चाहे तो अपने ऊँट को चूम भी सकता है या उस पर ज़ीन कस सकता है या दुनिया के आख़िरी छोर तक उसे ले जा सकता है..."

"वह जो चाहे उसके साथ कर सकता है!.."

"पहली बार मैंने इतना ख़ूबसूरत और प्यारे गहनों से सजा ऊँट देखा है!" अन्ना ने कहा और गहरी साँस छोड़ी।

"इससे पहले मैंने कभी इतना ख़ूबसूरत, प्यारे-प्यारे गहनों से सजा ऊँट नहीं देखा था। न तो चिड़ियाघर में, न सरकस में," गड़क बोला।

पल भर को दोनों एक-दूसरे से बेख़बर हो, अपने-अपने भावावेश में खो गये।

फिर गड़क नार के पास जा पहुँचा। उसने ऊँट का स्पर्श किया, उसके रोएँदार पहलू को सहलाया और ख़ुद पर आश्चर्य करते हुए बालों का एक गुच्छा उखाड़ लाया।

ऊँट के मालिक ने उसका कृत्य देख लिया। उसने गड़क की ओर कठोर, अक्षम्य दृष्टि से देखा और लड़का सिटपिटाकर पीला पड़ गया...

ऐसी क़ीमत पर हासिल ख़ज़ाने में से आधा उसने लड़की को दे दिया। उसने ख़ज़ाने का उपहार लड़की को इस तरह झेंपते हुए, निःश्वासपूर्वक दिया मानो उसे अपना आधा दिल दे रहा हो।

और लड़की ने भी वह अनमोल उपहार ऐसे झेंपते हुए, निःश्वासपूर्वक स्वीकार किया मानो वह लड़के के कलेजे का टुकड़ा हो।

बूढ़े-जवान सब उनकी ओर आने लगे, सब बाल में से एकआध टुकड़ा देने की याचना कर रहे थे।

और इस तरह उन्होंने अपने हिस्सों के भी हज़ारों टुकड़े कर डाले। आख़िर उनके पास बस एक-एक पुतला बाल ही बच रहा।

अचानक प्रश्नवाचक चिह्न-सी दिखाई देती दो बूढ़ी औरतें वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने उनसे वे आख़िरी बाल भी ले लिये। फिर चलती बनीं...

बच्चों ने एक-दूसरे की ओर उलझन भरी नज़रों से देखा। जो कुछ हुआ था, उन्हें वह सब सच भी लग रहा था और सपने-सा झूठ भी।

टिन-टिन-टिन-टिन... ऊँट चले जा रहे थे।

भीड़ भी चली जा रही थी।

सूरज भी विदा ले रहा था।

सड़कों और चौकों में धूल भर गयी, मकानों के अन्दर व पेड़ों तले हवा उमसभरी थी। दूसरी सैकड़ों शामों की तरह शाम उतर रही थी...

"ऊँट के एक बाल के लिए मैं सौ रूबल दे दूंगा!" गइक बोला।

"ऊँट के एक बाल के लिए मैं हज़ार रूबल दे दूंगी!" अन्ना बोली।

"मैं इसके लिए कोई भी वस्तु दे डालूंगा..." गइक ने कहा और गहरी साँस छोड़ी।

"कौन नहीं दे डालेगा?" अन्ना ने कहा और गहरी साँस छोड़ी।

वे उदास थे क्योंकि ऊँट के एक बाल के लिए देने को उनके पास कुछ भी न था...

एक सैनिक टुकड़ी सड़क से गुज़र रही थी।

यह भी चित्ताकर्षक था।

ऊँट जा चुके थे और अब लड़का व लड़की सड़क की दोनों ओर हो गये थे—बीच में थोड़ी देर के लिए प्रतिबन्धित क्षेत्र बन गया था।

कोई जोशीला गीत गाते सैनिक चुस्ती से मार्च करते चले जा रहे थे। किसी लड़की ने फूलों का एक गुच्छा उनकी ओर उछाल दिया। फूल उन तक नहीं पहुँच पाये, पटरी से अनतिदूर ही गिर पड़े।

फूलों को देख सैनिक मुस्करा उठे और एक के बाद एक क़तारों में मार्च करते रहे। इस तरह सैकड़ों सैनिक आगे बढ़ गये। आख़िरी सैनिक, नीली आँखोंवाला नौजवान फूलों के पास रुका। उसने उन्हें उठाकर गन्ध ली। फिर दौड़कर साथियों से जा मिला।

अब प्रतिबन्धित क्षेत्र नहीं रहा था।

"सैनिक कहाँ गये?" लड़के ने हक्का-बक्का सवाल किया।

"ऊँट कहाँ गये?" लड़की ने हक्का-बक्का सवाल किया।

आज से पहले वे इतना अधिक उदास कभी नहीं हुए थे। उन्हें ऊँट से प्यार था और उनके ख़्याल में ऊँट भी उनसे प्यार करते थे और हमेशा वहीं मौजूद रहेंगे।

लेकिन ज़रूर ही उन्हें किसी तरह का भ्रम हो गया होगा।

"ऊँट किस रास्ते गये थे?" बच्चों ने राह चलते लोगों से पूछा और बतायी दिशा में वे तेज़ क़दमों से चल पड़े।

इस तरह वे नगर से बाहर एक एकान्त जगह में पहुँच गये। सूरज

कब का डूब चुका था। उनके ऊपर स्वच्छ आकाश था। चारों ओर चुप्पी और शान्ति थी।

बच्चों ने एक ताज़ा जुता खेत पार किया। इतनी अधिक मिट्टी, वास्तविक सुवासित मिट्टी उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी। हाँ फूल गमलों या नगर के पार्कों में ज़रूर देखी थी।

जहाँ सड़क तीन दिशाओं में बटती थी, एक बूढ़ा आदमी बैठा था। कितना बूढ़ा होगा, यह कहना कठिन था। धीमे-धीमे उसके पास जाकर गइक ने कहा,

"आपने ऊँटों को जाते देखा?"

"हाँ।"

"वे किस ओर गये?" अन्ना ने बेसब्री से पूछा।

"पहले रास्ते से तुम जल्दी से उन तक पहुँच जाओगे। दूसरा लम्बा है। तीसरा कहीं नहीं जाता," बूढ़ा बोला।

"पहला रास्ता कौन-सा है?"

लेकिन बूढ़े ने कोई जवाब नहीं दिया। वह गहरी नीन्द में सो चुका था।

चुनाँचे, यह जाने बिना कि कौन-सा रास्ता उन्हें लक्ष्य तक ले जायेगा, उन्होंने बस यूँ ही एक रास्ता चुन लिया।

आख़िर, वे एक जगह थककर रुक गये और आस-पास देखने लगे... उन्हें एक चट्टान दिखाई दी, झाड़ी और एक सोता दिखाई दिया... और वहाँ, दूर में...

"ऊँट!"

वे ख़ुशी के मारे ज़ोरों से चीखते हुए आगे की ओर दौड़ पड़े। लेकिन कुछ ही क़दमों के बाद वे अपने रास्ते में रुक गये... नहीं, वे ऊँट नहीं थे। वे तो प्राचीन नैरी के प्राचीन पहाड़ थे और क्षितिज में पहाड़ों का एक कारवाँ इस छोर से उस छोर तक फैला था।

इस संग्रह के लेखक

अक्सेल बाकुन्त्स (१८९९–१९३७)

किसान के बेटे इस क्लासिकी आर्मीनियाई लेखक का जन्म गोरिस में हुआ था। पहली कहानियाँ तीसरे दशक में लिखी गयीं। किसान-जीवन के बारे में लेख व शब्द चित्र थे: एक प्रान्तीय पत्रलेखन कला का संग्रह, हमारे गाँवों में, गाँव की चिट्ठियाँ तथा चार कहानी-संग्रह: अन्धेरा दर्रा, काले खेतों का बीजरोपक, वर्षा और भ्रातृत्व वृक्ष।

तीसरे दशक के अन्त में अक्सेल बाकुन्त्स ने दो बड़ी कृतियाँ लिखनी शुरू कीं: महाकाव्य करमरकर और ऐतिहासिक उपन्यास खाचातुर अबोवियान (लेकिन दोनों ही कृतियाँ पूरी नहीं हो सकीं)। उन्होंने एक व्यंग्यात्मक कथा पूरी की कियोरेस (१९३५)। यह कृति आज भी सर्वश्रेष्ठ आर्मीनियाई व्यंग्यकथाओं में एक है।

पाटल कुसुम लेखक की नपी-तुली कथाशैली, उनकी काव्यात्मकता, मानवीय सम्बन्धों में उनकी रुचि तथा उनके तीक्ष्ण भाव-बोध के लाक्षणिक गुणों से परिपूर्ण है।

देरेनिक देमिर्चियान (१८७७–१९५६)

"जनता और जनता की ख़ुशी एकमात्र सही पैमाना है, एकमात्र सही साहित्यिक मार्ग है..." कवि, गद्यकार, नाटककार व व्यंग्यकार देरेनिक देमिर्चियान इन्हीं शब्दों में लेखकीय दायित्व का निर्धारण करते हैं।

एक ग़रीब दुकानदार के बेटे देरेनिक ने स्विटज़रलैण्ड में शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त किया और १९१० से १९२२ तक तिफ़लिस के स्कूलों में वह आर्मीनियाई भाषा एवं साहित्य का अध्यापन करते रहे।

देमिर्चियान की पहली पुस्तक कविताएँ १८९९ में प्रकाशित हुई थी। काकेशिया में सोवियत सत्ता की स्थापना से पहले ही उनकी कविताएँ, कहानियाँ एवं नातेक प्रकाशित हो चुके थे। लेकिन परिपक्वता उन्हें सोवियत काल में ही प्राप्त हुई। १९२० से १९४० के बीच में लिखी उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ हैं: बहादुर नज़र (कॉमेडी), ग़ैरमामूल, मेर्के व सातो (कहानियाँ); रशीद व निग्यार (लघु उपन्यास); और वार्दानान्क (ऐतिहासिक उपन्यास)। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में देरेनिक देमिर्चियान ने नये समाज का निर्माण करनेवाले लोगों की जीती-जागती तस्वीर पेश करते हुए कई कहानियाँ लिखीं।

एक पुस्तक की कहानी उनकी दार्शनिक कहानियों में एक है। यह उनके काव्यात्मक चिन्तन को प्रतिबिम्बित करती है।

अवेतिक इसाकियान (१८७५–१९५७)

"कवि इसाकियान अप्रतिम हैं; आज यूरोप में उनकी जैसी शुभ्र एवं बेलाग प्रतिभा कोई दूसरी नहीं..." १९१६ में रूसी कवि अलेक्सान्दर ब्लोक ने उनके बारे में लिखा था।

इसाकियान का जन्म अलेक्सान्द्रोप्ल में हुआ था। उनकी कविताओं का पहला संग्रह गीत और ज़ख्म १८९८ में प्रकाशित हुआ था। इसके प्रकाशन के बाद ही युवा कवि को मान्यता प्राप्त हो गयी थी। इसके बाद उनकी कविताओं के अन्य कई संग्रह प्रकाशित हुए।

ज़ारशाही के विरुद्ध कार्यकलाप के कारण अवेतिक इसाकियान को १९०८ में गिरफ़्तार करके तिफ़लिस के मेतेखी क़िले में क़ैद कर दिया गया था। क़ैद से छोड़ने के बाद उन्हें मातृभूमि से भागने को मजबूर कर दिया गया। वह १९३६ में अपनी मातृभूमि लौटे।

लेखक के रूप में अवेतिक इसाकियान आर्मीनिया लौटने के बाद ही फले-फूले। उन्होंने कई कविताएँ व रोचक कहानियाँ लिखीं। उनमें सर्वश्रेष्ठ हैं धैर्य-लहरी, हमारी पताका, बैरम अली, गुएर्निका का प्रिय देवदार तथा अन्य।

लेखक ने पत्रकारिता पर अपना बहुत-सा समय व शक्ति लगायी। जनता को सम्बोधित उनके भाषण तथा लेख देशभक्ति एवं जनगण के बीच मैत्री की भावना से ओतप्रोत हैं।

राफ़ेल अरामियान (१६२१-१६७८)

उनका जन्म एचमियादि्ज़न में हुआ था। वह एक कार्यालय कर्मचारी के बेटे थे। लड़ाई के दौरान उन्होंने येरेवान विश्वविद्यालय से स्नातक की परीक्षा पास की (१६४२) और उसी वर्ष वह मोर्चे को रवाना हो गये।

उनकी कहानियों का पहला संग्रह, मेरे नगर के स्वर, १६४६ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद उनकी अनेक पुस्तकें छपीं।

राफ़ेल अरामियान प्रायः बौद्धिक कथावस्तु चुनते हैं। उनकी दिलचस्पी मानवीय संवेगों एवं विचारों में, नीतिशास्त्र एवं नैतिकता की समस्याओं में है। मटकी ले पनिया भरन को गयी कहानी महान आर्मीनियाई संगीतकार व लोकगीतों के संग्रहकर्त्ता कोमितास को समर्पित है।

होवान्नेस तुमानियान (१८६६-१६२३)

एक विशिष्ट आर्मीनियाई कवि व लेखक हैं। "तुमानियान की कविता स्वयं आर्मीनिया है, एक महान कलाकार द्वारा पुनरुज्जीवित एवं स्थायीकृत।" रूसी कवि वालेरी ब्रियुसोव ने तुमानियान के बारे में लिखा है।

गाँव के डीकन के बेटे तुमानियान का जन्म लोरी में हुआ था। तिफ़लिस सेमिनरी में उन्होंने अध्ययन किया लेकिन साधनों के अभाव के कारण अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर सके। सेमिनरी अध्ययन के दौरान ही तुमानियान कवि के रूप में उभरे। उनकी कविताओं का पहला संग्रह १८६० के दशक में प्रकाशित हुआ था।

आर्मीनियाई साहित्य में होवान्नेस तुमानियान की भूमिका की तुलना रूसी संस्कृति के इतिहास में अलेक्सान्दर पुश्किन की भूमिका से की जा सकती है। तुमानियान की कृतियों में गद्य, पद्य, काव्य गाथाएं, परीकथाएं, रूपक तथा गाथा-गीत शामिल हैं। स्पष्ट कथावस्तु, नाटकीय परिस्थितियों एवं सुन्दर शैली के लिए लेखक का गद्य उल्लेखनीय है।

स्तेफ़ान ज़ोरियान (१८६०-१९६७)

सोवियत आर्मीनियाई साहित्य के संस्थापकों में से एक। किसान के बेटे ज़ोरियान का जन्म काराक्लिस में हुआ था। उनकी पहली कहानी क्षुधित, १९०६ में छपी थी। उनकी कहानियों का पहला संग्रह १९१६ में प्रकाशित हुआ था। इसका शीर्षक उनकी कृति के लिए लाक्षणिक है: दुखी लोग।

ज़ोरियान एक लेखक के रूप में आर्मीनियाई इतिहास के उस काल में चमके जो सोवियत सत्ता की स्थापना के साथ शुरू हुआ। उनके लघु उपन्यास क्रान्तिकारी समिति का अध्यक्ष (१९२३) और पुस्तकालयवाली लड़की (१९२५), क्रान्ति एवं गृहयुद्ध से सम्बन्धित आर्मीनियाई गद्य कृतियों में उल्लेखनीय हैं। सफ़ेद नगर (१९२६) का विषय समाजवादी पुनर्निर्माण से सम्बन्धित है। चौथे दशक के आख़िर में ज़ोरियान ने एक आदमी का जीवन नामक आत्मकथात्मक उपन्यास पूरा किया। इसमें एक आदमी की नियति किस तरह लोगों की नियति का अभिन्न अंग होती है, इसका चित्रण है। इसके बाद किंग पैप (१९४३) और आर्मीनियाई दुर्ग (१९६०), दो ऐतिहासिक उपन्यास तथा अमीरियन परिवार नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। साथ ही, बड़ों व बच्चों के लिए बहुत सारी कहानियाँ भी छपीं। स्तेफ़ान ज़ोरियान नामी-गरामी अनुवादक भी थे। उन्होंने लेव तोल्स्तोय, इवान तुर्गनेव, मार्क ट्वेन तथा अन्य कई लेखकों की कृतियों का आर्मीनियाई भाषा में अनुवाद किया।

सुरेन ऐवाज़ियन (ज. १९१५)

व्यवसाय से अध्यापक। १९३४ से १९३६ तक उन्होंने गाँव के फिर बाकू के स्कूल में अध्यापन किया। पहली कहानी १९३७ में छपी थी। फिर कोम्मुनिस्त समाचारपत्र के सम्पादकीय विभाग में आ गये। पत्रिका के सांस्कृतिक विभाग के वही कर्ता-धर्ता थे। युद्धारम्भ होने के बाद युवा लेखक मोर्चे पर जा पहुँचा लेकिन युद्ध सम्बन्धी कहानियाँ व वृत्तान्तचित्र लिखता रहा। कहानियों का पहला संग्रह, अधूरा कालीन १९४७ में प्रकाशित हुआ। सुरेन ऐवाज़ियन कई कहानी संग्रहों व उपन्यासों के लेखक हैं।

अन्धेरे-उजाले कहानी में गृह युद्ध के समय की एक घटना का वर्णन है।

मोवसेस अराज़ी (१८७८–१९६४)

किसान के बेटे। १८९९ में उन्होंने सेण्ट पीटर्सबुर्ग तकनीकी संस्थान में प्रवेश लिया लेकिन क्रान्तिकारी संघर्ष में सक्रिय सहभागिता के कारण वहाँ से निकाल दिये जाने पर मातृभूमि आर्मीनिया में लौट आये। यहाँ उन्होंने ख़ुद को क्रान्तिकारी व साहित्यिक कार्य के प्रति अर्पित कर दिया।

१९०६ में मूर्च (हथौड़ा) पत्रिका में प्रकाशित उनकी पहली कहानी पादरियों की भूमि के विरुद्ध डोन कार्पेट का आन्दोलन, बुर्जुआ राष्ट्रवाद का पर्दाफ़ाश थी। बाद में दूसरी कहानियाँ भी छपीं। इस काल की मोवसेस अराज़ी की कहानियाँ अधिकांशतया रूपकात्मक हैं अथवा प्रतीकात्मक गुलकारी से ओतप्रोत हैं। वे गीतात्मक हैं किन्तु इसके साथ ही, उनमें निश्चित सामाजिक सारतत्व भी है।

लेखक के रूप में मोवसेस अराज़ी सोवियत काल में परिपक्व हुए। क्रान्ति के बाद उनकी लिखी कहानियाँ पुरानी जीवन-प्रणाली की समाप्ति तथा एक नयी क़िस्म के नायक के सृजन का चित्रांकन करती हैं।

चौथे दशक की लेखक की महत्वपूर्ण कृतियों में दो लघु उपन्यास चाँदनी में और झरने की दीप्ति में तथा जलते क्षितिज उपन्यास हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मोवसेस अराज़ी ने कहानियों का एक संग्रह अविजित शीर्षक से प्रकाशित कराया। यह संग्रह स्वदेशी मोर्चे के नायकों को अर्पित था। इस्राइल-ओरी नामक ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की अन्तिम महत्वपूर्ण कृति था।

कायापलट (१९२५) मोवसेस अराज़ी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में एक है और मक्सीम गोर्की ने इसकी बड़ी प्रशंसा की थी।

राचिया कोचर (१९१०–१९६५)

उनका जन्म पश्चिमी आर्मीनिया में हुआ था और बालपन में ही उन्होंने तुर्क राष्ट्रवादियों द्वारा आर्मीनिआइयों का क़त्लेआम देखा था। तुर्कों से बचने के प्रयास में भागते हुए राचिया कोचर का परिवार एचमियाद्ज़िन के परिसर में जा बसा।

राचिया कोचर की शिक्षा-दीक्षा सोवियत आर्मीनिया में हुई। चौथे दशक में उन्होंने आर्मीनियाई लेखक संघ के साहित्यिक विश्वविद्यालय में प्रवेश पाया।

राचिया कोचर ने अपनी पहली महत्वपूर्ण कृति वान वेर्दियान १९३४ में प्रकाशित करायी। इसके बाद ओग्सेन वास्पुर की यात्रा (१९३७) प्रकाशित हुई। दोनों पुस्तकें बुद्धिजीवियों के बारे में हैं और दोनों उल्लेखनीय रूप से गीतात्मक हैं लेकिन इसके साथ ही उनमें लेखक की नागरिक चेतना भी प्रतिबिम्बित है।

युद्ध व युद्धोत्तर वर्ष लेखक के सर्वाधिक सृजनात्मक काल हैं। युद्ध संवाददाता के रूप में राचिया कोचर नाज़ियों के विरुद्ध सोवियत जनगण के वीरतापूर्ण संघर्ष के एक चश्मदीद गवाह थे। इस काल के उनके निबन्ध एवं कहानियाँ तीन संग्रहों में संकलित हैं: पूर्ववेला में (१९४२), नायक पैदा होते हैं (१९४२) और पुण्य प्रतिज्ञा (१९४५)।

युद्ध के वर्षों में देखी-जानी उनकी समस्त अनुभूतियाँ दो खण्डोंवाले उनके उपन्यास में प्रतिबिम्बित हैं। उपन्यास का नाम है, एक बड़े मकान के बच्चे (१९५३–१९५७) यह सर्वाधिक दिलचस्प आर्मीनियाई उपन्यासों में एक है।

विगेन खेचुमियाँ (१९१९–१९७५)

उनका जन्म येरेवान में हुआ था। वह एक कार्यालय कर्मचारी के बेटे थे। १९४१ में येरेवान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग से स्नातक होने के बाद वह प्राचीन पाण्डुलिपियों के सबसे बड़े आर्मीनियाई संग्रहालय "मातेनादरन" में काम करने चले गये। वह अपने छात्र जीवन से ही लिखने लगे थे लेकिन लड़ाई शुरू हो जाने के कारण उनकी सारी योजनाओं पर पानी फिर गया।

विगेन खेचुमियाँ के ऐतिहासिक लघु उपन्यासों का पहला संग्रह १९४५ में प्रकाशित हुआ था। इनकी कथावस्तु मध्ययुगीन है और उसका आधार प्राचीन आर्मीनियाई पाण्डुलिपियाँ, आख्यान एवं कथाएं हैं। उनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय मेडोना और सुबह का फूल है।

विगेन खेचुमियाँ कहानीकार के रूप में ज्यादा जाने जाते हैं लेकिन इसके साथ ही साथ उनके उपन्यासों की भी सब ने प्रशंसा की है।

लेखक के लघु उपन्यास विविधतापूर्ण, समृद्ध और गीतात्मक हैं, वे ऐ-तिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण हैं।

मकरतिच सरकिसियान (ज. १९२४)

उनका जन्म अखालकलाकी में हुआ था। माध्यमिक स्कूल से पास होने के बाद ही उन्हें मोर्चे पर जाना पड़ा। १९४५ में सेना से कार्यमुक्त हाने के बाद उन्होंने एक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में प्रवेश लिया।

अल्पवयस में ही मकरतिच सरकिसियान ने कविताएँ लिखनी शुरू कर दी थीं। गद्य में उन्होंने बाद में हाथ आजमाया। उनके लिखे कई उपन्यास, काव्य संग्रह और कहानी संग्रह हैं। मकरतिच सरकिसियान की बहुत-सी रचनाओं का रूसी में अनुवाद हुआ है।

मकरतिच आर्मेन (१९०५–१९७२)

उनका जन्म लेनिनाकान में हुआ था। वह एक शिल्पी के बेटे थे। १९३२ में उन्होंने सिनेचित्रकला के राजकीय संस्थान के संवाद लेखन वि-भाग से स्नातक की परीक्षा पास की।

मकरतिच आर्मेन ने अपना पहला काव्य-संग्रह शिर्कानिल १९२५ में प्रका-शित कराया था। उनकी पहली कहानी, अवसन्न आत्माओं के पथ पर १९२९ में छपी थी। अब तक लेखक की तीसाधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन में उल्लेखनीय हैं, एक अज़रबैजानी नारी की मुक्ति-गाथा से सम्बन्धित ज़ुबैदा (१९३२), प्राचीन गियुमरी (अब लेनिनाकान) के शिल्पियों की जीवन-प्रणाली से सम्बन्धित कथा पर आधारित येखनार सोता और युद्ध के वर्षों में यूराल में सोवियत लोगों के वीरतापूर्ण श्रम की कहा-नी कहनेवाली पुस्तक यासवा।

मकरतिच आर्मेन एक अनुवादक के रूप में भी जाने जाते हैं। उन्होंने साहित्य, भाषा एवं लोक कला के बारे में निबन्ध भी लिखे हैं।

खजहाक गियुलनज़ारियन (ज. १६२८)

उनका जन्म येरेवान में हुआ था। १६४१ में इन्होंने येरेवान विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान विभाग से स्नातक किया। जब खजहाक गियुलनज़ारियन अभी १४ वर्ष के ही थे, उनकी कविता एक समाचार पत्र में छपी थी। १७ की आयु में उनकी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई थी। बड़ों व बच्चों के लिए खजहाक गियुलनज़ारियन अनेक पुस्तकें लिख चुके हैं।

छठा उपदेश कहानी लेखक की शैली का एक लाक्षणिक उदाहरण है।

सेरो खानज़ादियान (ज. १६१५)

किसान के बेटे। लड़कपन में गड़ेरिये का काम किया। १६३४ में स्नातक हो, उन्होंने मोरी नगर में प्राथमिक विद्यालीय शिक्षक का प्रशिक्षण प्राप्त किया। १६४१ में युद्धारम्भ से पहले तक पहाड़ी गाँवों में शिक्षक का काम करते रहे। फिर उन्हें मोर्चे पर बुला लिया गया। सेरो खानज़ादियान कई बार घायल हुए और कई बार पदकों से विभूषित किये गये।

सेरो खानज़ादियान की पहली पुस्तक हमारी रेजिमेंट के लोग (१६४६), लेनिनग्राद के साहसी रक्षकों की वीरगाथा है। इसे छपते ही लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसके बाद से लेखक कई उपन्यास, कहानी-संग्रह तथा किशोरों व बच्चों के लिए पुस्तकें प्रकाशित करा चुके हैं। सफ़ेद मेमना की कथावस्तु चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित है।

गेगम सेवान (ज. १६२६)

"मेरा सपना साकार हो गया! मैं रट लगाये था कि अपनी मातृभूमि लौटने से पहले नहीं मरना चाहता, आर्मीनियाई प्रदेश और आर्मीनियाई राजधानी को अपनी आँखों से देखने से पहले नहीं मरना चाहता... और अब मेरा सपना सच हो गया है," गेगम सेवान ने लिखा था।

गेगम सेवान का जन्म इस्तानबुल में हुआ था।

गेगम सेवान अब सोवियत आर्मीनिया के नागरिक हैं। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। गेगम सेवान के गद्य में कल्पना व वास्तविकता का समन्वय है। उन्हें लोगों से, इस धरती से जहाँ हम रहते हैं और सौन्दर्य से प्यार है।

वार्दकेस पेत्रोस्यान (ज. १६३२)

उनका जन्म अश्ताराक के गाँव में हुआ था। १६५४ में उन्होंने येरेवान विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग से स्नातक किया। फिर उन्होंने पत्रकार के रूप में समाचारपत्रों में काम शुरू किया।

वार्दकेस पेत्रोस्यान की पहली पुस्तक एक आदमी की गाथा, १६५७ में छपी और इसके दो साल बाद ही एक कहानी संग्रह, अन्तिम निशा, प्रकाशित हुआ। तब से वह कई कहानी-संग्रह व लघु उपन्यास लिख व प्रकाशित करा चुके हैं।

वार्दकेस पेत्रोस्यान की समस्त कृतियाँ अच्छे चरित्र अध्ययन, यथार्थवादी स्थितियों और शैली की ताज़गी के लिए उल्लेखनीय हैं।

ग्रान्त मातेवोस्यान (ज. १६३५)

सोवियत आर्मीनिया के एक विशिष्ट लेखक हैं। उनका जन्म अग्निद्ज़ोर गाँव में हुआ था। १६५६ में उन्होंने येरेवान शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के भाषाविज्ञान विभाग से स्नातक की परीक्षा पास की। पहले उन्होंने प्रूफ़-रीडर के रूप में और फिर संवाददाता के रूप में ग्राकान तेर्त (साहित्यक गज़ट) तथा सोवेताकान ग्राकानुतियुन (सोवियत साहित्य) पत्रिका में काम किया।

ग्रान्त मातेवोस्यान ने १६५६ में लिखना शुरू किया। उनके लघु उपन्यासों व कहानियों को पाठकों की प्रशंसा प्राप्त हुई। उनकी कहानियों के पात्र पहाड़ों में रहनेवाले लोग हैं: गड़ेरिये, अंगूर उत्पादक, घास काटनेवाले तथा लुहार। उनके बारे में लिखी समीक्षाओं में से एक उद्धरण प्रस्तुत है: "आदमी की लौकिक वस्तुओं को परीकथा में रूपान्तरित कर देने के लिए आदमी के दैनिक कार्यकलाप में कविता को देख पाने के लिए

सच्ची साहित्यिक प्रतिभा से सम्पन्न होना चाहिए और यही चीज़ मातेवोस्यान की रचनाओं को आर्मीनियाई गाँव का आख्यान कहना सम्भव बनाती है।"

एबिग अवाक्यान (ज. १६१६)

उनका जन्म तेहरान में हुआ था।

एबिग अवाक्यान १६४६ में सोवियत आर्मीनिया आये। उसी वर्ष वे सोवियत लेखक संघ के सदस्य बन गये।

उनकी पहली पुस्तक आर्मीनिया में ही छपी।

कहानी लेखक के रूप में एबिग अवाक्यान ज्यादा प्रसिद्ध हैं। कहानियों में उनकी वर्णन प्रतिभा एवं मानव प्रकृति की जानकारी सर्वाधिक अभिव्यक्त है।

नोरेयर अदालियन (ज. १६३६)

उनका जन्म सिम्फ़ेरोपोल में हुआ था। १६५८ में वह येरेवान विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग से स्नातक हुए।

उनकी पहली कहानी आर्मीनियाई पत्रिका पायोनियर में छपी थी। इसके बाद पहला कहानी संग्रह मुड़के न देखो (१६६३) और बाल पुस्तक समोसे प्रकाशित हुई। फिर उनका एक लघु उपन्यास तथा अनेक कहानियाँ छपीं जिन्हें पाठकों की मान्यता मिली।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन संबंधी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये:

ताशक़न्द – १२९, नवाई स्ट्रीट, ३०
उज़बेक जनतन्त्र, सोवियत संघ

Progress publishers, Tashkent—129,
Navoi street, 30.
USSR